संस्कृत रचना प्रकाश

THE
HARIDAS SANSKRIT SERIES
237
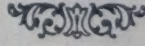
SANSKRIT RACHANĀ PRAKĀS'A

(A Light on the Construction of Sanskrit Essays)

By

PT. RAMĀKĀNTA DVIVEDI M. A.

(Prof. Degree College, Sitamarhi)

THE
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI-1
1967

Third Edition

1967

Pri

विषय-सूची

परिशिष्ट

॥ श्रीः ॥

संस्कृत-
रचना-प्रकाश

अध्याय १

पाठ १

संस्कृत-रचना का साधारण परिचय

रचना :—'रच प्रतियत्ने' धातु से 'रचना' शब्द निष्पन्न हुआ है। इसका साधारण अर्थ है निर्माण या बनाना। किसी भाषा में रचना से 'वाक्यों की रचना' का अभिप्राय है। किसी भी निर्माण के लिये कुछ निश्चित तथा समुचित उपादान (कारण, सामग्री) होते हैं। भाषा-रचना के उपादान हैं शब्द। इसलिए नियमानुकूल विचार-पूर्वक सङ्कलित शब्दों को विभक्ति आदि के योग से यथोचित रूप–परिवर्तन के साथ परस्पर–समन्वित तथा क्रमिक रूप में रखना, जिससे एक पूर्ण–भाव का प्रकाश होता हो, रचना कहते हैं। समन्वय-शब्दों के लिंग, वचन, पुरुष, कारक तथा काल के विषय में परस्पर के सम्बन्ध या समानता को समन्वय कहते हैं। जैसे :— सुशीलः बालकः खेलति=सुशील लड़का खेलता है। इस वाक्य में 'सुशीलः' यह शब्द लिङ्ग, वचन, कारक तथा पुरुष के सम्बन्ध में 'बालकः' इस शब्द में समन्वित है; तथा 'खेलति' शब्द वचन तथा पुरुष के सम्बन्ध में 'बालकः' इस शब्द में समन्वित है। संस्कृत की रचना में नीचे के चार प्रकार के मुख्य समन्वयों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

१. क्रिया के साथ कर्त्ता का समन्वय।

२. संज्ञा के साथ सर्वनाम का समन्वय।

३. विशेष्य के साथ विशेषण का समन्वय।

४. सम्बन्धवान् के साथ सम्बन्धवाची का समन्वय।

क्रम :—वाक्य में पदों को उनके परस्पर के अर्थ-सम्बन्ध के अनुसार समुचित स्थान पर रखना ही क्रम है। इसकी विशेष बातें आगे बतायी जायेंगी।

वाक्य रचना के लिये वाक्य के लक्षण का ज्ञान आवश्यक है, इसलिये वह नीचे दिया जाता है।

परस्पर साकाङ्क्ष (एक दूसरे के साथ समन्वय की इच्छा रखने वाले) सुबन्त तिङन्त पदों के समूह को जिससे वक्ता के मनोभाव का पूर्ण प्रकाश हो, वाक्य कहते हैं। जैसे :—रामः धावति=राम दौड़ता है। कृष्णः पुस्तकं पठति=कृष्ण पुस्तक पढ़ता है आदि। कहा भी है 'सुप्तिङन्तचयो वाक्यम्' अर्थात् परस्पर साकाङ्क्ष सुबन्त तथा तिङन्त पदों का समूह ही वाक्य है।

इसके अतिरिक्त वाक्य के पदों में परस्पर आकाङ्क्षा, योग्यता, आसत्ति इन तीन चीजों का रहना आवश्यक है। पदों के परस्पर के अन्वय की इच्छा को आकांक्षा कहते हैं। इसके बिना चाहे कितने भी पद क्यों न इकट्ठे कर दिये जाँय उनसे वाक्य नहीं हो सकता। जैसे :—गौरश्वः पुरुषः हस्ती अथवा खादति, हसति, गच्छति आदि। एक पद को दूसरे सहगामी पद के अर्थ को मिलाकर पूरा करने के सामर्थ्य को योग्यता कहते हैं। इसके अभाव में भी चाहे कितने भी पद क्यों न इकठ्ठे हो जांय उनसे बना वाक्य समुचित अर्थ को उपस्थित नहीं करने के कारण वाक्य नहीं कहा जा सकता। जैसे :—वह्निना सिञ्चति=आग से सींचता है। यहाँ वह्नि में सिञ्चन की योग्यता नहीं होने से कारण अर्थात् आग से कोई चीज पटायी नहीं जा सकती इसीलिये 'वह्निना सिञ्चति' यह वाक्य ही नहीं हो सकता। पदों के परस्पर समुचित समीपता को आसत्ति कहते हैं। इसका भी होना आवश्यक है। एक पद के उच्चारण या लेखन के बाद अनुचित विलम्ब या दूरी पर दूसरा पद उच्चरित किया जाय या लिखा जाय तो उन पदों से वाक्य नहीं बनेगा। जैसे :-यदि 'रामः' कहने के एक घंटा के बाद 'गच्छति' कहा जाय या 'रामः' लिखने के दो पृष्ठ बाद 'गच्छति' लिखा जाय तो वह वाक्य नहीं होगा।

ये वाक्य कितने प्रकार के होते हैं, इनकी रचना की क्या विधि है तथा

इनकी और क्या क्या विशेषतायें हैं ये बातें यथावसर आगे के प्रकरणों में समुचित रूप से बतायी जायेंगी। यहाँ पहले वाक्य–रचना के उपादान पद (शब्द) के विषय में कुछ अवश्य ज्ञातव्य बातें बतलायी जाती हैं।

पाठ २

पद-परिचय :—सुप् तथा तिङ् विभक्तियों से युक्त जो शब्द (प्रातिपदिक और धातु) हैं उन्हें पद कहते हैं। जैसेः—रामः, कृष्णाय, फलानि, खादति, पठामि आदि। पद से स्वार्थ मात्र (केवल अपने अर्थ) की उपस्थिति होती है। जैसेः—रामः–राम, फलम्,–फल, खादति–खाता है। ऊपर पद के लक्षण करते समय विभक्तियों का निर्देश इसलिये आवश्यक हुआ कि संस्कृत में प्रातिपदिक, जैसे :—बालक, राम, मुनि, राजन् इत्यादि तथा धातु लिख, पठ, खाद् इत्यादि में जब तक विभक्ति नहीं लगती तब तक वे पद नहीं कहलाते, और जब तक वे पद नहीं होते तब तक उनका वाक्य व्यवहार में कोई उपयोग नहीं हो सकता। इसलिये संस्कृत व्याकरण का यह नियम है कि 'नापदं प्रयुञ्जीत' अपद (पदत्वहीन अर्थात् विभक्तिहीन प्रातिपदिक या धातु) का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जैसेः—'बालक' और 'लिख्' ये दोनों शब्द हैं, किन्तु जब ये विभक्ति से युक्त होकर 'बालकः' और 'लिखति' के रूप में होंगे तब पद कहलायेंगे और तभी ये संस्कृत–व्याकरण के आदेशानुसार प्रयोग के योग्य होंगे। जैसेः–बालकः लिखति = लड़का लिखता है। अन्यथा इनका विभक्तिहीन प्रयोग, जैसेः— बालक लिख् कदापि नहीं हो सकता, और संस्कृतरचना में उसका कुछ मतलब भी नहीं होगा।

पद-प्रकारः—शब्द जिन विभक्तियों के योग से पद बनते हैं तथा वाक्य व्यवहार के योग्य होते हैं, वे विभक्तियाँ दो प्रकार की हैं। यथा :— सुप् और तिङ्। इसलिए उन विभक्तियों के योग से बने पद भी दो प्रकार के होते हैं :—(१) सुबन्त पद और (२) तिङन्तपद।

संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण के अनन्तर 'सुप्' विभक्तियाँ लगती हैं,

और उनके योग से बने पदोंको सुबन्त पद कहते हैं। जैसे:—रामः, सः, सुशीलः इत्यादि। सुबन्त पद कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, सम्बोधन, सम्बन्ध, विशेषण तथा क्रियाविशेषण की तरह व्यवहृत होते हैं।

धातुओं के आगे 'तिङ्' विभक्तियाँ लगती हैं। उनके योग से बने पदों को तिङन्त पद कहते हैं। ये सबके सब सदा क्रिया (विधेय) की तरह ही प्रयुक्त होते हैं।

मुख्य रूप से इन्हीं दो तरह के पदों के समन्वित समूह से वाक्य बनते हैं।

अभ्यास

(क) रचना किसे कहते हैं ? समन्वय क्या है? उदाहरण द्वारा समझाओ। संस्कृत रचना में कितने प्रकार के समन्वय परम अपेक्षित हैं ?
(ख) क्रम क्या है ? वाक्य किसे कहते हैं ?
(ग) आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति क्या है ? तथा वाक्य में इनकी क्या आवश्यकता है ? उदाहरण देकर बताओ।
(घ) पद किसे कहते हैं ? विभक्तियों के कितने प्रकार हैं ? सुबन्तपद तथा तिङन्तपद के व्यवहार में क्या भेद है ? बताओ।

पाठ ३

पद-विन्यासक्रम :—हिन्दी, अंग्रेजी आदि की वाक्य-रचना में पहले कर्त्ता रखा जाता है, इसके पश्चात् कर्म और अन्त में क्रिया रखी जाती है। परन्तु संस्कृत-वाक्य रचना में कौन पद कहां रखा जाय इसके लिये कोई विशेष नियम नहीं है। जिस पद को जहां चाहे वहां रख सकते हैं; अर्थ में कोई अन्तर नहीं होगा। इसका कारण यह है कि संस्कृतभाषा (Inflectional Language) है अर्थात् वाक्य का प्रत्येक पद दो भागों का बना होता है। जिनके पारिभाषिक

नाम प्रकृति और प्रत्यय हैं। इनमें न तो केवल प्रकृति का प्रयोग होता है और न केवल प्रत्यय का ही। व्याकरण का यह सिद्धान्त भी है 'न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या नापि केवलः प्रत्ययः' संस्कृत में प्रत्येक पद की अपनी-अपनी विशेष विभक्ति उसके आगे लगी रहती है या लगकर लुप्त या रूपान्तर में परिणत हो जाती है, परन्तु लुप्त या रूपान्तर में परिणत होने पर भी इनमें अपना अर्थ बतलाने का सामर्थ्य बना रहता है और अर्थ के बोध में कोई बाधा नहीं होती है, जिससे वाक्य में किस पद के अर्थ के साथ किस पद के अर्थ का कैसा सम्बन्ध है यह सरलतया स्पष्ट हो जाता है और उन अर्थों का परस्पर समुचित अन्वय कर लेने ही से सारा अर्थ साफ साफ स्पष्ट हो जाता है चाहे वे वाक्य में आगे पीछे कहीं भी रखे जांय। जैसे :—'विद्या विनय देती है' इसका अनुवाद संस्कृत में यदि निम्नलिखित किसी भी क्रम में किया जाय तो उससे अर्थ में किसी प्रकार का भेद नहीं होगा:—(१) विद्या विनयं ददाति, (२) विनयं विद्या ददाति, (३) ददाति विद्या विनयम्, (४) विद्या ददाति विनयम्, (५) विनयं ददाति विद्या, (६) ददाति विनयं विद्या। परन्तु इसके विपरीत हिन्दी तथा अंग्रेजी में पद के आगे कोई विभक्ति नहीं रहती। बहुत स्थलों में स्थानविशेष से कारकविशेष का ज्ञान होता है। हिन्दी में कारक के केवल कुछ नियत चिह्न प्रयोग में आते हैं। इसलिये पदों का स्थान-परिवर्तन होने से अर्थ ही दूसरा हो जाता है। जैसे :—उपर्युक्त वाक्य में ही देख लीजिये १. विद्या[1] विनय[2] देती है[3]। अब यदि इन्हीं पदों को स्थानभेद से इस प्रकार लिखा जाय:—२. 'विनय[1] विद्या[2] देती है[3]' तो प्रथम वाक्य से इसका अर्थ ही विभिन्न हो जायगा।

इसी प्रकार एक अंग्रेजी का भी उदाहरण ले लीजिये। 'राम ने रावण को मारा' इसकी अंग्रेजी वाक्य-रचना होगी–Ram killed Ravan अब इसमें थोड़ा भी पदों का स्थान-परिवर्तन कर देने से या तो अंग्रेजी व्याकरण के अनुसार वह वाक्य अशुद्ध हो जायगा या उसका अर्थ सर्वथा विपरीत हो जायगा। जैसे:—ऊपर के वाक्य को यदि 'Killed Ram Ravan'

या 'Killed Ravan Ram' कर दें तो वह वाक्य अशुद्ध हो जायगा और यदि 'Ravan Killed Ram' कर दें तो 'रावण ने राम को मारा'—यह अर्थ पूर्वोक्त वाक्यार्थ से सर्वथा विपरीत हो जायगा। संस्कृत में उपर्युक्त वाक्य की (१) 'रामः रावणं हतवान्' (२) 'रावणं रामः हतवान्' (३) 'हतवान् रावणं रामः' (४) 'रावणं हतवान् रामः' (५) 'रामः हतवान् रावणम्' (६) 'हतवान् रामः रावणम्' किसी भी रूप में वाक्यरचना करें तो भी सभी वाक्य सर्वथा शुद्ध, पूर्ण और समुचित अर्थ देते रहेंगे तथा वाक्यार्थ में लेश मात्र भी भेद नहीं होगा।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि संस्कृत रचना में कौन पद कहाँ रखा जाय इसका कोई निश्चित नियम नहीं है तथा रचना में क्रमविशेष नाम की वस्तु का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। अपने सुसम्बद्ध व्याकरण के नियमों से सुसंयत संस्कृत वाक्यों में रचना के मूल विषय के समन्वय और क्रम स्वयं सिद्ध हो जाते हैं तो भी यह नहीं समझना चाहिये कि संस्कृत-रचना में यथेष्ट स्वेच्छाचारिता का अवसर रहता है। संस्कृत साहित्य की परम्परा देखने से ऐसा स्पष्ट मालूम होता है कि रचना में पद-विन्यास क्रम के लिये संस्कृत व्याकरणों में विशेष निश्चित नियम नहीं रहने पर भी अन्य भाषाओं की तरह उसमें भी किसी न किसी परम्परागत क्रम का पालन होता है। यदि व्याकरण-नियत क्रम न भी हो तो भी विचारों का स्वाभाविक क्रम रहता ही है, जिसके अनुसार ही पदों का विन्यास सहज, सुन्दर तथा वाञ्छनीय होगा। किसी भी संस्कृत गद्य ग्रन्थ के पन्नों को देखा जाय तो अवश्य उसमें शब्दों के कुछ अनुगत तथा व्यापक क्रम अवश्य मिलेंगे। अतएव संस्कृत रचना में क्रम आदि के उन्हीं आधारों का अनुसरण करना अच्छा होगा, जो साहित्य में सर्वत्र स्पष्ट लक्षित होते हैं।

इसलिये साधारणतः विद्यार्थियों को हिन्दी के समान सबसे पहले विशेषण सहित कर्त्ता, उसके बाद विशेषण सहित कर्म और अन्त में क्रिया

को रखना चाहिये इसके अतिरिक्त छात्रों की सुविधा के लिये नीचे पदयोजना के कुछ उपयोगी और आवश्यक निर्देश दिये जाते हैं :—

(१) सबसे पहले उल्लेखनीय साधारण नियम यह है कि पदों का विन्यास इस प्रकार करना चाहिये कि वाक्य के सुनने पर एक विचार दूसरे विचार के बाद अपने प्राकृतिक क्रम से आता रहे। तात्पर्य यह है कि आश्रित पद साधारणतः अपने प्रधान पदों के पूर्व आवें, जिन पर वे निर्भर हैं या जिनसे वे नियमित हैं। इस प्रकार १. विशेषण और विशेष्य को २. सकर्मक क्रिया और उसके कर्म को ३. क्रियाविशेषण तथा क्रिया को ४. सम्बन्धसूचक अव्यय तथा उसके सम्बन्धियों को जहां तक हो सके बिलकुल पास में रखना चाहिए।

(२) जब किसी सरल वाक्य में केवल एक कर्ता और एक क्रिया हो तो कर्त्ता (उद्देश्य) को पहले और क्रिया (विधेय) को बाद में रखना चाहिये और यदि क्रिया सकर्मक हो तो कर्म को कर्त्ता के बाद और सबके अन्त में क्रिया को रखना चाहिये। यथा :—रामः शेते (राम सोता है) रामः पत्रं लिखति (राम पत्र लिखता है)

(३) यदि कोई सम्बोधन पद हो तो वाक्य में उसे सर्वप्रथम रखना चाहिये। यथा :—हे कृष्ण ! पुस्तकम् आनय। (हे कृष्ण ! किताब लाओ)

(४) कर्ता के विशेषण (उद्देश्य के विस्तार) को कर्त्ता से पहले रखना चाहिए। यथा :—सुशीलः बालकः आगच्छति। (सुशील लड़का आता है)

(क) जब कर्त्ता के विशेषण विधेय के पूरक (Complement) होकर व्यवहृत होते हैं, तब वे कर्त्ता के बाद रखे जाते हैं। यथाः— बालकः सुशीलः अस्ति। (लड़का सुशील है)

(ख) यदि सर्वनाम और गुणवाचक दोनों पद कर्त्ता के विशेषण के रूप में आवें तो सार्वनामिक विशेषण पहले रखा जाता है। यथाः—सः चपलः बालकः आगच्छति। (वह चञ्चल लड़का आता है)

(ग) यदि किसी विशेष्य पद के साथ दूसरे विशेष्य पद का प्रयोग किया जाय तो दूसरा विशेष्य पद पूर्व विशेष्य पद के पहले रखा जाता है। जैसे—तत्र सर्वस्वामिगुणोपेतः सुदर्शनो नाम राजा आसीत्। (वहां स्वामी के सब गुणों से युक्त सुदर्शन नामक राजा था) आसीत् सकलराजगुणोपेतः सार्वभौमो राजा शूद्रको नाम। (सब राजगुणोंसे युक्त चक्रवर्ती शूद्रक नामक राजा था)

(५) कर्तृविस्तार की तरह कर्म विस्तार (विशेषण) को भी कर्म से पहले रखना चाहिये। यथा :—रामः मधुरां कथां कथयति। (राम मनोहर कथा कहता है)

(६) कर्म का विस्तार यदि क्रिया का पूरक हो तो, उसे कर्म के अनन्तर रखना चाहिये। यथा :—स त्वां मूर्खं मन्यते। (वह तुझे मूर्ख समझता है)

(७) क्रिया विशेषण प्रायः क्रिया के पहले रखा जाता है। यथा :—रामः शीघ्रं धावति। (राम तेज दौड़ता है)

नोट :—कहीं-कहीं क्रियाविशेषण, कर्त्ता या कर्म के पहले भी आता है। जैसे :— १. कर्त्ता के पहले—बहुवारम् अहं त्वाम् अकथयम्। (मैंने बहुत बातें तुझे कहीं) २. कर्म के पहले :—लोककल्याणाय महात्मा बहु कार्यं कृतवान्। (लोक-कल्याण के लिये महात्मा (गांधी) ने अधिक काम किया)

(८) सम्बन्धवाची अर्थात् षष्ठी विभक्ति से युक्त पद सम्बन्धवान् अर्थात् जिससे उसका सम्बन्ध होता है उससे पहले आता है। यथा :—रामस्य पुस्तकम् (राम की पुस्तक)।

नोट :—यदि सम्बन्धवान् कोई विक्षेषण हो तो वह कहीं सम्बन्ध के पहले तथा कहीं सम्बन्ध के बाद आता है। जैसे—१. इदम् अस्य दीनस्य दुःखम्। (यह इस दुखिये का दुःख है) २. नद्याः दक्षिणे तटे मम गृहम् अस्ति। (नदी के दक्षिण किनारे मेरा घर है)

(९) यद्यपि नियम (१) में बतलाया गया है कि वाक्य में साधारणतया वाक्य के द्वारा विवक्षित भाव को पूर्ण कर देने वाले विधेय अर्थात् क्रिया का स्वाभाविक तथा सर्वोत्तम स्थान वाक्य का अन्त ही है और तदनुसार सर्व-

प्रथम कर्त्ता, उसके बाद कर्म और उसके भी बाद क्रिया को रखना चाहिये तथापि किसी कथा के आरम्भ में (In narrative) अस् और कभी कभी भूधातु वाक्य के आदि में रखे जाते हैं। जैसे 'अस्' :—अस्ति कलिंग-विषये रुक्माङ्गदो नाम नृपतिः। (कलिङ्ग देश में रुक्माङ्गद नाम का राजा है) भूः—अभूत् राजा चिन्तामणिर्नाम। (चिन्तामणि नाम का राजा हुआ)

(१०) वाक्य में यदि अधिकरण पद, स्थान अथवा कालवाचक अव्यय रहे तो उसे वाक्य के प्रारम्भ में ही रखना चाहिये। जैसे (क) अधिकरण पदः—तस्मिन् पर्वते रक्तमुखो नाम वानरः प्रतिवसति स्म। (उस पर्वत पर रक्तमुख नामक वानर रहता था) (ख) स्थानवाची अव्यय :—तत्र सर्वस्वामिगुणोपेतः सुदर्शनो नाम नरपतिः आसीत्। (वहाँ सम्पूर्ण राजगुणों से युक्त सुदर्शन नाम का राजा था) (ग) कालवाची अव्यय :—एकदा निभृतं शृगालो ब्रूते। (एक समय एकान्त में सियार बोला)

(११) अथ, अथवा, अपिच, किञ्च प्रभृति अव्यय जिनसे वाक्य का प्रारम्भ होता है सबसे प्रथम रहते हैं और इनके बाद प्रायः अधिकरण पद रहता है। जैसे :—अथ कदाचित् चित्राङ्गनामा मृगः केनापि त्रासितस्तत्रागत्य मिलितः। (एक दिन चित्राङ्ग नामक मृग किसी से डराया हुआ वहां आकर मिला) अथवा इत्यादि उपर्युक्त अव्ययों का भी यही प्रकार समझ लेना चाहिये।

(१२) यदि अधिकरण कारक को किसी क्रिया से सम्बन्ध हो तो उसे ठीक क्रिया के पहले रखना अच्छा होता है। जैसे :—कृष्णः नद्याः तटे तिष्ठति। (कृष्ण नदी के किनारे खड़ा है)

(१३) प्रश्न में यदि कोई प्रश्नवाचक अव्यय तथा किम् शब्द का प्रयोग नहीं हो तो क्रिया को सबसे पहले रखना चाहिये। जैसे : — अस्ति ते मनोरथः वेदान् पठितुम् ? (क्या तू वेद पढ़ना चाहता है ?)

(१४) प्रश्न वाचक वाक्य में यदि अपि, कथम्, अथ इत्यादि प्रश्नवाचक अव्ययों में कोई अव्यय तथा प्रश्नार्थक किम् शब्द आवे तो वाक्य में उसका

प्रयोग पहले ही करना चाहिये। जैसे :—१. अथ अभिलषति भवान् इदं द्रष्टुम् ? (क्या आप इसे देखना चाहते हैं ?) २. अपि इच्छति सः तत्र गन्तुम् ? (क्या वह वहां जाना चाहता है ?) ३. कथम् अयम् एवम् करोति ? (क्यों यह ऐसा करता है ?) ४. कः तत्र गमिष्यति ? (कौन वहां जायगा ?)

(१५) च (और), वा (अथवा) चेत् (यदि) तु, हि, इव, एव, खलु, अपि (भी), नाम, नु, किल, जातु, स्वित् , ह, स्म, वै, इन अव्ययों को वाक्य के प्रारम्भ में कभी नहीं रखना चाहिये। यथा :—

चः—रामः लक्ष्मणश्च या रामश्च लक्ष्मणश्च ? (राम और लक्ष्मण)

वाः—रामः श्यामो वा या रामो वा श्यामो वा। (राम अथवा श्याम)

चेत् :—रामं भजिष्यसि चेत् सुखं यास्यसि। (राम को भजोगे तो सुख पाओगे)

(१६) यावत्–तावत् , यत्–तत् , यथा–तथा, यतः–ततः, यदि–तर्हि, यदा–तदा, यत्र–तत्र इत्यादि संयोजक (Correlative conjunction) अव्ययों को जिस वाक्य के साथ इनका सम्बन्ध रहे उसके पूर्व ही रखना चाहिये। यावत्–तावत् :—यावत् स द्रष्टुं गच्छति तावत् स पलायितः। (जब तक वह देखने जाता है तब तक वह भाग गया) यत्–तत्—यत् करोषि तत् अहं पश्यामि। (जो करते हो वह मैं देखता हूँ) यथा–तथा :—यथा रूपं तथा गुणः। (जैसा रूप वैसा गुण) यतः–ततः—यतः दुःखम् भवति ततः सुखम् अपि भवति। (जिससे दुःख होता है उससे सुख भी होता है) यदि–तर्हि—यदि स आगमिष्यति तर्हि अहं गमिष्यामि। (यदि वह आवेगा तो मैं जाऊँगा)

(१७) हा, हन्त, अहह, आदि खेदसूचक अव्ययों (Interjection) को वाक्य के प्रारम्भ में ही रखना चाहिये। हाः—हा हतोऽस्मि। (हाय! मैं मारा गया) हन्तः—हन्त ! त्वम् अपि माम् तिरस्करोषि ? (हाय ! तू भी मेरा अनादर करता है ?)

(१८) अहो, अये, अयि, भोः आदि सम्बोधनसूचक अव्यय वाक्य के पहले ही आते हैं। यथा :—अहो-अहो ! महाराज! विद्वान् भूत्वा कथम्

अयमेवं ब्रवीति। (हे महाराज! विद्वान् होकर यह ऐसा क्यों बोलता है।) अयि :—अयि देवि! किं रोदिषि? (हे देवी! क्यों रोती है?) भोः—भोः सभ्याः! इदं शृणुत। (हे सभ्यगण! यह सुनिये।) अये-अये देवदत्त! इदं किं कृतम्। (अये देवदत्त! यह क्या किया?)

(१९) एव (ही), केवलम् (सिर्फ) इन दो अव्ययों को अपने अभिप्रायानुसार जिस पद के अर्थ पर जोड़ देना हो उसके बाद में रखना चाहिये अन्यथा इन दोनों के प्रयोग में किञ्चिन्मात्र भी स्थानान्तर हो जाने से अर्थ ही बदल जाता है। जैसे :—१. कृष्ण एव पत्रं लिखति (कृष्ण ही पत्र लिखता है, दूसरा कोई नहीं)। २. कृष्णः पत्रमेव लिखति (कृष्ण पत्र ही लिखता है; और कुछ नहीं)। ३. कृष्ण पत्रं लिखति एव (कृष्ण पत्र लिखता ही है; पढ़ता नहीं)। इसलिये अव्ययों में इन उपर्युक्त अव्ययों के प्रयोग पर छात्रों को पूर्ण सावधानी रखनी चाहिये।

अभ्यास

(क) वाक्य में पदों के रखने का साधारण क्रम क्या है? उदाहरण देकर बताओ।

(ख) संस्कृत में पद-क्रम के लिए विशेष नियम क्यों नहीं है?

(ग) संस्कृत के वाक्य में क्रमभेद से अर्थ-भेद होता है या नहीं? उदाहरणों के द्वारा समझाओ।

(घ) 'एव' तथा केवलम्' इन दो अव्ययों के क्रमभेद के प्रयोग से वाक्य बनाओ तथा अर्थ-भेद दिखलाओ।

(ङ) यथा-तथा, तत्-तत् का प्रयोग कर कुछ वाक्यों की रचना करो।

अध्याय २

पाठ १

वाक्य–विवेचन

वाक्य-प्रकार :—इसके पूर्व प्रकरण में वाक्य की परिभाषा बतला दी गई है। वाक्य के मुख्यतया निम्नलिखित तीन प्रकार होते हैं :—

[१] सरल वाक्य [२] मिश्रित वाक्य [३] संयुक्त वाक्य।

[१] **सरल वाक्य** :—जिसमें एक उद्देश्य कर्ता और एक विधेय (समापिका क्रिया) हो या जो विधेय का काम करता हो, तथा क्रिया के सकर्मक होने पर कर्म पद भी हो तो उसे सरल वाक्य कहते हैं। जैसे :— रामः खेलति=राम खेलता है। इसमें 'रामः' यह उद्देश्य पद है और 'खेलति' यह विधेय पद है इसलिए यह सरल वाक्य हुआ। वीरेन्द्रः (उद्देश्य) पुस्तकं (कर्म) पठति (विधेय) वीरेन्द्र पुस्तक पढ़ता है।

[२] **मिश्रित वाक्य** :—जिस वाक्य में एक प्रधान और एक या एक से अधिक अङ्गभूत वाक्य (उपवाक्य) हों उसे मिश्रित वाक्य कहते हैं। जैसे :—रामः कथयति यत् सः खादति=राम कहता है कि वह खाता है। यदा स वदति तदा अहम् लिखामि=जब वह बोलता है तब मैं लिखता हूँ।

[३] **संयुक्त वाक्य** :—जिस वाक्य में दो या दो से अधिक सरल वाक्य या मिश्रित वाक्य होते हैं उसे संयुक्त वाक्य कहते हैं। संयुक्त वाक्य स्वाधीन रहते हैं। ये किसी के अधीन नहीं रहते। ये वाक्य किन्तु, परन्तु, अथवा, एवं, तथा आदि अव्ययों के द्वारा जोड़े जाते हैं। जैसे :—(१) कृष्णा खादति एवं रामः हसति=कृष्णा खाती है और राम हँसता है। (उपर्युक्त) वाक्य में दो सरल वाक्य हैं)। (२) श्यामः सुशीलः अस्ति, अत एव यदा अहं तस्य गृहं गच्छामि तदा स मां प्रणमति= श्याम सुशील है इसलिए जब मैं उसके घर जाता हूँ तब वह मुझे प्रणाम करता है। (यहां पर एक सरल वाक्य और एक मिश्रित वाक्य है)

पाठ २

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट मालूम हो गया होगा कि चाहे किसी प्रकार का भी वाक्य क्यों न हो उसके मुख्य अंग दो ही होते हैं :—

[१] उद्देश्य (Subject) [२] विधेय (Predicate)

जब तक किसी वाक्य में ये दोनों (उद्देश्य और विधेय) नहीं रहते तब तक उससे किसी विशेष अभिप्राय का बोध नहीं होता। जैसे—केवल 'रामः' यह उद्देश्य मात्र कहने से कहने वाले का क्या अभिप्राय है यह बिलकुल मालूम नहीं होता, 'रामः' गच्छति या पठति या खेलति कोई अभिप्राय सूचित नहीं होता, जब उसके साथ गच्छति या खादति आदि कोई विधेय पद रखते हैं तब उसका विशेष अभिप्राय ज्ञात होता है। इसी प्रकार केवल 'गच्छति' या 'पठति' विधेय मात्र कहने से कोई विशेष अभिप्राय ज्ञात नहीं होता, कौन जाता है ? कौन पढ़ता है ? 'सिंहः' या 'व्याघ्रः' या 'बालकः' या 'मनुष्यः' कोई निश्चित अभिप्राय मालूम नहीं होता। जब 'गच्छति' या 'पठति' के साथ 'सिंहः' या 'बालकः' कोई उद्देश्य लावेंगे या प्रकरण से किसी उद्देश्य का वहाँ अध्याहार करेंगे तभी उसका कुछ विशेष अभिप्राय ज्ञात होगा।

[१] उद्देश्य :—जिसके विषय में कुछ कहा जाय, उसे उद्देश्य कहते हैं।

[२] विधेय :—उद्देश्य के विषय में जो कुछ कहा जाय उसे विधेय कहते हैं। किसी प्रकार के वाक्य में ये दोनों अवश्य विद्यमान रहेंगे। देखिये—

१. सरल वाक्य :—रामः (उद्देश्य) पुस्तकं पठति (विधेय)।

२. मिश्रित वाक्य :—यदा सः (उद्देश्य) गच्छति (विधेय) तदा अहम् (उद्देश्य) पठामि (विधेय)।

३. संयुक्त वाक्य :—श्यामः (उद्देश्य) सुशीलः अस्ति (विधेय)

अतः यदा अहं (उद्देश्य) गच्छामि (विधेय) तदा सः (उद्देश्य) प्रणमति (विधेय)।

जहां प्रसंगानुसार सरलता से उद्देश्य या विधेय या दोनों के प्रयोग के विना भी वक्ता का सम्पूर्णअभिप्राय मालूम हो जाता है, ऐसे स्थलों में उद्देश्य विधेय या दोनों का प्रयोग नहीं किया जाता किन्तु ऐसे स्थलों में भी प्रसंगानुसार लुप्तपद का अध्याहार कर लिया जाता है। जैसे—उद्देश्य का अध्याहार-(त्वं) पत्रं लिख = (तू) चिट्ठी लिख। (त्वं) किं करोषि ? (तू) क्या करता है ? गच्छति (सः) (वह) जाता है। विधेय का अध्याहार–इदं कस्य पुस्तकम् (अस्ति)? =यह किताब किसकी (है) ? कः वदति ? कृष्णः (वदति) कृष्ण (बोलता है)। इयं तस्य माता (अस्ति)=यह उसकी माँ (है)। उद्देश्य–विधेय दोनों का अध्याहार–प्रश्न में-(त्वं) किं (वदसि ?)=(तू) क्या (कहता है ?)। 'सः पठति ?' आम् (सः पठति)। वह पढ़ता है ? हां (वह पढ़ता है।) अथवा 'न हि (स न पठति)।' अथवा नहीं (वह नहीं पढ़ता है।)

अभ्यास

(क) वाक्य के कितने भेद होते हैं ? प्रत्येक का उदाहरण तथा लक्षण बताओ।

(ख) वाक्य के मुख्य अङ्ग कौन कौन हैं ?

(ग) वाक्य में उद्देश्य और विधेय का प्रयोग क्यों आवश्यक है ? कुछ ऐसे वाक्यों की रचना करो जिनमें केवल उद्देश्य अथवा केवल विधेय अथवा उद्देश्य और विधेय दोनों का अध्याहार करना पड़े।

(घ) अध्याहार कहां किया जाता है ?

(ङ) कैसे स्थलों में उद्देश्य और विधेय का प्रयोग नहीं होता है तथा ऐसे स्थलों में उद्देश्य तथा विधेय की जानकरी कैसे होती है ?

पाठ ३

उद्देश्य–विचार

उद्देश्य प्रायः संज्ञा (साधारण या संकीर्ण) या सर्वनाम होता है । जैसे :—

संज्ञा—

(१) जातिवाचक :—मनुष्यः (उद्देश्य) खेलति=मनुष्य खेलता है।

(२) व्यक्तिवाचक :—कृष्णः (उद्देश्य) गच्छति=कृष्ण जाता है ।

(३) द्रव्यवाचक :—घृतं (उद्देश्य) द्रवति=घी पिघलता है ।

(४) भाववाचक (तद्धितीय या कृदन्तीय):–विवशता (उद्देश्य) वर्धते=लाचारी बढ़ रही है । रागः (उद्देश्य) जायते=राग उत्पन्न होता है ।

(५) क्रियावाचक :—भ्रमणं (उद्देश्य) स्वास्थ्यकरमस्ति=टहलना स्वास्थ्यकारक है ।

(३) गुणवाचक :—विनयः (उद्देश्य) वर्धते=विनय बढ़ती है ।

(७) समूहवाचक :—सेना (उद्देश्य) गच्छति =सेना जाती है ।

सर्वनाम :—

(१) पुरुषवाचक :—त्वं (उद्देश्य) लिखसि=तू लिखता है । अहम् (उद्देश्य) खादामि =मैं खाता हूँ ।

(२) निश्चयवाचक :—अयम् (उद्देश्य) गच्छति=यह जाता है । सः (उद्देश्य) आयाति=वह आता है । असौ (उद्देश्य) पठति=वह पढ़ता है आदि ।

(३) प्रश्नवाचक :—कः (उद्देश्य) धावति ? कौन दौड़ता है ?

विशेषण :—

(क) संज्ञा के रूप में आया हुआ विशेषण भी उद्देश्य का काम करता है । जैसे :—विद्वान् सर्वत्र पूज्यते=विद्वान् सर्वत्र पूजा जाता है । अस्ति कश्चिदेवम्भूतो विद्वान ?=कोई ऐसा विद्वान् है ?

(ख) प्रायः संख्यावाचक शब्द उद्देश्य की तरह वाक्य में आते हैं । जैसे :—शरदां शतम् व्यतीतम् =सौ वर्ष बीत गए ।

(ग) जहाँ क्रिया से ही कर्त्ता के वचन तथा पुरुष का ज्ञान हो जाता है, प्रायः ऐसे स्थलों में उद्देश्य का प्रयोग नहीं किया जाता। जैसेः—(भवान्) पश्यतु मामकीं दशाम्=(आप) मेरी दशा की ओर देखिए। परवशः किं ब्रूयाम् (अहम्)=पराधीन हूँ, क्या कहूँ (मैं) ?, कथय (त्वं) तत्रत्यं समाचारम्=वहां का समाचार (तू) कह।

(घ) यदि विधेय की क्रिया कर्तृवाच्य की होती है तो उद्देश्य (कर्त्ता) में प्रथमा विभक्ति होती है। जैसे :—कृष्णा (उद्देश्य) चन्द्रं पश्यति (कर्तृवा०)। त्वं (उद्देश्य) तिष्ठसि (कर्तृवा०)। यदि विधेय की क्रिया कर्मवाच्य या भाववाच्य की हो तो उद्देश्य में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे :—कृष्णेन (उद्देश्य) चन्द्रः दृश्यते (कर्मवा०) त्वया (उद्देश्य) स्थीयते (भाववा०)।

अभ्यास

(क) किस प्रकार के शब्द उद्देश्य होते हैं ? उदाहरण देकर समझाओ।
(ख) विशेषण कब उद्देश्य होता है ?
(ग) विधेय की क्रिया के भेद से उद्देश्य की विभक्ति किस प्रकार बदलती है ? उदाहरण देकर समझाओ।

पाठ ४

विधेय-विचार

विधेय :—उद्देश्य के विषय में जो कुछ कहा जाय उसे विधेय कहते हैं।

(१) तिङन्त क्रियापद विधेय होते हैं। जैसेः—पठति, पठतु, अपठत्, पठिष्यति आदि।

(२) कुछ कृदन्त प्रत्यय भी ऐसे हैं जिनसे बने पद समापिका क्रिया का काम देते हैं। जैसे :—पठितम्, पठितवान्, पठनीयम्, पठितव्यम्, पाठ्यम् आदि।

(३) अस् धातु के पूरक के रूप में आया हुआ कोई संज्ञा, सर्वनाम या विशेषण पद भी विधेय का काम करता है। जैसेः–लोभः पापस्य 'कारणम्'= लोभ पाप का कारण है। माता मित्रं पिता चेति स्वभावात्रितयं 'हितम्'= माता, मित्र और पिता स्वाभाविक हित होते हैं। यहां गम्यमान 'अस्ति' से युक्त 'कारणम्' और 'हितम्' ये संज्ञा पद विधेय का काम कर रहे हैं। अहह महापङ्के पतितः असि=ओः तू बड़े भारी पांक में गिर गया ! यहां प्रत्यक्ष 'अस्' धातु (असि) से युक्त 'पतितः' यह विशेषण पद विधेय का काम कर रहा है ! अयम् अस्मि = यह हूँ। यहाँ प्रत्यक्ष अस् धातु (अस्मि) से युक्त वर्तमान 'अयम्' पद विधेय का कार्य कर रहा है।

(४) कहीं-कहीं अव्यय पद भी विधेय का काम करता है। जैसे :— विषवृक्षोऽपि संवर्द्ध्य स्वयं छेत्तुम् 'असाम्प्रतम्' यहां 'असाम्प्रतम्' यह अव्यय पद ही 'न युज्यते' इस विधेय पद का काम सम्पन्न कर रहा है। इसका अर्थ है—विष का वृक्ष भी लगाकर स्वयं काटना योग्य नहीं है।

(५) कहीं-कहीं उद्देश्य और विधेय दोनों के प्रयोग नहीं रहने पर भी अव्ययों के प्रयोग से उनका अर्थ प्रकट हो जाता है। ऐसे स्थलों में उद्देश्य तथा विधेय का प्रयोग नहीं किया जाता। जैसे—अग्नये स्वाहा=अग्नये सुहुतम् अस्तु। अलं श्रमेण=श्रमेण साध्यं न अस्ति। नास्तिकम् धिक्=नास्तिकः निन्दनीयः अस्ति। इन स्थलों में अव्ययों (स्वाहा, अलं, धिक्) से ही उद्देश्य विधेय का अर्थ निकल जाता है।

विशेषः—क्रिया (विधेय) वचन, पुरुष और काल के अनुसार बदलती है। जैसे :—वचन के अनुसार :—पठति (एकवचन) पठतः (द्विवचन) पठन्ति (बहुवचन)। पुरुष के अनुसार :—पठति (प्र० पु०) पठसि (मध्यम पु०) पठामि (उत्तम पु०) काल के अनुसार :—पठति आदि (वर्त्तमान काल) अपठत् आदि (भूतकाल) पठिष्यति आदि (भविष्यत्काल)।

वाक्य रचना करते समय या अनुवाद करते समय उपरिनिर्दिष्ट बातों पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए। निम्न वर्ग से ही छात्रोंको इन बातों का

थोड़ा-थोड़ा ज्ञान दिया जा चुका है। इसलिए यहां इनके विशेष विस्तार की आवश्यकता नहीं है।

अभ्यास

(क) विधेय किसे कहते हैं ? किस प्रकार के शब्द विधेय होते हैं ? उदाहरण देकर बतलाओ।

(ख) संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण पद कहाँ विधेय की तरह प्रयुक्त होते हैं ? उदाहरण के द्वारा समझाओ।

(ग) कुछ ऐसे उदाहरण लिखो जिनमें अव्यय पद विधेय की भांति प्रयुक्त हों?

(घ) विधेय के रूप कब बदलते हैं ?

पाठ ९

कर्म :—यद्यपि यह समझाया जा चुका है कि वाक्य के उद्देश्य और विधेय ये ही दो प्रमुख अंग हैं तथापि जहां वाक्य में विधेय अकर्मक क्रिया हो वहाँ तो उन दोनों से ही वाक्य का पूर्ण अभिप्राय सिद्ध हो जाता है। परन्तु जिस वाक्य का विधेय कोई सकर्मक क्रिया हो अथवा गत्यर्थक क्रिया हो या कर्मप्रवचनीय के कारण सकर्मक की जैसी क्रिया हो इन सभी स्थलों में विना कर्म पद के विधेय (क्रिया) का पूर्ण अर्थ प्रकाश नहीं होता और ऐसे वाक्यों में विधेय का अर्थ पूर्ण करने के लिए कर्मपद (Object) का प्रयोग आवश्यक होता है। और इस प्रकार सकर्मक क्रिया (विधेय) वाले वाक्य में उद्देश्य; विधेय और कर्म ये तीन आवश्यक अङ्ग हो जाते हैं। जैसे :—बालस्तिष्ठति = लड़का खड़ा है। इस अकर्मक विधेय वाले वाक्य में 'बालक:' (उद्देश्य) और 'तिष्ठति' (विधेय) इन दोनों के द्वारा ही पूरा अभिप्राय प्रकट हो जाता है, किन्तु कृष्णः पश्यति = कृष्ण देखता है, इस वाक्य में 'पश्यति' इस विधेय के सकर्मक होने के कारण केवल उद्देश्य, विधेय के प्रयोग से पूरे अभिप्राय का प्रकाश नहीं होता। इसके 'पश्यति' इस विधेय के विषय में किं पश्यति ?=क्या देखता है यह जिज्ञासा बनी रह जाती है। जब 'पश्यति' के पहले 'चन्द्रम्' या 'सूर्यम्' कोई कर्म

पद दिया जायगा तो पूरा अभिप्राय प्रकट होगा। जैसे :—कृष्णः चन्द्रं पश्यति = कृष्ण चाँद देखता है इत्यादि।

उद्देश्य की तरह कर्म के लिए भी संज्ञा पद, सर्वनाम पद या कोई भी ऐसा पद (विशेषण, वाक्य, वाक्यांश आदि) जो संज्ञा का काम कर सके प्रयोग में लाया जा सकता है। जैसे :—

संज्ञा :—सः अश्वं (जातिवा०) क्रीणाति = वह घोड़ा खरीदता है। कृष्णः भागवतं (व्यक्तिवा०) पठति = कृष्ण भागवत पढ़ता है। कृष्णः नवनीतं (द्रव्यवा०) खादति=कृष्ण मक्खन खाता है। साधु धर्मं (गुणवा०) चरति = सज्जन धर्म करता है। तस्य मूर्खतां (भाववा०) पश्य = उसकी मूर्खता देखो। स सभां (समूहवा०) करोति = वह सभा करता है। योगी ध्यानं (क्रियावा०) करोति = योगी ध्यान करता है।

सर्वनाम :—सः त्वां (पु० वा०) पश्यति=वह तुझे देखता है। तम् (निश्चयवा०) पश्य = उसे देखो। सा कं (प्रश्नवा०) पश्यति ?= वह किसको देखती है ?

विशेषण : सर्वे विद्वांसम् (संज्ञा की तरह प्रयुक्त विशेषण) पूजयन्ति = सब लोग विद्वान् को पूजते हैं।

अभ्यास

(क) किन स्थलों में कर्म, वाक्य का आवश्यक अङ्ग होता है ? सोदाहरण समझाओ।

(ख) किस प्रकार के शब्द कर्म के लिये प्रयुक्त होते हैं ? सोदाहरण लिखो।

पाठ ६

विस्तार-विवेचन

इसके पूर्व प्रकरण में यह बताया जा चुका है कि अकर्मक विधेय वाले वाक्य में उद्देश्य, विधेय तथा यदि सकर्मक विधेय का वाक्य हो तो उद्देश्य, विधेय और कर्म ये वाक्य के आवश्यक अंग हैं। इनके अतिरिक्त वाक्य में आये हुए और जितने शब्द होते हैं वे सब के सब इन्हीं में से किसी एक

की विशेषता बतलाते हैं या गुण प्रकट करते हैं, और ऐसे शब्दों को विस्तार-बोधक शब्द कहते हैं। किसी भी वाक्य में उद्देश्य की विशेषता या गुण बतलाने के लिए आये हुए शब्द को उद्देश्य का विस्तार, विधेय की क्रिया की किसी तरह की विशेषता प्रकट करने वाले शब्द को विधेय का विस्तार तथा कर्म के गुण प्रकट करने वाले तथा उसकी विशेषता दिखलाने वाले शब्द को कर्म का विस्तार जानना चाहिए।

उद्देश्य का विस्तार

संज्ञा अथवा सर्वनाम की विशेषता बतलाने वाले जितने प्रकार के शब्द हैं उन सबों के द्वारा उद्देश्य का विस्तार किया जा सकता है। जैसेः—

(१) विशेषण द्वारा :—

(क) सार्वनामिक :–'सः' बालकः किं करोति=वह लड़का क्या करता है?

(ख) गुणबोधक :—कृष्णः अश्वः धावति=काला घोड़ा दौड़ता है।

(ग) परिणामबोधक :—पञ्च पुरुषाः खेलन्ति=पाँच पुरुष खेलते हैं।

(घ) तद्धितीय :—दाशरथिः रामः प्रसीदतु=दशरथनन्दन राम प्रसन्न हो।

(ङ) कृदन्तीय :–शतृ (अत्), शानच् (आन, मान), क्त (त), तव्यत् (तव्य) अनीयर्, (अनीय) यत् (य) प्रत्ययान्त क्रमशः उदाहरण :—गच्छन् पथिकः मृतः (शतृ प्रत्ययान्त), सेवमानः भक्तः वदति (शानच् प्रत्ययान्त), श्रुतः वृत्तान्तः अस्ति (क्त प्रत्ययान्त), गन्तव्यः मार्गः अस्ति (तव्य), पठनीयम् पुस्तकम् पठ (अनीयर् प्रत्ययान्त), दृश्यं काव्यम् अस्ति (यत्प्रत्ययान्त)। इनके अतिरिक्त और भी इष्णुच्, घिणुन् आलुच् आदि बहुत कृदन्तप्रत्यय हैं, जिनसे विशेषण बनते हैं।

विशेष :—सकर्मक क्रियाओं से बने जो कृदन्तीय विशेषण हैं उनके साथ आया हुआ कर्मपद भी उद्देश्य के विचार में आजाता है। जैसे :—पुष्पाणि चिन्वानाः बालिकाः गायन्ति=फूल चुनती हुई लड़कियाँ गाती हैं। यहां 'चिन्वानाः' इस कृदन्तीय विशेषण के साथ आया हुआ उसका कर्म पुष्पाणि भी 'बालिकाः' इस उद्देश्य के विस्तार बोधक शब्द में आ गया।

(२) समानाधिकरणसंज्ञा:—नरपतिः सुदर्शनः आयाति= राजा सुदर्शन आता है।

(३) सम्बन्ध पद (संज्ञासम्बन्धी या सार्वनामिक):-रामस्य पुस्तकम् अस्ति=राम की किताब है। तव पिता आगच्छति=तेरे पिता जी आते हैं। उद्देश्य के विस्तार के लिए जितने प्रकार के शब्द बतलाये गए हैं किसी एक वाक्य में भी उन सब प्रकार के शब्दों के द्वारा उद्देश्य का विस्तार किया जा सकता है। जैसे :-इमे (सार्वनामिक विशेषण) तीक्ष्णाः (संज्ञावा० वि०) पञ्च घोटकाः क्षेत्रे धावन्तः (कृदन्तीय वि०) अतिवेगवन्तः (तद्धितीय वि०) श्यामकर्णाः (समानाधिकरण सं०) इत एव आगच्छन्ति।

ऊपर के उदाहरण में उद्देश्य-विस्तार के लिए जितने प्रकार के शब्द बतलाये गए हैं प्रायः सब आ गए हैं। इसी प्रकार उद्देश्यविस्तारबोधक शब्दों के जैसे :—विशेषण, संज्ञा या सर्वनाम पद, कृदन्तीय विशेषण, और तद्धितीय विशेषण में भी कुछ का एक वा अनेक शब्दों के द्वारा विस्तार किया जा सकता है।

(१) विशेषण का विस्तार :—

(क) विशेषण के द्वारा :—'महान्' वीरः पुरुषः अस्ति।

(ख) अव्यय के द्वारा :—'अतीव' सुन्दरः शिशुः अस्ति।

(ग) कर्म के द्वारा :—'लतया' परिवेष्टितः वृक्षः शोभते।

(घ) अधिकरण के द्वारा :—स 'पाण्डित्ये' अद्वितीयः अस्ति।

(२) संज्ञा का विस्तार :—

(क) विशेषण के द्वारा :—'सुन्दरः' नरपतिः सुदर्शनः आयाति।

(ख) सर्वनाम के द्वारा :—'असौ' नरपतिः सुदर्शनः आयाति।

(ग) परिमाणवाचक विशेषण के द्वारा:-सुदर्शनः 'एकः' राजा आसीत्।

(घ) षष्ठ्यन्तपद (सम्बन्ध-पद) के द्वारा:-सुशीलः 'मम' शिष्यः अस्ति।

(ङ) अव्यय के द्वारा :—सुदर्शनः 'नाम' नरपतिरासीत्।

(३) संबन्ध पद का विस्तार :—

(क) विशेषण के द्वारा :—'सुन्दरस्य' रामस्य पुस्तकम् अस्ति।

(ख) संख्यावाचक शब्द के द्वारा :-'त्रयाणां'पुस्तकानाम् इदं मूल्यम्
(ग) सर्वनाम के द्वारा :-'अस्य' सुन्दरस्य रामस्य पुस्तकम् अस्ति।
(घ) अन्य षष्ठयन्त पद के द्वारा :—'मम' शिष्यस्य गृहम् अस्ति।
(ङ) कृदन्तीय विशेषण के द्वारा :—'दत्तायाः' परीक्षायाः किं फलम्?

(४) कृदन्तीय विशेषण :—
(क) क्रिया विशेषण के द्वारा :—'शीघ्रं' गच्छन् पथिकः मृतः।
(ख) कर्म के द्वारा :—'पुष्पाणि' चिन्वानाः बालिकाः गायन्ति।
(ग) करण के द्वारा :—'बाणेन' विद्धः विहंगः लुण्ठति।
(घ) अपादान के द्वारा :—विद्यालयात् निवृत्ताः छात्राः खेलन्ति।
(ङ) अधिकरण के द्वारा :—सभायामुपस्थिताः लोकाः अवदन्।

अभ्यास

(क) विस्तार किसे कहते हैं ? विधेय के विस्तार से क्या तात्पर्य है ?
(ख) किस प्रकार के शब्दों से उद्देश्य का विस्तार किया जाता है ? प्रत्येक का उदाहरण दो।
(ग) कर्मपद कब उद्देश्य के विस्तार में प्रयुक्त होता है ? उदाहरण देकर समझाओ।
(घ) एक ऐसा उदाहरण दो जिसमें सब प्रकार के उद्देश्य के विस्तार-बोधक शब्द प्रयुक्त हों।
(ङ) उद्देश्य के विस्तार में प्रयुक्त संज्ञा, विशेषण तथा सम्बन्ध पदों तथा कृदन्तीय विशेषण का किस प्रकार के शब्दों के द्वारा विस्तार किया जाता है ? उदाहरण दो।

पाठ ७

विधेय का विस्तार

जिन शब्दों से विधेय की क्रिया का काल, स्थान, प्रकार या ढंग, क्रम, करण या साधन, कारण या अभिप्राय सूचित हों उन शब्दों को क्रिया का विस्तार कहते हैं। विधेय के विस्तार में प्रायः निम्नलिखित प्रकार के शब्द आते हैं।

(१) क्रियाविशेषण :—सः स्तोकं पचति = वह थोड़ा पकाता है। सः सविनयमब्रवीत् = वह विनयपूर्वक बोला ।

(२) क्रियाविशेषण अव्यय :—

(क) समयवाचक :—अहं 'सम्प्रति' पाटलिपुत्रे वसामि = मैं इस समय पटने में रहता हूँ ।

(ख) स्थानवाचक :—सः अधमः 'कुत्र' गतः ?=वह नीच कहाँ गया ?

(ग) प्रकारवाचक :—सः कथं पठति ? = वह कैसा पढ़ता है ?

जलबिन्दुनिपातेन 'क्रमशः' पूर्यते घटः = जल की बूँद गिरने से धीरे-धीरे घड़ा भर जाता है ।

(३) विस्मयादिबोधक अव्यय :—'दिष्ट्या' विजयाय वर्धते महाराजः—महाराज की विजय के लिए बधाई है ।

(४) सुबन्त पद :—

(क) करण तृतीया :—सः 'दण्डेन' ताडयति=वह डण्डे से मारता है।

(ख) सम्प्रदान चतुर्थी :—'लोकहिताय' प्रवर्ततां भवान्=आप लोक-कल्याण के लिये लग जायँ ।

(ग) अपादान पंचमी :—छात्रः 'अपठनात्' विनश्यति=विद्यार्थी नहीं पढ़ने से नष्ट हो जाता है ।

(घ) अधिकरण सप्तमी :—सः 'कार्तिकमासे' गमिष्यति=वह कार्तिक महीने में जायगा ।

(५) क्त्वा तथा ल्यप्प्रत्ययान्त :—कृष्णः 'भुक्त्वा' पठति=कृष्ण खाकर पढ़ता है । अहं 'विचार्य' कथयिष्यामि = मैं सोचकर कहूँगा ।

(६) तुमुन् (तुम्) प्रत्ययान्त :—रामः 'खेलितुम्' गच्छति= राम खेलने जा रहा है ।

विशेष :—

(क) परसर्गों (कर्मप्रवचनीयों) अथवा क्रिया-विशेषणों के साथ प्रयुक्त संज्ञा या सर्वनाम पद भी विधेय विस्तार का काम देते हैं। जैसे :—'मया सार्धम्' पठति=मेरे साथ पढ़ता है । 'श्रमाद् विना' विद्या न भवति=

परिश्रम के बिना विद्या नहीं होती। 'तरोरधस्ताद्' उपविशति = वृक्ष के नीचे बैठता है। 'मम समक्षम्' न वदति = मेरे सामने नहीं बोलता।

(ख) भाव सप्तमी से बने वाक्यांश प्रायः क्रियाविशेषण अव्यय की तरह प्रयुक्त होते हैं। जैसे :—अहं 'सूर्येऽस्तङ्गते' गमिष्यामि।

(ग) एक वाक्य में भी क्रियाविस्तार के लिए बतलाये गये सभी शब्दों के द्वारा क्रिया का विस्तार कर सकते हैं। जैसे :—सर्वं श्रुत्वा[१] आत्मानं शोधयितुं[२] मुक्तये[३] च स सविषापदम्[४] गङ्गायां[५] प्राणविसर्जनाय[६] गृहात्[७] सत्वरं[८] पद्भ्यां[९] प्रस्थितः।

विधेय-विस्तार का विस्तार :—

ऊपर जो विधेयविस्तार के शब्द बतलाये गये हैं उनमें से दो का या दो से अधिक का या किसी एक का प्रयोग करके विस्तारों का और भी आगे विस्तार किया जा सकता है। जैसे :—

१. अव्यय का विस्तार :— दूसरे अव्यय पद के द्वारा :–स अधुना 'अपि' न चिन्तयति।

२. कारण का विस्तार :—

(क) विशेषण के द्वारा :—'अतिवेगवता' रथेन गच्छति।

(ख) सर्वनाम के द्वारा :—'अनेन' उपदेशेन ज्ञानं भविष्यति।

(ग) सम्बन्ध पद के द्वारा :—'तव' दण्डेन कुक्कुरं ताडयति।

(घ) संख्यावाचक शब्द के द्वारा :—'पञ्चभिः' रूप्यकैः अश्वं क्रीणाति।

(ङ) कृदन्तीयविशेषण के द्वारा :—सा 'कम्पमानेन' हस्तेन तमस्पृशत्।

विशेष :—ऊपर जिन शब्दों के द्वारा करणपद का विस्तार बतलाया गया है, उनके द्वारा सम्प्रदान, अपादान तथा अधिकरण पद का भी विस्तार किया जा सकता है।

३. क्त्वा, ल्यप्, तुम् प्रत्ययान्त शब्दों का नीचे लिखे शब्दों के द्वारा विस्तार किया जा सकता है। केवल 'क्त्वा' के उदाहरण दिये जाते हैं। जैसे :—

(क) कर्म के द्वारा (यदि सकर्मक से उपर्युक्त प्रत्यय हुये हों) जैसेः—
अहं 'पाठं' पठित्वा गमिष्यामि ।

(ख) अव्यय के द्वारा जैसे :—'शीघ्रं' खादित्वा गमिष्यति ।

(ग) करण के द्वारा जैसे :—अहं 'स्वचक्षुर्भ्यां' दृष्ट्वा आगच्छामि ।

(घ) अपादान के द्वारा जैसे :—सः 'गृहात्' खादित्वा विद्यालयं गच्छति ।

(ङ) अधिकरण के द्वारा जैसे :—सः 'पाटलिपुत्रे' गत्वा पुस्तकं दास्यति ।

अभ्यास

(क) विधेय का विस्तार कैसे शब्दों को कहते हैं तथा विधेय का विस्तार किस प्रकार के शब्दों के द्वारा होता है ? प्रत्येक का उदाहरण दो ।

(ख) संज्ञा तथा सर्वनाम पद कहां विधेय विस्तार का काम करते हैं ? उदाहरण देकर समझाओ ।

(ग) एक ऐसा वाक्य बनाओ जिसमें सब प्रकार के विधेय-विस्तार के शब्द प्रयुक्त हों ।

(घ) विधेय के विस्तार-बोधक शब्दों का विस्तार किस प्रकार के शब्दों के द्वारा किया जाता है ? उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट करो ।

पाठ ८

कर्म का विस्तार

जो शब्द कर्म की विशेषता बतलावें या कर्म का गुण प्रकट करें, उन्हें कर्म का विस्तार करते हैं । उद्देश्य के विस्तार के लिये जितने प्रकार के शब्दों का व्यवहार बतलाया गया है, कर्म के विस्तार के लिये भी उन्हीं का व्यवहार (प्रयोग) होता है । जैसे :—

(१) विशेषण के द्वारा :—

(क) सर्वनामिक :—अहं 'तं' बालकं पश्यामि ।

(ख) गुणबोधक :—'कृष्णम्' अश्वं पश्य ।

(ग) परिमाणबोधकः—चतुरः अश्वान् क्रीणाति ।

(घ) तद्धितीय :—'दाशरथिं' राममानयत् ।

(ङ) कृदन्तीय :—'पठनीयम्' पुस्तकं पठ ।

(२) समानाधिकरणसंज्ञा के द्वारा :—'राजकुमारं' धनञ्जयं पाठयामि।

(३) सम्बन्धपद के द्वारा :—'रामस्य' पुस्तकं चोरयति ।

कर्म के विस्तार के लिये जितने प्रकार के शब्द प्रयुक्त होते हैं, उन सबों का एक वाक्य में भी कर्म विस्तार के लिये प्रयोग किया जा सकता है। जैसे :—इमान्[1] कृष्णान्[2] अतिवेगेन[3] धावतः[4] गोपालस्य[5] त्रीन्[6] श्यामकर्णान् 'अश्वान्' सर्वे साश्चर्यं पश्यन्ति । इस वाक्य में जितने अङ्काङ्कित पद हैं, वे सब 'अश्वान्' इस कर्म की विशेषता बतलाते हैं। उद्देश्य–विस्तार के विस्तार में प्रयुक्त प्रायः सभी शब्द कर्म–विस्तार के विस्तार के लिये प्रयुक्त होते हैं ।

अभ्यास

(क) कर्म का विस्तार किसे कहते हैं ?

(ख) कर्म के विस्तार के लिये किस प्रकार के शब्द व्यवहृत होते हैं ? प्रत्येक का उदाहरण देकर समझाओ ।

(ग) कुछ ऐसे वाक्य बनाओ जिनमें समानाधिकरण संज्ञा या सम्बन्ध पद कर्म के विस्तार के लिये प्रयुक्त हों ?

(घ) एक ऐसा वाक्य बनाओ जिसमें कर्मविस्तार के लिये प्रयुक्त होने वाले सभी शब्दों का समावेश हो ?

अध्याय ३

पाठ १

पुरुष–विवेचन

वाक्य के मुख्य दो अंगों (उद्देश्य और विधेय) में परस्पर पूर्ण समन्वय अर्थात् पुरुष, वचन, लिङ्ग (यदि तिङन्तीय क्रिया हो) और काल में पूर्ण समानता होनी चाहिये। अन्यथा वाक्य ठीक नहीं होगा और उससे उचित अर्थ की उपस्थिति भी नहीं होगी। जैसे :—रामः गच्छसि, त्वम् गच्छामि, अहं गच्छति, रामौ गच्छति, युवाम् गच्छसि, अहं गच्छामः इन वाक्यों में सर्वत्र उद्देश्य विधेय हैं, परन्तु प्रथम तीन वाक्यों में उद्देश्य विधेय में पुरुष की समानता तथा बाद के तीन वाक्यों में उद्देश्य विधेय में वचन की समानता नहीं है। इसलिये ये वाक्य ही नियमानुसार ठीक नहीं हैं और न तो इनसे उचित अर्थ की ही उपस्थिति होती है। इसलिये वाक्य में उद्देश्य विधेय तथा विशेष्य विशेषण के परस्पर के समन्वय से पूर्ण सम्बन्ध रखने वाले पुरुष और वचन के सम्बन्ध में कुछ बातें बतायी जाती हैं।

पुरुष :—

संस्कृत में पुरुष तीन हैं :—

(क) प्रथम पुरुष। (ख) मध्यम पुरुष। (ग) उत्तम पुरुष।

प्रथम पुरुष :—साधारणतः संसार की सब वस्तुएँ जिनके विषय में कुछ चर्चा की जाय प्रथम (अन्य) पुरुष कहलाती हैं। जैसे :—रामः पठति, ब्राह्मणः याति, सेना आयाति, सिंहः गर्जति, गंगा वहति, पर्वतः अस्ति, शयनं भवति, सः खेलति, असौ खादति। इन वाक्यों में रामः, ब्राह्मणः, सेना, सिंहः, गंगा, पर्वतः, शयनम्, सः, असौ ये सब के सब अन्य (प्रथम) पुरुष हैं।

मध्यम पुरुष :—जिसको कहा जाय अर्थात् जो सुने वह मध्यम पुरुष कहलाता है। 'युष्मद्' (तू) ही मध्यम पुरुष होता है। इसके अतिरिक्त

कोई मध्यम पुरुष नहीं हो सकता। जैसे :—त्वं खाद (तू खा)। युवां पिबतम् (तुम दोनों पीओ)। यूयम् पठत (तुम पढ़ो) आदि।

उत्तम पुरुष—कहने वाला उत्तम पुरुष कहलाता है। 'अस्मद्' (मैं) ही उत्तम पुरुष होता है। जैसे :—अहम् गच्छामि (मैं जाता हूँ)। आवाम् पठावः (हम दोनों पढ़ते हैं)। वयम् लिखामः (हम सब लिखते हैं) आदि।

पुरुष के सम्बन्ध की कुछ विशेष बातें

(१) जब कर्त्ता में विभिन्न पुरुषों के दो या दो से अधिक पद 'च' द्वारा जुड़े हों, तब क्रिया उनके सम्मिलित वचन के अनुसार होती है, किन्तु नीचे लिखी व्यवस्था के अनुसार :—

(क) यदि वाक्य में प्रथम, मध्यम, उत्तम सभी पुरुषों के पद हों अथवा मध्यम और उत्तम पुरुष के पद हों तथा उत्तम और अन्य पुरुष के पद हों तो इन सभी अवस्थाओं में क्रिया उत्तम पुरुष की होती है। जैसे :—१. त्वञ्च अहञ्च श्यामश्च खेलामः (तू और मैं और श्याम खेलते हैं)। २. त्वञ्च अहञ्च खेलावः (तू और मैं खेलते हैं)। ३. रामश्च अहञ्च खेलावः (राम और मैं खेलते हैं)।

(ख) यदि वाक्य में प्रथम (अन्य) और मध्यम पुरुष के कर्तृपद हों तो क्रिया मध्यम पुरुष की होती है। जैसे :—१. त्वम् रामश्च तत्र गच्छथः (तू और राम वहां जाते हो)। २. त्वम् बालकः बालिका च तत्र गच्छथः (तू, लड़का और लड़की वहाँ जाते हो)।

(२) यदि किसी वाक्य में 'अथवा' या 'वा' के द्वारा जुड़े हुये विभिन्न पुरुषों के दो या दो से अधिक कर्तृपद आवें, तो क्रिया सबसे निकट वाले पुरुष के अनुकूल होती है। जैसे :—त्वं वा वयं वा एतत् कार्यं करिष्यामः (तू अथवा हमलोग यह काम करेंगे)। ते वा युवां वा वयं वा इदं फलं खादिष्यामः (वे अथवा तुम दोनों अथवा हमलोग यह फल खायेंगे)।

अभ्यास

(क) वाक्य के उद्देश्य और विधेय में किन बातों की परस्पर समानता परम अपेक्षित है ?

(ख) वाक्य में उद्देश्य तथा विधेय के पुरुष वचन तथा लिङ्ग की परस्पर समानता न रहने से क्या हानि होगी ? उदाहरणों के द्वारा समझाओ।
(ग) संस्कृत में पुरुष कितने होते हैं ? प्रत्येक का नाम उदाहरण तथा लक्षण बतलाओ।
(घ) कई विभिन्न पुरुष के कर्त्ताओं के रहने पर वाक्य में क्रिया किस के अनुसार होती है ?
(ङ) कुछ ऐसे वाक्य बनाओ जिनमें तीनों पुरुषों के कर्त्ता एक ही क्रिया के हों ?
(च) कुछ ऐसे वाक्य बनाओ जिनमें उत्तम तथा मध्यम पुरुष के कर्त्ता एक ही क्रिया के हों और जिनमें उत्तम तथा अन्य पुरुष के कर्त्ता एक ही क्रिया के हों ?

शुद्ध करो:—त्वं रामश्च तत्र गच्छतः। यूयं बालकाः स्त्रियश्च अत्र आगच्छन्तु। त्वं वा वयं वा एतत् पुस्तकं पठिष्यथ। वयं ते यूयं वा इदं कार्यं करिष्यामः।

पाठ २

वचन-विवेचन

संस्कृत में प्रत्येक विभक्ति तथा पुरुष में तीन २ वचन होते हैं :—

(क) एकवचन। (ख) द्विवचन। (ग) बहुवचन।

एकवचन से एक का बोध होता है, द्विवचन से दो का तथा बहुवचन से बहुत का। जैसे :—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सः	तौ	ते
मध्यम पुरुष	त्वम्	युवाम्	यूयम्
उत्तम पुरुष	अहम्	आवाम्	वयम्

ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट मालूम हो गया होगा कि प्रत्येक पुरुष में तीन २ वचन होने के कारण कुल मिलाकर तीनों पुरुषों के नौ (९) रूप हुये। इसलिये तदनुसार प्रत्येक काल की क्रिया में भी तीन पुरुष तथा प्रत्येक में तीन २ वचन होने के कारण नौ-नौ रूप होते हैं। जिनमें प्रथम तीन क्रमशः

प्रथम पुरुष एकवचन, द्विवचन, बहुवचन के लिए, द्वितीय तीन क्रमशः मध्यम पुरुष एकवचन, द्विवचन बहुवचन के लिये; तथा तृतीय तीन क्रमशः उत्तम पुरुष एकवचन, द्विवचन, बहुवचन के लिये प्रयुक्त होते हैं। नीचे के कोष्ठक से यह बात भली-भाँति स्पष्ट हो जायगी, इसमें पुरुषों के नौ रूप तथा वर्तमानकालिक विधेय (क्रिया) के नौ रूप हैं :—

वचन	प्रथम पुरुष	मध्यम पुरुष	उत्तम पुरुष
एकवचन	बालकः पठति	त्वम् पठसि	अहम् पठामि
द्विवचन	बालकौ पठतः	युवाम् पठथः	आवाम् पठावः
बहुवचन	बालकाः पठन्ति	यूयम् पठथ	वयम् पठामः

वचन के विषय में कुछ विशेष ज्ञातव्य बातें नीचे दी जाती हैं।

(१) (क) यदि कोई संज्ञापद विधेय (अस्‌धातु) का पूरक होकर वाक्य में आवे तो वह केवल कारक और वचन में उद्देश्य का अनुगामी होता है। लिङ्ग उसका अपना स्वाभाविक ही रहता है। उसमें वह कर्ता का अनुगामी नहीं होता। जैसे :—रामः मम जीवनम् इव अस्ति (राम मेरे प्राण से हैं)। यहाँ अस् धातु के पूरक के रूप में आया हुआ 'जीवनम्' यह संज्ञा पद प्रथमा के एकवचन में होकर कारक तथा वचन में 'राम' रूप कर्त्ता का अनुगमन करता है। लिङ्ग उसका वही अपना स्वाभाविक नपुंसक रहता है।

(ख) स्थान, पद, प्रमाण, पात्र, भाजन, आस्पद, कारण, मूल ये शब्द जब विधेय की तरह प्रयुक्त होते हैं तब इनमें सदा एकवचन नपुंसक लिङ्ग ही होता है। जैसे :—

स्थान :—गुणाः पूजास्थानम् = गुण ही पूजा के कारण होते हैं।

पद :—सम्पदः आपदाम् पदम् = सम्पत्ति विपत्तियों का घर है।

उद्योगः सम्पदाम् पदम् = उद्योग सम्पत्तियों का घर है।

प्रमाण :—भवन्तः प्रमाणम् = आप ही योग्य हैं।

पात्र :—दीनाः कृपापात्रम्—गरीब कृपा के पात्र हैं।

भाजन :—भवान् सत्यं स्तुतिभाजनम् = आप सचमुच प्रशंसा के पात्र हैं।

आस्पद :—अयं मम स्नेहास्पदम् = यह मेरा स्नेहास्पद है।

कारण :—अविद्या दुःखस्य कारणम् = अज्ञान दुःख का हेतु है।

मूल :—दरिद्रता अनर्थानां मूलम्=दरिद्रता सारे अनर्थों की जड़ है।

(ग) नीचे संस्कृत के कुछ ऐसे शब्द दिये जाते हैं जो अर्थ तो एक वचन का प्रकट करते हैं परन्तु नित्य बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं।

दार–स्त्री (पुं०) असु–प्राण (पुंल्लिङ्ग) प्राण-(पुं०) अक्षत–(पुं०) लाज–लावा (पुं०) बिन्दु–बूंद (पुं०) अप्–पानी (स्त्री०) जलौकस्–जलजीव (स्त्री०) सिकता–बालू (स्त्री०) गृह्–घरनी (पुं०) वर्षा (स्त्री०) समा–वर्ष (स्त्री०)।

(२) (क) 'च' (और) द्वारा जुड़े हुए दो या दो से अधिक संज्ञापद जब कर्त्ता होते हैं तब क्रिया उनके संयुक्त वचन के अनुसार होती है। यदि वे दो होते हैं तो द्विवचन में और दो से अधिक होते हैं तो क्रिया बहुवचन में होती है। जैसे :—

१. रामः श्यामश्च गच्छतः=राम और श्याम जाते हैं।

२. रामः श्यामः मुकुन्दश्च गच्छन्ति=राम, श्याम और मुकुन्द जाते हैं।

(ख) जब किसी वाक्य में प्रयुक्त संज्ञायें पृथक्-पृथक् समझी जाती हैं, सम्मिलित नहीं समझी जाती हैं, अथवा वे सब सम्मिलित रूप से केवल एक विचार विशेष की वाचक होती हैं, तो क्रिया में एकवचन होता है। जैसे—माता, पिता, सखा, बन्धुः कोऽपि मृत्योः न रक्षति। (माता, पिता, मित्र, भाई कोई भी मृत्यु से नहीं बचाता)।

(ग) कभी कभी क्रियापद, वाक्य में अनेक कर्तृपदों के प्रयोग रहने पर सबसे समीप वाले कर्तृपद के अनुरूप होता है और शेष कर्तृपदों के साथ वचन विपरिणाम (अन्य कर्तृपदों के अनुसार वचन बदल कर) से सुगमतया उसका समन्वय हो जाता है। जैसे :—

इमां घटनां सुशीलः सुरेशः उभौ दासौ प्रधानाध्यापकश्च जानाति (इस घटना को सुशील सुरेश, दोनों नौकर और प्रधानाध्यापक भी जानते हैं)।

(३) जिस वाक्य में 'अथवा' या 'वा' द्वारा जुड़े हुये दो वा दो से अधिक एकवचनान्त कर्तृपद हों तो वहां एकवचन क्रिया होती है। जैसे :—

१. सुशीलोऽथवा श्यामो गच्छतु = सुशील अथवा श्याम जाय।

२. सुशीलः श्यामो गोविन्दो वा पठतु = सुशील, श्याम अथवा गोविन्द पढ़े।

(४) (क) जब किसी वाक्य में भिन्न वचन के अनेक कर्तृपद होते हैं तब क्रिया का एकवचन सबसे निकट वाले कर्तृपद के वचन के अनुकूल होता है। जैसे :—भवन्तो गणेशः अयं वा तत्र गच्छतु = चाहे आप लोग या गणेश या यह आदमी वहाँ जाय।

(ख) द्विगु तथा समाहार द्वन्द्व से बने शब्द एकवचनान्त होते हैं। जैसे :—पञ्चपात्रम् अस्ति = पञ्चपात्र (पांच पात्रों का समाहार) है। पाणिपादम् व्यथते = हाथ-पाँव दुखते हैं।

(ग) संस्कृत में एकशेष द्वन्द्व समास से बने हुए द्विवचनान्त शब्द से एक ही जाति के पुरुष तथा स्त्री दोनोंका बोध होता है। जैसे :—जगतः पितरौ वन्दे = जगत के माता-पिता को प्रणाम करता हूँ। हंसौ = हंसी और हंस।

(घ) आदर प्रदर्शन के लिये एकवचन या द्विवचन के स्थान में बहुवचन का प्रयोग किया जाता है। जैसे-भवत्पादपद्मेषु=आपके चरण कमलों में।

(ङ) उच्च कोटि के वक्ता के रहने पर उत्तम पुरुष (अस्मद्) में एक-वचन की जगह पर कभी-कभी बहुवचन का प्रयोग होता है। जैसे :—वयम् अपि तत्र गत्वा तावत् पश्यामः (हम भी या मैं भी वहाँ जाकर तब तक देखता हूँ।

(च) यदि किसी प्रदेश के नाम से उसके जनसमूह का बोध होता हो तो ऐसे देशनामवाची शब्द बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं। जैसे :—आसीत् मगधेषु चन्द्रगुप्तो नाम नृपतिः (मगध देश में चन्द्रगुप्त नाम के राजा थे)। परन्तु इसके साथ यदि देश, विषय आदि शब्द लगे हों तो इनका एकवचन में प्रयोग होता है। जैसे :—आसीत् कलिङ्गविषये रुक्माङ्गदो नाम नृपतिः। अस्ति मगधदेशे पुष्पपुरी नाम नगरी।

(छ) ऐसे व्यक्तिवाचक शब्द जिनसे वंश या परिवार के अर्थ का बोध

हो, तो वे बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं। जैसे :—यदूनां कदनं चक्रे (यदुवंशियों को बेतरह मारा)।

(ज) हिन्दी या अँग्रेजी में कहीं कहीं एकवचन का प्रयोग रहने पर भी संस्कृत में उसका बहुवचन के द्वारा अनुवाद करना चाहिये ! जैसे :—मनुष्य का धर्म–मनुष्याणां धर्मः। आदमी का कल्याण–नृणां श्रेयः—

अभ्यास

(क) संस्कृत में वचन कितने होते हैं ? तथा उनका क्या उपयोग है ? उदाहरण देकर बतलाओ। वचन–भेद से प्रत्येक काल की क्रिया के कितने रूप होते हैं ? तथा उनका प्रयोग किस क्रम से होता है ? वर्तमान काल की क्रिया के द्वारा सबका उदाहरण दो।

(ख) कुछ ऐसे वाक्य बनाओ जिनमें संज्ञापद विधेय (अस् धातु) के पूरक होकर वाक्य में प्रयुक्त हों।

(ग) कुछ ऐसे वाक्य बनाओ जिनमें निम्नलिखित शब्द विधेय की तरह प्रयुक्त हों :—स्थान, पद, प्रमाण, पात्र, भाजन, आस्पद, कारण, मूल।

(घ) निम्नलिखित शब्दों के योग से वाक्य निर्माण करो :—दार, प्राण, लाज, अप्, सिकता, वर्षा।

(ङ) च के द्वारा जुड़े हुए दो या दो से अधिक कर्तृवाची संज्ञा–पद के रहने से क्रिया किसके अनुसार होती है ? उदाहरण के द्वारा स्पष्ट करो।

(च) यदि किसी वाक्य में प्रयुक्त संज्ञाएँ पृथक्–पृथक् समझी जायँ अथवा सब सम्मिलित रूप से एक विचार–विशेष की वाचक हों तो क्रिया का वचन क्या होना चाहिए ? उदाहरण के द्वारा स्पष्ट करो।

(छ) कुछ ऐसे वाक्य बनाओ जिनमें क्रिया भिन्न–भिन्न वचन के अनेक कर्तृपदों के रहने पर भी सबसे निकट वाले कर्तृपद के अनुकूल हो।

(ज) ऐसे चार वाक्य बनाओ जिनमें वा, या अथवा द्वारा जुड़े हुए दो वा दो से अधिक एकवचनान्त प्रथम पुरुष कर्तृपद हों।

(झ) वाक्य में भिन्न–भिन्न वचन के कई कर्तृपदों के आने पर क्रिया किसके अनुकूल होती है ? उदाहरण द्वारा स्पष्ट करो।

(ञ) निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग कर्त्ता के रूप में करते हुए वाक्य बनाओ :—त्रिभुवनम्, पञ्चपात्रम्, पाणिपादम्, पणवमृदङ्गम्, अहिनकुलम्।

(ट) आदर-प्रदर्शन के लिये किस वचन का प्रयोग होता है ? उदाहरण दो ।
(ठ) जनसमूह के बोधक देशनामवाची शब्द तथा वंश या परिवार का अर्थ बताने वाले व्यक्तिवाचक शब्द किस वचन में प्रयुक्त होते हैं ?

पाठ ३

संख्यावाची शब्द

(१)—(क) एक शब्द एकवचनान्त है । यदि यह कतिपय अर्थ का वाचक हो तो इसका प्रयोग बहुवचन में होता है । जैसेः-एकः बालकः गच्छति (एक लड़का जाता है)। एके वदन्ति—(कुछ लोग कहते हैं) । अनेक शब्द बहुवचनान्त होता है । जैसे :—अनेके नराः (बहुत लोग) ।

(ख) 'त्रि' से लेकर 'अष्टादशन्' पर्यन्त संख्यावाची शब्द बहुवचनान्त होते हैं । जैसे :—चत्वारः पुरुषाः = चार पुरुष । पञ्च बालकाः=पाँच लड़के आदि ।

(ग) एकत्व अर्थ के बोध होने पर ऊनविंशति (१९) से लेकर ऊपर तक जितने संख्यावाची शब्द हैं, उनका एकवचन ही में प्रयोग होता है । जैसे : ऊनविंशतिः बालकाः = उन्नीस लड़के । विंशतिः पुस्तकानि = बीस किताबें आदि । यदि द्वित्व या बहुत्व अर्थ का बोध हो तो 'ऊनविंशति' या इससे ऊपर की संख्यायें क्रमशः द्विवचन, बहुवचन में रखी जाती हैं । जैसेः—विंशती बालकाः = दो बीस (४०) लड़के अर्थात् लड़कों की बीस २ की दो समष्टि । विंशतयः बालकाः = लड़कों की बीस २ की तीन या तीन से अधिक समष्टि ।

(घ) द्वि और उभ, शब्द द्विवचनान्त होते हैं । परन्तु उभय शब्द द्विवचन के अर्थ का बोधक होने पर भी एकवचन तथा बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं । जैसे :—द्वौ बालकौ=दो लड़के । उभौ पुरुषौ=दो पुरुष । उभयो मणिः = दो मणि आदि ।

(ङ) द्वय, द्वितय, युगल, युग, द्वन्द्व आदि शब्द द्वित्व अर्थ का बोध कराते हैं । परन्तु इनका प्रयोग नित्य एकवचन ही में होता है । जैसे :— रूप्यकद्वयम् अस्ति=दो (एक जोड़ा) रुपये हैं । वस्त्रयुगलम् ददाति= दो (एक जोड़ा) कपड़ा देता है आदि ।

(च) त्रय, त्रितय, चतुष्टय, चतुष्क, पञ्चक, वर्ग, गण, समूह आदि शब्द एकवचन में प्रयुक्त होकर समुदाय अर्थ का बोध कराते हैं। जैसेः— 'मुनित्रयं नमस्कृत्य' = तीन (समुदित) मुनियों को प्रणाम कर। मुद्राशतपञ्चकं देहि = पांच सौ रुपये दो। आदि।

(छ) कुछ ऐसे शब्द जो हिन्दी या अंग्रेजी में बहुवचन में प्रयुक्त होकर द्विवचन का अर्थ प्रकट करते हैं उनका संस्कृत अनुवाद द्विवचन ही से होना चाहिये। जैसे अपने हाथ-पांव धोओ :—Wash your hands and feet हस्तौ-पादौ च प्रक्षालय। अपने कानों को बन्द करो :— **कर्णौ पिधेहि।**

टिप्पणी :—एक, द्वि, त्रि, चतुर् में लिङ्ग भेद से रूप-भेद होते हैं और किसी संख्यावाची में नहीं यह व्याकरण से जान लेना चाहिये तथा विशेष्य के लिंगानुसार उनमें लिंग का व्यवहार करना चाहिये।

अभ्यास

(क) एक शब्द का प्रयोग एकवचन तथा बहुवचन में कब होता है ?
(ख) संस्कृत में कितने संख्यावाची शब्द बहुवचनान्त होते हैं ? ऊनविंशति आदि शब्द एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन में कब प्रयुक्त होते हैं ? उदाहरणों से स्पष्ट करो।
(ग) संस्कृत में द्विवचनान्त संख्यावाची शब्द कौन-कौन हैं ?
(घ) कुछ ऐसे संख्यावाची शब्दों को लिखो जो द्वित्व अथवा बहुत्व के बोधक होने पर नित्य एकवचनान्त होते हैं।
(ङ) संख्यावाची शब्दों में लिङ्ग भेद से किन किन शब्दों में रूप भेद होता है ?
(च) संख्यावाची शब्दों के लिङ्ग किसके अनुसार होते हैं ?

शुद्ध करो:—एको बालकौ गच्छति। द्वौ बालिके गायतः। त्रीन् फलानि देहि। चत्वारः बालकाः पठन्ति। एकादशाः छात्राः खेलन्ति। विंशतयः पुस्तकानि। शताः नराः आयान्ति। हस्तं पादं च प्रक्षालय।

पाठ ४

लिङ्ग-विवेचन

वाक्यों में पदों का शुद्ध २ प्रयोग तथा रचना में विशेष्य–विशेषण के परस्पर के समन्वय के लिये संस्कृत में लिङ्गज्ञान परमावश्यक है। लिङ्ग, वचन तथा कारक में विशेष्य–विशेषण को समान ही होना चाहिये, अन्यथा उनके योग से बना वाक्य अशुद्ध हो जायगा, न वैसे अभीष्ट अर्थ की उपस्थिति होगी और न तो वह संस्कृत के नियमानुसार शुद्ध कहा ही जायगा। जैसे :—सुन्दरः बालिका गच्छति' 'सुन्दरी बालकः पठति' 'सुन्दरम् अश्वः धावति' आदि। संस्कृत में लिङ्ग तीन हैं :—पुंल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग, क्लीबलिङ्ग। अंग्रेजी में अर्थानुसार लिङ्गनिर्णय किया जाता है। परन्तु संस्कृत में अर्थानुसार लिङ्गनिर्णय का नियम नहीं होता है। जैसे :—संस्कृत में 'दार' 'भार्या' 'कलत्र'—ये तीनों शब्द स्त्री के वाचक हैं, परन्तु तीनों भिन्न २ लिङ्ग के हैं 'दार' पुंल्लिङ्ग, 'भार्या स्त्रीलिङ्ग तथा 'कलत्र' क्लीबलिङ्ग। इसी प्रकार 'काय' 'तनु' 'शरीर' ये तीनों शब्द देहवाची हैं, परन्तु तीनों तीन लिङ्ग के हैं। 'काय' पुंल्लिग, 'तनू' स्त्रीलिङ्ग और 'शरीर' नपुंसक लिङ्ग है। इन उपरि निर्दिष्ट कारणों से यह स्पष्ट मालूम हो गया होगा कि संज्ञाओं के लिङ्गों का अन्तर समझाने के लिये कोई निश्चित नियम नहीं बनाये जा सकते लिङ्ग का निर्णायक लोकप्रयोग ही है। अतः इसके लिये सदा संस्कृत का परिशीलन तथा कोष का व्यवहार अधिक उपयोगी होगा।

अभ्यास

(क) रचना में लिङ्ग की उपयोगिता क्या है? लिङ्ग कितने होते हैं? संस्कृत में लिङ्ग-प्रयोग के क्या नियम हैं? निम्नलिखित शब्दों का लिङ्ग निर्दिष्ट करो :—तनु, काय, शरीर, दार, भार्या, कलत्र।

अध्याय ४

पाठ १

सर्वनाम

सब प्रकार के नामों (संज्ञाओं) के बदले जो आता है उसे सर्वनाम कहते हैं। जैसे :–रामः गच्छति तेन सह त्वमपि गच्छ=राम जाता है उसके साथ तूं भी जा। ब्राह्मणः आयाति तं नमस्कुरु=ब्राह्मण आता है उसे नमस्कार करो। विनयो महान् गुणः तं सेवस्व=विनय महान् गुण है उसका सेवन करो आदि।

यदि किसी वाक्य या सन्दर्भ में एक ही संज्ञा को बार–बार दुहराना पड़े तो वह वाक्य या सन्दर्भ भद्दा या असुन्दर हो जायगा। जैसे :—रामः गच्छति राममाहूय रामेण सह रामस्य गां द्रष्टुं रामस्य गृहं गच्छ= राम जाता है राम को पुकार कर राम के साथ राम की गाय देखने राम के घर जाओ। वाक्य या सन्दर्भ में सर्वनाम के प्रयोग करने से उपर्युक्त बुराइयाँ नहीं होतीं, कारण एक बार सिर्फ संज्ञा का प्रयोग हो जाने के बाद उस सम्पूर्ण सन्दर्भ या वाक्य में संज्ञाओं के बदले सर्वनाम आकर उनका प्रतिनिधित्व कर लेता है और फिर बार–बार एक ही संज्ञा को दुहराने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती ! जैसे :—रामः गच्छति तमाहूय तेन सह तस्य गां द्रष्टुं तद्गृहं गच्छ। इसलिये रचना या किसी भी भाषा के वाग्व्यवहार के लिये सर्वनाम एक बहुत बड़ा सहायक है। इसलिये इस रचना ग्रन्थ में भी ऐसे मुख्य विषय पर विचार करना परमावश्यक है।

रूप की विभिन्नता के कारण, संस्कृत के जितने सर्वनाम हैं वे पाँच श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं। जैसे:—१. सर्वादि, २. अन्यादि, ३. पूर्वादि, ४. यदादि, ५. इदमादि।

१. सर्वादि :—सर्व (सब), विश्व (सब), उभय (दोनों), एक (एक, वही), एकतर (दो में एक), इनके सब रूप सर्व शब्द के समान होते हैं।

२. अन्यादि :—अन्य (दूसरा), अन्यतर (दो में कोई एक), इतर

(दूसरा), कतर (दो में कौन ?), कतम (सबों में कौन ?), एकतम (बहुतों में एक), इनके रूप भी सर्व शब्द ही के समान होते हैं, किन्तु नपुंसकलिङ्ग प्रथमा तथा द्वितीया के एकवचन में अन्यत्, अन्यतरत् आदि होते हैं।

३. पूर्वादि :—पूर्व (पहला, पूरब); पर (बादका), अपर (दूसरा), अवर (पीछे वाला, पश्चिम), अधर (निम्न श्रेणी का, पश्चिम), दक्षिण (दायाँ, दक्षिण दिशा), उत्तर (उत्तर दिशा), स्व (अपना, निज), इनके रूप पूर्व शब्द के सदृश होते हैं। परन्तु 'स्व' शब्द यदि 'धन या 'ज्ञाति' के अर्थ में आता है, तब इसके रूप 'नर' शब्द के समान होते हैं।

४. यदादि :—यद् (जो, जौन), तद् (वह स्त्री, पुरुष या क्लीब), एतद् (यह), किम् (कौन ?) इनका क्रमशः य, त, एत और 'क' होकर 'सर्व' शब्द के समान रूप चलते हैं। केवल प्रथमा और द्वितीया के एकवचन में भिन्न रूप होते हैं। जैसे:—सः, तद्, सा आदि।

५. इदमादि :—इदम् (यह), अदस् (वह), युष्मद् (तूं), अस्मद् (मैं) और भवत् (आप) इनके रूप भिन्न भिन्न होते हैं। व्याकरण के शब्द रूप से देख लेना चाहिये। हिन्दी तथा अंग्रेजी के व्याकरणों में अर्थ के अनुसार इन्हें दूसरे ही श्रेणियों में बांटा गया है। जैसे :—(१) पुरुष-वाचक सर्वनाम, (२) निश्चयवाचक सर्वनाम, (३) सम्बन्धवाचक सर्वनाम, (४) अनिश्चयवाचक सर्वनाम, (५) प्रश्नवाचक सर्वनाम, (६) निजवाचक सर्वनाम। एतदर्थ छात्रों की सुविधा के लिये उपर्युक्त विभाग के आधार पर ही नीचे क्रमशः सर्वनाम का विचार किया जाता है।

अभ्यास

(क) सर्वनाम किसे कहते हैं तथा सर्वनाम का क्या उपयोग है ? रूप भेद से सर्वनाम के कितने विभाग हैं ?

(ख) सर्वादि तथा अन्यादि में किन किन सर्वनामों की गणना है बताओ ?

(ग) अर्थ के अनुसार सर्वनाम कितने भागों में बँटे हैं, उनके नाम बताओ ?

पाठ २

पुरुषवाचक सर्वनाम

(१) पुरुषवाचक सर्वनाम दो हैं, युष्मद् और अस्मद्। पहले यह बतलाया गया है कि संस्कृत में पुरुष तीन होते हैं–प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष, उत्तम पुरुष। युष्मद् मध्यम पुरुषवाची सर्वनाम है तथा अस्मद् उत्तम पुरुषवाची सर्वनाम। अन्य पुरुष वाचक सर्वनाम तद्, एतद्, अदस्, इदम् की गणना पुरुषवाचक सर्वनाम में नहीं की गयी है। इनकी गणना 'निश्चय-वाचक' सर्वनाम में की जाती है क्योंकि इनमें निश्चय जाना जाता है।

क्रियाओं तथा परसर्गों के योग में अन्य संज्ञाओं के प्रयोग के जो नियम हैं पुरुषवाचक सर्वनाम के प्रयोग के विषय में भी वे ही नियम हैं। इनके प्रयोग के लिये कोई अतिरिक्त विशेष नियम नहीं है। जैसे :—त्वं मां पश्य = तू मुझे देख। मया सह सोऽपि काशीं गमिष्यति = मेरे साथ वह भी काशी जायगा। जैसे कर्तृवाच्य की क्रिया का कर्त्ता बनकर आयी हुई कोई भी संज्ञा प्रथमा विभक्ति में तथा सकर्मक कर्तृवाच्य की क्रिया का कर्म बनकर आई हुई कोई संज्ञा द्वितीया विभक्ति में रहती है ठीक उसी प्रकार यहाँ उपर्युक्त प्रथमवाक्य में कर्तृवाच्य की क्रिया 'पश्य' के कर्त्ता के स्थान में प्रयुक्त मध्यमपुरुषवाची सर्वनाम 'युष्मद्' प्रथमा विभक्ति में तथा उस (पश्य) के कर्म के स्थान में प्रयुक्त उत्तमपुरुषवाची सर्वनाम 'अस्मद्' द्वितीया विभक्ति में है। और 'सह' के योग में जिस प्रकार किसी संज्ञा शब्द में तृतीया विभक्ति होती है उसी प्रकार यहाँ ऊपर के द्वितीय वाक्य में उत्तमपुरुषवाची सर्वनाम 'अस्मद्' में भी 'सह' के योग में तृतीया विभक्ति हो गयी है। इसलिये सर्वनाम के प्रयोग में भी वे ही नियम हैं जो संज्ञा के हैं।

(२) युष्मद्, अस्मद् शब्द के द्वितीया, चतुर्थी और षष्ठी के एकवचन में क्रमशः त्वा, ते, ते, मा, मे, मे, द्विवचन में क्रमशः वाम्, नौ और बहुवचन में क्रमशः वः, नः आदेश होते हैं। युष्मत्, अस्मद् के इन वैकल्पिक रूपों के प्रयोग में पूर्ण ध्यान रखना चाहिये। नीचे लिखी अवस्था में इनके प्रयोग नहीं किये जाते हैं।

(क) वाक्य अथवा श्लोक के चरण के आरम्भ में । जैसेः–वाक्यारम्भ में—मम पुस्तकं देहि=मेरी किताब दो । यहां वाक्यारम्भ में 'मम' के रहने के कारण उसका 'मे' आदेश नहीं हुआ । श्लोक के चरण के आरम्भ में—मम माया दुरत्यया = मेरी माया दुस्तर है । यहां श्लोक के चरणारम्भ में रहने के कारण 'मम' का 'मे' आदेश नहीं हुआ ।

(ख) च, वा, एव, हा, ह इन अव्ययों के ठीक पहले । जैसे :—च–रामस्य च तव च पुस्तकम्=राम की और तुम्हारी पुस्तक । वा—कृष्णस्य तव वा गौः=कृष्ण की अथवा तेरी गाय । एव—अयं दोषस्तवैव=यह दोष तेरा ही है । हा-हा ! तवेयं दशा=हाय तुम्हारी यह दशा इत्यादि । इन वाक्यों में क्रमशः 'तव' का 'ते' आदेश नहीं हुआ ।

(ग) यदि युष्मद्, अस्मद् का उपर्युक्त 'च' आदि अव्ययों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं हो तो इन अव्ययों के योग में भी ऊपर बतलाये हुए वैकल्पिक आदेश हो जाते हैं । जैसे :—रामश्च श्यामश्च मे प्रियः = राम और श्याम मेरे प्यारे भाई हैं । किं वा मे पिता एवं वक्ष्यति = क्या मेरे पिता जी ऐसा कहेंगे ? इत्यादि ।

(घ) सम्बोधन के ठीक बाद ये वैकल्पिक आदेश नहीं होते हैं । जैसे:—प्रभो ! अस्मान् पाहि सर्वदा=प्रभु सदा हमारी रक्षा करो । यहां सम्बोधन के ठीक बाद रहने के कारण 'अस्मान्' का 'नः' नहीं हुआ ।

(ङ) यदि सम्बोधन के बाद कोई उसका विशेषण रहे तो युष्मद्, अस्मद् के उपर्युक्त वैकल्पिक आदेश हो जाते हैं । जैसे :—प्रभो ! दयालो ! नः पाहि=हे दयालु भगवान् मेरी रक्षा करो ।

(३) आदर सूचित करने के लिये मध्यम पुरुष 'युष्मद्' के स्थान में प्रथम पुरुष 'भवत्' शब्द का प्रयोग होता है । भवत् के साथ प्रथम पुरुष की क्रिया होती है क्योंकि भवत् की गणना प्रथम पुरुष में है । यत् भवान् अभ्यागतः अतिथिः तद् भक्षयतु (भवान्) इदम् फलम्=सुनिये आप अभ्यागत और अतिथि हैं इसलिये (आप) इस फल को खाइये ।

(४) आदर बोध होने से कभी कभी 'भवत्' और 'भवती' के पहले

'अत्र' और 'तत्र' लगा दिये जाते हैं। सामने उपस्थित व्यक्ति के लिये 'अत्र भवत्' और 'अत्र भवती' का प्रयोग होता है तथा दूरस्थ और अनुपस्थित व्यक्ति के लिये 'तत्र भवत्' 'तत्र भवती' का प्रयोग होता है। जैसे :— कृपया अत्र भवन्तः आज्ञापयन्तु=आप पूज्यगण कृपया आज्ञा दें। अत्र भवती गौतमी आगच्छति=श्री पूज्या गौतमी आती हैं। आदिष्टोऽस्मि तत्र भवता गुरुणा=श्री पूज्य गुरुदेव के द्वारा आदिष्ट हूँ। क्व तत्र भवती कामन्दकी ? पूज्या कामन्दकी देवी कहां हैं ?

विशेष :—कहीं कहीं 'भवत्' शब्द के पूर्व 'एषः' और 'सः' का भी प्रयोग होता है। यह केवल प्रथमा के एकवचन में ही मिलता है। जैसे :— एष भवान् आगच्छति=यह आप आते हैं। मां स भवान् नियुङ्क्ते= मुझे वह श्रीमान जी नियुक्त कर रहे हैं।

अभ्यास

(क) पुरुषवाची सर्वनाम कौन हैं ?

(ख) तद्, एतद्, अदस्, इदम् की गणना पुरुषवाची सर्वनाम में क्यों नहीं होती ?

(ग) क्रियाओं तथा परसर्गों के योग में सर्वनाम के प्रयोग के क्या नियम हैं ? उदाहरण देकर स्पष्ट समझाओ ?

(घ) युष्मद् तथा अस्मद् के द्वितीया, चतुर्थी तथा षष्ठी के एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन में क्या वैकल्पिक आदेश होते हैं ? बताओ ?

(ङ) युष्मद्, अस्मद् के उपर्युक्त वैकल्पिक आदेशों के प्रयोग किन अवस्थाओं में नहीं होते ? उदाहरण देकर बताओ ?

(च) युष्मद् के स्थान में भवत् शब्द का प्रयोग कब होता है तथा उसके साथ किस पुरुष की क्रिया होती है और क्यों ? 'भवत्' के साथ अत्र और तत्र का प्रयोग कहाँ होता है ? और किस लिये ?

पाठ ३

निश्चयवाचक सर्वनाम

(क) तद्, एतद्, इदम्, अदस् ये चार निश्चयवाचक या संकेतवाचक सर्वनाम हैं। क्योंकि इनमें निश्चय जाना जाता है या इनसे संकेत किया

जाता है। ये जिन संज्ञाओं से सम्बद्ध होते हैं उनके साथ तथा अकेले दोनों प्रकार से प्रयुक्त होते हैं। ये सब प्रथम पुरुषवाची सर्वनाम हैं, जैसे :— संज्ञाओं से सम्बद्ध—स शिशुः अस्ति = वह बच्चा है। एषा नायिका=यह नारी है। अयम् बालकः = यह लड़का है। असौ पर्वतः = वह पहाड़ है। स्वतन्त्र :—सः याति। एषः आयाति। अयम् पठति। असौ धावति।

विशेष :—यदि समीप की वस्तु समझी जाय तो उसके लिये 'इदम्' शब्द, अधिक समीपवर्त्ती कोई वस्तु समझी जाय तो उसके लिये 'एतद्' शब्द, दूरवर्ती कोई व्यक्ति या वस्तु समझी जाय तो उसमें 'अदस्' शब्द तथा अनुपस्थित किसी व्यक्ति या वस्तु के लिये 'तद्' शब्द का प्रयोग किया जाता है। कारिका भी है:—

इदमस्तु सन्निकृष्टं समीपतरवर्त्ति चैतदो रूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्टं तदिति परोक्षं विजानीयात्॥

(ख) इसके अतिरिक्त 'तद्' कभी कभी 'प्रसिद्ध' 'सुविख्यात' 'प्रशंसनीय' अर्थ में प्रयुक्त होता है। सा रम्या नगरी = वह प्रसिद्ध सुविख्यात, नगरी।

(ग) अनुभूत अर्थों का बोध कराने के लिये जिसके लिये कि हिन्दी में 'वही' 'ठीक वही' 'उसी' इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया जाता है, 'तद्' के बाद 'एव' यह अव्यय जोड़कर उसका प्रयोग किया जाता है। यह 'एव' प्रायः प्रत्यक्ष रूप में और कहीं कहीं अप्रत्यक्ष रूप में रहता है। जैसे:— तानीन्द्रियाण्यविकलानि = वे ही पूर्ववर्ती अविकल इन्द्रियां हैं। तदेव नाम = ठीक वही नाम है आदि।

(घ) जब 'भिन्न भिन्न' अथवा 'कई' आदि अर्थों को प्रकट करना होता है, तब 'तद्' का दुहरा प्रयोग कर दिया जाता है। जैसे:—तेषु तेषु महार्हेषु भवनेषु महात्मनाम् = महात्माओं के कई महाप्रशंसनीय भिन्न भिन्न भवनों में। तत्र तत्र वधो न्याय्यस्तव राक्षस ! दारुणः = रे राक्षस ! वहां २ तेरा भीषण वध उचित है। तानि तानि विनश्यन्ति प्रदक्षिणं पदे पदे=वे सब भिन्न २ प्रकार के (पाप) प्रदक्षिण करने से नष्ट हो जाते हैं। आदि।

(ङ) इदम् और एतद् शब्दों के द्वारा यदि किसी एक वाक्य में किसी संज्ञा का वर्णन करके दूसरे वाक्य में फिर उसी संज्ञा का प्रयोग हो तो ऐसी

दशामें 'अन्वादेश' का व्यवहार होता है। ऐसी अवस्था में इदम् और एतद् के स्थान में द्वितीया (तीनों वचन), तृतीया एकवचन तथा षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में 'एन' आदेश हो जाता है। जैसे:—अनेन व्याकरणम् अधीतम् एनं छन्दोऽध्यापय=इसने व्याकरण पढ़ लिया, इसे वेद पढ़ाओ। अनयोः पवित्रं कुलम् एनयोः प्रभूतं बलम्=इन दोनों का पवित्र वंश है, इन दोनों में महान् बल है।

विशेषः—युष्मद्, अस्मद् तथा भवत् को छोड़कर जितने सर्वनाम हैं, सब विशेष्य तथा विशेषण दोनों तरह प्रयुक्त होते हैं।

अभ्यास

(क) निश्चयवाचक सर्वनाम कितने हैं तथा उनके प्रयोग के विशेष नियम क्या हैं?
(ख) तत् का दुहरा प्रयोग कब होता है? इदम् और एतत् के स्थान में कब और कहाँ कहाँ 'एन' आदेश होता है?
(ग) किन सर्वनामों का प्रयोग विशेषण की भांति नहीं होता है?

पाठ ४

सम्बन्धवाचक सर्वनाम

(क) यद् सम्बन्धवाचक सर्वनाम है। यद् के साथ तद् भी प्रायः आता है, क्योंकि वह इसका नित्यसम्बन्धी शब्द है। जैसेः—यदाज्ञापयति तत् कुरु=वह जो आज्ञा देते हैं सो करो।

(ख) 'सब' 'सम्पूर्ण' 'सब कुछ' 'जो कुछ' आदि अर्थों को प्रकट करने के लिये यद् शब्द का दोहरा प्रयोग किया जाता है ऐसी अवस्था में यद् का नित्यसम्बन्धी सर्वनाम 'तद्' का भी दुहरा प्रयोग हो जाता है। जैसे:—यद्यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभो! तवाराधनम्=हे भगवान् शङ्कर! मैं जो कुछ कर्म करता हूँ वह सम्पूर्ण तुम्हारी आराधना है।

(ग) अपि, चित् और चन प्रत्ययान्त 'किम्' अथवा केवल 'किम्' के साथ 'यद्' का प्रयोग करने से 'जो कोई भी' 'जिस किसी भी' 'जहाँ कहीं भी' आदि अर्थों का बोध होता है। जैसे:—यं कञ्चिन् पश्यामि सः

काल इव प्रतिभाति=जिस किसी को देखता हूँ वह काल की तरह लगता है। यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः=जिस २ को देखते हो, उस २ के आगे दीनवचन मत बोलो। स्वहस्तस्थमपि सुवर्ण-कङ्कणं यस्मै कस्मैचिद्दातुमिच्छामि=अपने हाथ का भी स्वर्ण-कङ्कण जिस किसीको देना चाहता हूँ।यो वा को वा भविष्यति=चाहे जो कोई भी हो। स यत्र कुत्रापि गच्छति=वह जहाँ कहीं भी जाता है।

अभ्यास

(क) सम्बन्धवाचक सर्वनाम का नित्यसम्बन्धी शब्द कौन है?

(ख) यद् तथा उसके सम्बन्धी का दुहरा प्रयोग कब होता है?

(ग) अपि, चित्, चन प्रत्ययान्त 'किम्' अथवा केवल 'किम्' का प्रयोग हिन्दी के किन किन अर्थों में होता है?

पाठ ९

अनिश्चयवाचक सर्वनाम

१—(क) प्रश्नवाचक सर्वनाम 'किम्' के बाद चित्, चन, अपि अथवा स्वित् जोड़ कर अनिश्चयवाचक सर्वनाम बनते है। जैसे:—कश्चित्, कश्चन, कोऽपि वा एवं कृतवान्=किसी अनिश्चित व्यक्ति ने ऐसा किया। कदाचित् निभृतं शृगालो ब्रूते=कभी अनिश्चित समय में एकान्त में सियार बोला। शुष्ककाष्ठानि मूर्खाश्च न नमन्ति कदाचन=सूखे काष्ठ और मूर्ख कभी नहीं झुकते। कदापि तत्र तमपश्यत्=कभी उसको वहाँ देखा। कास्विद्विरूपनयना पुरद्वारेऽवतिष्ठते=विरूपनेत्र वाली कोई स्त्री नगर के प्रवेश द्वार पर खड़ी है।

(ख) कभी-कभी किम् शब्द के साथ अपि का प्रयोग होने से अनिर्वचनीय, विलक्षण, अभूतपूर्व आदि अर्थ का बोध होता है। जैसे:—तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः=जो जिसका प्यारा है वह उसकी कोई अनिर्वचनीय वस्तु है। अवश्यमत्र केनापि कारणेन भवितव्यम्=अवश्य ही इसमें कोई अनिर्वचनीय कारण है।

(ग) संस्कृत अनुवाद करने में 'कहीं-कहीं' के लिये 'क्वचित्-क्वचित्' तथा 'कभी-कभी' के लिये 'कदाचित्-कदाचित्' आते हैं। जैसे:—क्वचिद्वीणावाद्यं क्वचिदपि च हाहेति रुदितम् = कहीं तो वीणा बज रही है और कहीं हाय-हाय का विलाप हो रहा है। कदाचित् भाण्डं भिनत्ति कदाचिन्नवनीतं चोरयति = कभी भाँड़ फोड़ देता है और कभी मक्खन चुरा लेता है।

२—(क) अन्य तथा पर शब्द के दो बार प्रयोग करने से जैसे:—अन्य-अन्य, पर-पर 'एक दूसरा' 'कुछ-कुछ' 'कुछ दूसरा' 'कुछ और' आदि अर्थों का बोध होता है। जैसे:—अन्यः करोति दुर्वृत्तमन्यो भुङ्क्ते च तत्फलम् = एक (कोई) पाप करता है दूसरा (कोई) फल भोगता है।

(ख) पूर्ववर्णित किन्हीं दो वस्तुओं या व्यक्तियों के सम्बन्ध में आये हुए 'एक और दूसरा' इस तरह के शब्दों का संस्कृत में अनुवाद करने के लिये अधिकतर 'एक-अपर' अथवा 'एक-अन्य' का प्रयोग होता है। जैसे:-एकः पुस्तकं क्रीतवान् अपरः समाचारपत्रम् = एक ने किताब खरीदी दूसरे ने समाचारपत्र।

(ग) जब एक, अपर अथवा अन्य शब्द का बहुवचन में प्रयोग होता है, तब उसका एक (कोई) शब्द के समान ही कोई-कोई आदि अर्थ हो जाता है। जैसे:—हरिजनमन्दिरप्रवेशः शास्त्रविरुद्ध इत्येके वदन्ति, नायं शास्त्रविरुद्ध इत्यन्येऽपरे वा = हरिजनों का मन्दिर प्रवेश शास्त्र-विरुद्ध है, यह कोई-कोई कहते हैं और यह शास्त्र विरुद्ध नहीं है यह कोई-कोई।

प्रश्नवाचक सर्वनाम

प्रश्नवाचक सर्वनाम 'किम्' तथा इसमें प्रत्यय लगाकर बने कतर, कतम, कुत्र, कदा, क्व, कथम् इत्यादि शब्द हैं जो प्रश्न पूछने में प्रयुक्त होते हैं। जैसे:—

कः कोऽत्र द्वारि तिष्ठति ? = कौन-कौन यहां दरवाजे पर है ?
अनयोः कतरः तत्र गमिष्यति ? = इन दोनों में कौन वहां जायगा ?

कतमेन दिग्भागेन पलायितः स धूर्त्तः=वह धूर्त किस दिशा से भागा ? कुत्र गच्छसि ? कदा पठसि ? क खादसि ? कथम् खेलसि ? आदि।

अभ्यास

(क) प्रश्नवाचक सर्वनाम से अनिश्चयवाचक सर्वनाम किस प्रकार बनते हैं ? प्रत्येक का उदाहरण दो।

(ख) 'किम्' के साथ अपि का प्रयोग होने पर किन अर्थों का बोध होता है ? उदाहरण देकर बतलाओ।

(ग) अन्य तथा पर शब्द के दुबारा प्रयोग से किन अर्थों का बोध होता है ?

(घ) एक, अपर अथवा अन्य शब्दों के बहुवचन में प्रयुक्त होने पर क्या अर्थ होता है ? 'किम्' से बनने वाले प्रश्नवाचक सर्वनामों को बताओ।

अध्याय ५

पाठ १

विशेषण (Adjective)

वाक्य में विशेष्य के साथ विशेषण का समन्वय अर्थात् लिङ्ग, वचन और कारक में समानता परम अपेक्षित है तथा उद्देश्य के विस्तार और उद्देश्य के विस्तार को बढ़ाने के लिये विशेषण एक प्रधान वस्तु है। इसलिये इस अध्याय में विशेषण सम्बन्धी कुछ अवश्य ज्ञातव्य बातें दी जायेंगी, जिससे छात्रों को वाक्य रचना में विशेष्य के साथ विशेषण के प्रयोग में सुविधा हो।

विशेष्यः—जिससे जाति, गुण, क्रिया, व्यक्ति या वस्तु जानी जाती है उसे 'विशेष्य' कहते हैं।

विशेषणः—जिससे विशेष्य के गुण, विशेषता या अवस्था का ज्ञान हो उसे 'विशेषण' कहते हैं। कतिपय स्थलों को छोड़कर विशेष्य के विना केवल विशेषण का प्रयोग नहीं होता परन्तु जहाँ केवल विशेषण का प्रयोग होता है वहाँ विशेष्य या तो छिपा (Under stood) रहता है या विशेषण, विशेष्य का स्थानापन्न हो जाता है। संस्कृत में सामान्यतः विशेष्य के जो लिङ्ग, विभक्ति और वचन होते हैं विशेषण के भी वे ही लिङ्ग, विभक्ति और वचन होते हैं, चाहे विशेषण साधारण हो, या सार्वनामिक हो, या तद्धित अथवा कृत्प्रत्यय-निष्पन्न हो।

(१) साधारण विशेषणः—सुन्दरः बालकः = सुन्दर लड़का। सुन्दरौ बालकौ = दो सुन्दर लड़के। सुन्दराः बालकाः = अनेक सुन्दर लड़के। इन वाक्यों में विशेष्य 'बालक' पुंल्लिङ्ग प्रथमा विभक्ति के क्रमशः एकवचन, द्विवचन, बहुवचन में है इसलिये विशेषणवाची 'सुन्दर' उसके साथ क्रमशः पुंल्लिङ्ग, प्रथमा एकवचन, द्विवचन, बहुवचन रूप में आया है। इसी प्रकार आगे स्त्रीलिङ्ग तथा नपुंसकशब्दों के उदाहरणों में भी समझना चाहिये। जैसे :—स्त्री—सुन्दरी बालिका=सुन्दर लड़की। सुन्दर्यौ बालिके = दो सुन्दर लड़कियाँ। सुन्दर्यः बालिकाः = अनेक सुन्दर

लड़कियाँ। नपुं०–सुन्दरम् पुस्तकम् = सुन्दर पोथी, सुन्दरे पुस्तके = दो सुन्दर पोथियाँ, सुन्दराणि पुस्तकानि = अनेक सुन्दर पोथियाँ।

(२) सार्वनामिक विशेषण:–सः बालकः = वह लड़का। सा बालिका = वह लड़की। तत् फलम् = वह फल।

(३) कृदन्तीय विशेषण:—दृष्टः बालकः = देखा हुआ लड़का। दृष्टा बालिका = देखी हुई लड़की। दृष्टम् फलम् = देखा हुआ फल।

विशेष:—

(क) यदि दो एकवचनान्त विशेष्य पदों का एक ही विशेषण हो तो वह द्विवचनान्त होता है। जैसे:—धर्मः ईश्वरश्च तव रक्षकौ = धर्म और भगवान् तुम्हारे रक्षक हैं।

(ख) यदि दो विशेष्य पदों में एक एकवचनान्त और दूसरा द्विवचनान्त या बहुवचनान्त हो अथवा दोनों पद बहुवचनान्त हों, तो विशेषणपद बहुवचनान्त होता है। यथा:–महावीराः कृष्णः भीमार्जुनौ च तत्र गताः= महाबलवान् श्रीकृष्ण, भीम और अर्जुन वहाँ गये। महाबलाः पाण्डवाः कौरवाश्च अयुध्यन्त = महाबलशाली पाण्डव और कौरवों ने युद्ध किया।

(ग) यदि दो विशेष्य पदों में एक पुंल्लिङ्ग और एक स्त्रीलिङ्ग हो तो विशेषणवाची पद पुंल्लिङ्ग होता है। जैसे:—बालिका च बालकश्च आगतौ = बालिका और बालक आये।

(घ) यदि दो विशेष्य पदों में एक पुंल्लिङ्ग अथवा स्त्रीलिङ्ग हो और दूसरा क्लीबलिङ्ग हो तो विशेषण क्लीबलिङ्ग होता है। जैसे:–धृतिः ज्ञानं मतिः दाक्ष्यं सर्वं त्वयि अस्ति=धीरता, विवेक, बुद्धि तथा दक्षता सब तुझ में हैं। तस्मिन् सत्यं ज्ञानं धृतिः तपः शौचं दमः शमाः निश्चितानि सन्ति।

(ङ) कभी-कभी विशेषणपद में निकटवर्ती विशेष्य के लिङ्ग और वचन होते हैं। जैसे:—यस्य कृपया सुखिनः वयं भुवनानि च = जिसकी कृपा से हम लोग तथा त्रिलोक सुखी हैं।

(च) विशेषण भी उद्देश्य का काम करता है। जैसे:—दरिद्रः भिक्षां याचते = दरिद्र भीख मांगता है।

(छ) संस्कृत में संज्ञा के परे कृत् या तद्धित प्रत्यय लगाकर अथवा

दूसरे पदों के साथ समास करके विशेषण बनाये जा सकते हैं। जैसे :—जाति-जातीयः, धन–धनी, जल–जलीयः, यशस्–यशस्वी, मानुष–मानुषिकः, भूमि–भौमः, चन्द्र–चान्द्रः, सूर्य–सौरः, परिवर्त्तनीयः, रमणीयः, दर्शनीयः, क्लेशकरः, निर्भयः, आशान्वितः, दयार्द्रः करुणालय आदि।

अभ्यास

(क) विशेष्य तथा विशेषण का परिचय दो।

(ख) साधारण, सार्वनामिक, तद्धितप्रत्ययनिष्पन्न तथा कृत्प्रत्ययनिष्पन्न विशेषणों का प्रयोग विशेष्यों के साथ कर वाक्य बनाओ।

(ग) दो एकवचनान्त विशेष्य पदों के योग होने पर विशेषण में कौन वचन होगा ? उदाहरण के द्वारा बताओ।

(घ) दो विशेष्यपदों में एक के पुंल्लिङ्ग और दूसरे के स्त्रीलिङ्ग होने पर उसके विशेषण में कौन लिङ्ग होगा ? उदाहरण के द्वारा स्पष्ट करो।

(ङ) दो विशेष्यपदों में एक के पुं० वा स्त्री० होने पर विशेषण में कौन लिङ्ग होगा ? उदाहरण दो।

(च) एक ऐसा वाक्य बनाओ जिसमें विशेषण में निकटवर्ती विशेष्य के अनुसार लिङ्ग और वचन होते हों।

(छ) संज्ञा से विशेषण कैसे बनता है ?

पाठ २

संस्कृत में साधारणतः कृदन्त से बने चार प्रकार के विशेषण होते हैं। (१) भूतकालिक विशेषण, (२) भविष्यत्कालिक विशेषण, (३) वर्त्तमान-कालिक विशेषण और (४) अन्य विशेषण। क्त (त) प्रत्यय से बने विशेषण भूतकालिक विशेषण हैं। जैसे:–मत्त, पूर्ण, भग्न, शान्त, रुष्ट, पुष्ट, भ्रष्ट, क्षीण, बद्ध, उक्त, लब्ध, भक्त, दग्ध, अर्पित, व्यथित, कल्पित, कुपित, जीवित आदि। तव्य, अनीय, यत् (य) से बने विशेषण भविष्यत्कालिक विशेषण हैं। जैसे :—दातव्य, भवितव्य, द्रष्टव्य, प्रष्टव्य, गन्तव्य, दर्शनीय, पूजनीय,

श्रवणीय, शिक्षणीय, रमणीय, कमनीय, ग्रहणीय आदि । शतृ (अत्) शानच् (आन) से बने विशेषण वर्त्तमान कालिक विशेषण हैं। जैसे :— विद्वान्, गच्छत्, इच्छत्, पठत् , धावत् , वर्त्तमान, विद्यमान, दृश्यमान, याचमान, म्रियमाण, देदीप्यमान, जाज्वल्यमान आदि । णिनि, घिनुण्, इष्णुच् , घुरच् , उकञ् , आलुच् आदि प्रत्ययों से बने विशेषण अन्य विशेषण हैं। जैसे:—भावी, स्थायी, सहिष्णु, भविष्णु, जिष्णु (जयशील), भङ्गुर, भावुक, दयालु, कृपालु, निद्रालु आदि ।

अभ्यास

(क) कृत्प्रत्ययों के योग से बनने वाले विशेषण कितने प्रकार के होते हैं ? प्रत्येक का उदाहरण दो ।

(ख) वर्तमानकालिक, भूतकालिक तथा भविष्यत्कालिक विशेषणों के चार-चार उदाहरण दो ।

(ग) निम्नलिखित विशेषणों का प्रकार लिखोः—चान्द्रः, दयार्द्रः, भग्नः, देयम्, दानीयः, त्याज्यम् , गच्छन्ती, म्रियमाणः, जिष्णुः ।

पाठ ३

विशेषः—तद्धितीय विशेषणों का विचार आगे 'तद्धितीय प्रत्यय' में किया जायेगा । अंग्रेजी की तरह संस्कृत में भी (Comparative) और (Superlative degree) बनती हैं। इनके बनाने की पद्धति नीचे दी जाती है :—

(क) विशेषणवाचक शब्द के बाद 'तर' जोड़ कर तुलनात्मक (Comparative) विशेषण बनते हैं। जैसे :—पुण्य–पुण्यतर, पाप–पापतर, नीच–नीचतर, महत्–महत्तर, बृहत्–बृहत्तर, लघु–लघुतर, गुरु–गुरुतर, प्रिय–प्रियतर आदि ।

(ख) विशेषण के बाद 'तम' प्रत्यय जोड़ने से सर्वोच्चता या अतिशयता

बोधक (Superlative degree) विशेषण बनते हैं। जैसे :—पुण्यतम, पापतम, नीचतम, महत्तम, बृहत्तम, लघुतम, गुरुतम, प्रियतम आदि।

(ग) विशेषण के बाद 'इयस्' और 'इष्ठ' लगाकर भी तुलनात्मक (Comparative) और अतिशयताबोधक (Superlative) विशेषण बनते हैं। इन प्रत्ययों के लगने से विशेषण शब्दों का अन्तिम स्वर लुप्त हो जाता है। जैसे:—पाप-पापीयस्, पापिष्ठ, स्वादु-स्वादीयस्, स्वादिष्ठ, लघु-लघीयस्, लघिष्ठ, अल्प-अल्पीयस्, अल्पिष्ठ।

(घ) मत्, वत्, विन् प्रत्ययों से बने विशेषण शब्दों के उन प्रत्ययों का लोप करके 'ईयस्' और 'इष्ठ' जोड़े जाते हैं। जैसे :—बलवत् या बलिन्—बलीयस्, बलिष्ठ, पापिन् या पापवत्—पापीयस्, पापिष्ठ आदि।

नीचे इन्हीं प्रत्ययों से बने बहुधा प्रयोग में आने वाले कई विशेषणों के साधारण, आधिक्यबोधक तथा अतिशयताबोधक (प्रथमा एकवचन पुं०) के रूप दिये जाते हैं :—

साधारण	आधिक्यबोधक	अतिशयताबोधक
गुरुः (बड़ा)	गुरुतरः, गरीयान्	गुरुतमः, गरिष्ठः
लघुः (छोटा)	लघुतरः, लघीयान्,	लघुतमः, लघिष्ठः

(विशेष व्याकरण में देखिये)

विशेष :—

(क) इनमें 'तर' अथवा 'ईयस्' प्रत्ययान्त विशेषण का प्रयोग दो वस्तुओं में एक की किसी गुण में विशेषता 'अधिकता' दिखलाने के लिये होता है और जिसकी अपेक्षा दूसरी वस्तु की अधिकता दिखलायी जाती है। जैसे:—रामात् प्रियतरः अथवा प्रेयान् श्यामः अस्ति=राम से प्यारा श्याम है। गर्दभात् स्थूलतरः या स्थवीयान् महिषः (भैंसा) भवति=गदहा से मोटा भैंसा होता है। सुरेशात् कनीयान् (उम्र में छोटा) रमेशः=रमेश सुरेश से छोटा (उम्र में) है। धनात् विद्या गरीयसी=धन से विद्या बड़ी है।

(ख) जहाँ बहुत वस्तुओं में एक वस्तु की किसी गुण, जाति, क्रिया आदि में अधिकता दिखलाई जाती है वहाँ तमप्(तम) प्रत्ययान्त अथवा 'इष्ठ' प्रत्ययान्त विशेषण आते हैं और जिन वस्तुओं में एक वस्तु की अधिकता बतलाते हैं उनमें षष्ठी या सप्तमी विभक्ति होती है। जैसेः— बालकानाम् बालकेषु वा हरिः लघिष्ठः वा लघुतमः = लड़कों में हरि सबसे छोटा है। छात्राणां छात्रेषु वा किशोरः क्रशिष्ठः वा कृशतमः= विद्यार्थियों में किशोर सबसे दुर्बल है। पशूनां पशुषु वा सिंहः बलिष्ठः= सब पशुओं में सिंह बलवान् होता है।

अभ्यास

(क) आधिक्य-बोधक तथा अतिशयता-बोधक विशेषणों का वाक्य में प्रयोग कब होता है ? उदाहरण द्वारा बताओ।

(ख) निम्नलिखित का प्रयोग वाक्यों में करो :-गरीयसी, श्रेष्ठः, महत्तरः, ज्यायान्, गुरुतमः।

अध्याय ६

पाठ १

अव्यय

जो शब्द तीनों लिङ्गों, सातों विभक्तियों और तीनों वचनों में एक समान रहें अर्थात् किसी प्रकार उनमें परिवर्तन नहीं हो, उन्हें अव्यय कहते हैं। अव्यय की सब विभक्तियाँ लुप्त हो जाती हैं। केवल प्रयोग के समय ऐसे अव्यय जिनके अन्त में र् अथवा स् हो विसर्ग हो जाता है। कहा भी है :—

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्॥

चादि, प्रादि, स्वरादि, वत् आदि तद्धितप्रत्ययान्त शब्द और कृदन्त के तुमुन्, क्त्वा, णमु, ल्यप् प्रत्ययान्त शब्द अव्यय होते हैं। इनमें से कुछ चुने हुये छात्रों के लिये परमोपयोगी तथा व्यवहार्य अव्यय तथा उनके प्रयोग के नियम दिये जाते हैं :—

(१) अथः—इसका प्रयोग आगे के अर्थों में किया जाता है :—

(क) मंगल के लिये :—अथातो ब्रह्मजिज्ञासा = अब इसके आगे ब्रह्म के विषय में विचार।

(ख) किसी प्रसंग या कथन के आरम्भ में:—अथ इदानीं मित्रलाभः प्रस्तूयते=अब यहाँ से मित्र लाभ का आरम्भ होता है। अथ द्वादशोऽध्यायः = द्वादश अध्याय प्रारम्भ हुआ।

(ग) बाद, अनन्तर, पीछे:—अथाब्रवीत् महातेजा व्यासशिष्यो महातपाः =अनन्तर महातेजस्वी तथा महातपस्वी व्यासशिष्य बोले।

(घ) यदि के अर्थ में :—अथ आग्रहश्चेदावेदयामि = यदि आग्रह है तो कहता हूँ।

(ङ) प्रश्न पूछने में :—अथ शक्तोऽसि तत्र गन्तुम ? क्या वहाँ जाओगे ?

(च) और तथा भी अर्थ में :–रामोऽथ लक्ष्मणः=राम और लक्ष्मण। गणितमथ कलाकौशिकीम् = गणित और कौशिकीकला भी।

(छ) सन्देह और अनिश्चय में:—शब्दो नित्योऽथानित्यः = शब्द नित्य है या अनित्य।

(ज) पूरा-पूरा और सम्पूर्ण में:—अथ धर्मं व्याख्यास्यामः = पूरा-पूरा धर्म का विवेचन करेंगे।

(२) अथकिम्:—'हाँ, ऐसा ही', 'और क्या' इन अर्थों में यह प्रयुक्त होता है। जैसे :—स्वामी :—पाचक ! पाकः सम्पन्नो जातः ? पाचकः—अथकिम् = मालिक ने पूछा रसोइया ! क्या भोजन तैयार हो गया ? रसोइया ने कहा :—हाँ।

(३) अथवा :—वा, या, ऐसा क्यों इन अर्थों में विभाजक की तरह या पूर्व के कथन में परिवर्त्तन या संशोधन के लिये प्रयुक्त होता है। जैसे:—भोः कोऽत्र द्वारि तिष्ठति ? अथवा अपरेण किं प्रयोजनम्=दरवाजे पर कौन है ? या दूसरे से क्या मतलब ? अथवा ममेदं कर्त्तव्यमिदमधुना = ऐसा क्यों यह तो स्वयं मेरा इस समय कर्त्तव्य है।

अपिः—यह अव्यय आगे के अर्थों में प्रयुक्त होता है :—

(क) भी, और :—आपदामापतन्तीनां हितोऽप्यायाति हेतुताम्= हितेच्छु भी आनेवाली आपत्तियों का कारण बन जाता है। अपि सिञ्च अपि स्तुहि = पटाओ भी और स्तुति भी करो।

(ख) यद्यपि, चाहे:—सेवितोऽपि महाजनैः—यद्यपि बड़े लोगों से सेवित हुआ।

(ग) सम्भावना:—अपि स बुद्ध्या महाशक्तिशालिनमपि तं जयेत्=सम्भव है वह उस महाशक्तिशाली को भी अपनी बुद्धि से जीत ले।

(घ) प्रश्न में :—अप्येतत् जगद्गुरु भारतवर्षम् ? क्या यही जगद्गुरु भारतवर्ष है ?

(ङ) आशा, प्रतीक्षा:—अपि उत्तरेत् स इमामग्निपरीक्षाम् = आशा है इस अग्निपरीक्षा में वह उत्तीर्ण हो जाय।

(च) सन्देह, अनिश्चय :—अपि रामः आगतो भवेत् = हो सकता है, राम आ गया हो।

विशेषः—अपि के और भी बहुत से अर्थ होते हैं। विशेष ज्ञान के लिये उन्हें अन्यत्र देख लेना चाहिये।

अधिकृत्य (बारे में) :—अथ कतमं पुनर्ऋतुमधिकृत्य गास्यामि= किस ऋतु के बारे में गाऊँ? कतमं पुनर्विषयमधिकृत्य वदिष्यामि= किस विषय के बारे में बोलूँ। उद्दिश्य (बारे में, तरफ):—स्वगृहमुद्दिश्य प्रस्थितः = अपने घर की तरफ चला।

अभ्यास

(क) 'अथ', 'अपि', इन दो अव्ययों का भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयोग कर विविध वाक्य बनाओ।

(ख) 'अथवा' तथा 'अथकिम्' इन दो अव्ययों का प्रयोग किन किन अर्थों में होता है? उदाहरण दो।

पाठ २

अकस्मात् (अचानक):—स अकस्मात् पतितः = वह अचानक गिर गया।

अग्रतः, अग्रे (आगे, पहले):—कृष्णः तवाग्रत एव पलायितः= कृष्ण तेरे सामने ही से अथवा पहले ही भागा।

अचिरात् (जल्द; तुरत):—स अचिरादेव गमिष्यति = वह जल्द ही जायेगा।

अतः (इसीसे, इसीलिये) :—त्वमतीव दुष्टः अतस्त्वां निस्सारयामि=तू अत्यन्त दुष्ट है इसलिये तुझे निकाल रहा हूँ।

अये (आश्चर्य):—अये भगवान् रामचन्द्रः ? = अहा भगवान् रामचन्द्र हैं! (खेद, भय):—अये महत् दुःखमापतितम् ? हा बड़ा दुःख आ पड़ा!

अहह (प्रसन्नता, आश्चर्य):—अहह महतां निःसीमानश्चरित्र-विभूतयः = महात्माओं के चरित्र की महानता की कोई सीमा नहीं है ? (खेद, दुःख):—अहह महापङ्के पतितोऽसि = हाय तू बड़ा भारी पङ्क में पड़ गया !

अहो (बहुत प्रसन्नता):-अहो पापौघदलनदक्षा भगवती भागीरथी= अहा ! पापराशि के नाश में दक्ष भगवती गंगा हैं । (खेद वा शोकप्रकाश):-अहो देशस्य दुर्भाग्यम्=हाय देश का दुर्भाग्य ! (सम्बोधन में):—अहो सभ्याः = हे सभ्यगण !

आः (हर्ष):—आः स्वयं मृतोऽसि=अहा ! आप ही तू मर गया ! (दुःख)—आः दुर्भिक्षम् = ओः कैसा अकाल है ! (क्रोध) :—आः नाधुनापि त्वं त्यक्तवान् स्वस्य शाठ्यम् = ओः अब तक तू ने अपनी शठता नहीं छोड़ी !

आम् (स्वीकार, हां) :—आं तत्र गत्वा मया इदमानीतम् = हाँ, वहाँ जाकर मैं यह लाया । (स्मरण करने में) :—आं ज्ञातम्, भवन्तः पाटलिपुत्राद्वरं द्रष्टुमागताः = स्मरण हुआ, आप लोग पटने से वर देखने आये हैं ।

इतिः—यह नीचे के अर्थों में प्रयुक्त होता हैः—

(क) यहः—प्रद्युम्न इति नाम कृतवान् = प्रद्युम्न यह नाम रखा ।
(ख) इसीसे, इसलिये :—ब्राह्मणोऽसीति प्रणमामि = ब्राह्मण हो, इसलिये प्रणाम करता हूँ ।
(ग) इस प्रकारः—इति ब्रुवाणां तां दृष्ट्वा = इस प्रकार बोलती हुई उसको देखकर ।
(घ) इस तरह से :—रामाभिधानो हरिरित्युवाच = राम नामक हरि ने इस तरह कहा ।
(ङ) इस कारण से :—दरिद्र इति स दयनीयः = दरिद्र है इस कारण से वह दया का पात्र है ।
(च) समाप्तिः—इति प्रथमोऽध्यायः = पहला अध्याय समाप्त हुआ ।

इव :—नीचे के अर्थों में इसका प्रयोग होता है :—

(क) सादृश्य :—समुद्र इव गम्भीरः = समुद्र के समान गम्भीर।

(ख) उत्प्रेक्षा, अनुमान :—कृतान्तमिव द्वितीयमटन्तं व्याधमपश्यत् = दूसरे यमराज के जैसे घूमते हुए बहेलिये को देखा।

(ग) कैसे, क्योंकर—परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुषः = पराधीन व्यक्ति प्रीति का रस कैसे जान सकता है ?

(घ) थोड़ा सा, कुछ कुछ :—कडार इवायम् = कुछ कुछ चितकबरा सा यह जान पड़ता है।

(ङ) वस्तुतः, वाक्यालङ्कारः—किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् = वस्तुतः सुन्दर आकृति वालों के लिये कौन सी वस्तु अलङ्कार नहीं बनती।

उत (सन्देह, अनिश्चयः) :—चौरोऽयमुतातिथिः = यह चोर है कि अतिथि (या) :—त्वं काशीं गमिष्यसि उत प्रयागम्—तू काशी जायगा या प्रयाग।

एव (निश्चय):—सत्यमेव सतां व्रतम् = सच बोलना ही सज्जनों का व्रत है। (वही) :—तदेव कार्षापणं यन्मया मथुरायां गृहीतम् = वही पैसा है जो मैंने मथुरा में लिया था। (ठीक) :—एवमेव = ठीक ऐसा ही। (केवल) :—तथ्यमेव मया प्रोक्तम् = मैंने केवल सत्य कह दिया। (अकेला) :—नाम्नैव निर्भिन्नारातिहृदयः = जो अकेला नाम से ही शत्रुओं के हृदय को विदीर्ण कर देता था।

एवम् :—प्रायः 'ऐसा' और 'इस प्रकार' इसका अर्थ होता है। यह किसी पहले कही हुई वस्तु अथवा बाद में कही जाने वाली वस्तु से सम्बन्ध रखता है। अथवा कोई काम करने के लिये आज्ञा देने में इसका प्रयोग होता है। जैसे :—तमेवमुक्त्वा भगवांस्तिरोदधे = उसको इस प्रकार कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

(क) 'अच्छा', 'हाँ', 'ठीक है' इन अर्थों में भी इसका प्रयोग होता है। जैसे:—एवमेतत् = हाँ यह ऐसा ही है। एवं कुर्मः = हां हम लोग ऐसा करें।

अभ्यास

(क) आश्चर्य, प्रसन्नता और हर्ष के सूचक अव्ययों को लिखो ?
(ख) 'आम्', 'उत', 'एव', 'एवम्'—के अर्थ लिखो और प्रयोग करो ।
(ग) 'इति' और 'इव'-इन दो अव्ययों का भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयोग कर वाक्य बनाओ ।

पाठ ३

कच्चित् :—'क्या मैं ऐसी आशा करूँ' इस आशय को लेकर प्रश्न पूछने में प्रयुक्त होता है । जैसे :—कच्चित् स धैर्यं हृदये करोति = क्या वह हृदय में धैर्य रखता है ? अर्थात् क्या मैं आशा करूँ कि वह हृदय में धीरता रखता है ?

कामम् (यह बात ठीक है, यह मैं मानता हूँ) :—कामं न तिष्ठति मदाननसंमुखी सा = यह ठीक है कि वह मेरे सम्मुख नहीं ठहरती । (अपनी इच्छा भर, यथेष्ट) :—कामं मृषा वदतु किन्तु न कार्यसिद्धिः =अपनी इच्छाभर, यथेष्ट झूठ बोल लो किन्तु इससे कुछ काम सधने को नहीं । भले हो :—कामं सन्तु सहस्रशो नृपतयः = भले ही हजारों राजा पड़े रहें । 'कामम्' के साथ वाक्य में प्रायः 'तु' 'किन्तु' 'तथापि' इनमें एक अवश्य आता है ।

किम् (प्रश्न पूछने में) :—किमस्मिन् स्थाने सभा भविष्यति ?=क्या इस स्थान में सभा होगी ? (निन्दित, बुरा) :—स किं सखा साधु न शास्ति योऽधिपम् = जो अपने स्वामी को अच्छी राय नहीं देता वह निन्दित भृत्य है । (अथवा) :—दृश्यतां किमयं सर्पोरज्जुर्वेति = देखो कि यह साँप है या रस्सी ?

किमु (और क्या) :—किमु यत्र चतुष्टयम्=जहां चारों हैं वहाँ का और क्या कहा जाय। (सन्देह) :—किमु विषविसर्पः किमु मदः= यह विष का प्रकार है या अत्यन्त मद ।

कृते (लिये) :—परोपकारस्य कृते जीवनमपि त्यजेत्=परोपकार के लिये जीवन को दे देना चाहिये। इसके योग में षष्ठी विभक्ति होती है।

खलु (निश्चय, सचमुच) :—किसी बात पर जोर देने के लिये :— जैसे :—मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति = रास्ते में वस्तुतः तेरे पैर इधर उधर पड़ रहे हैं। प्रार्थना-सूचक-शब्द की तरह :—न खलु न खलु बाणःसन्निपात्योऽयमस्मिन्=इसके ऊपर बाण न छोड़ा जाय। शिष्टतापूर्वक विनयपूर्ण प्रश्न करने में : न खलु तम् अभिक्रुद्धो गुरुः = क्या गुरुजी उस पर क्रुद्ध तो नहीं हो गये? कारण—न विदीर्ये कठिनाः खलु स्त्रियः = मैं विदीर्ण नहीं हो जाती हूँ कारण स्त्रियाँ कठोर होती हैं।

क्षणात् (क्षण भर में) :—क्षणादूर्ध्वं न जानामि विधाता किं करिष्यति = क्षण भर में न मालूम विधाता क्या करेगा। जल्दः—स क्षणात् मृतः = वह जल्द मर गया।

क्षणम् (थोड़ी देर) :—क्षणं तिष्ठ = थोड़ी देर ठहर।

अभ्यास

(क) 'कच्चित', 'कामम्', 'किम्' 'किमु'-इन अव्ययों का प्रयोग भिन्न भिन्न अर्थों में विविध वाक्यों में करो।

(ख) 'खलु' का प्रयोग किन किन अर्थों में है? उदाहरण दो।

(ग) 'क्षणात्' और 'क्षणं' का प्रयोग वाक्यों में करो।

पाठ ४

चः—यह शब्दों अथवा वाक्यों को जोड़ता है। यह संयोजक समुच्चय-बोधक अव्यय है। यह कभी भी वाक्य के आदि में नहीं आता। जो जो शब्द या वाक्य इसके द्वारा जुड़ते हैं उनमें प्रत्येक के साथ अथवा सबसे अन्तिम शब्द या वक्तव्य के साथ यह आता है। जैसे :—कृष्णश्च बलरामश्च अथवा कृष्णो बलरामश्च। पुस्तकमानयति च तत्पठति च पाठं लिखति च अथवा पुस्तकमानयति तत्पठति पाठं लिखति च।

सबसे अन्त वाले शब्द के साथ ही 'च' को रखना सुन्दर होता है। इसलिये उसी तरह इसका व्यवहार करना चाहिये।

(क) वाक्य के आदि में रखने के अतिरिक्त 'च' को कहीं भी रखा जा सकता है। जैसे :—काकोऽप्युड्डीय वृक्षमारूढ़: मन्थरश्च जलं प्रविष्ट:= कौआ भी उड़कर पेड़ पर चढ़ गया और मन्थर पानी में घुस गया।

(ख) 'न' के साथ जब 'च' का प्रयोग होता है, तब उसका अर्थ 'न तो' या 'न' होता है। जैसे :-न चोपभोक्तुं न त्यक्तुं शक्नोति विषयाञ्जरी= बूढ़ा न तो विषयों को भोग सकता है और न छोड़ सकता है।

(ग) कभी कभी 'च' तथापि, परन्तु आदि के अर्थ में विरोधात्मक भाव लेकर प्रयुक्त होता है। जैसे :—शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहु:= यह आश्रम तो शान्त है तथापि मेरी भुजा फड़क रही।

(घ) वस्तुत:, सचमुच इस अर्थ में एक आध स्थल में इसका प्रयोग पाया जाता है। जैसे :—अतीत: पन्थानं तव च महिमा वाङ्मन- सयो:—वस्तुत: तुम्हारी महिमा वाणी तथा मन के मार्ग से परे है।

(ङ) यह वाक्यालङ्कार की तरह अथवा श्लोक का चरण पूरा करने में आता है। जैसे :—दु:खानि च सुखानि च = दु:ख सुख।

(च) शर्त सूचित करने के लिये भी कभी कभी इसका प्रयोग होता है। जैसे :—हेतुं मे गदत: शृणु जीवितं मूढ ! चेच्छसि ! अर्थात जीवितुमिच्छसि चेत्।

(छ) द्वन्द्व समास में अर्थात् अन्वाचय, समाहार, इतरेतर और समुच्चय अर्थ में भी 'च' का प्रयोग होता है। क्रमश: उदाहरण ये हैं :—

अन्वाचय (किसी आश्रित घटना का किसी प्रधान घटना के साथ जोड़ना) जैसे :—भिक्षामट गाञ्चानय=भिक्षा मांगने जाओ और (उसके साथ ही साथ) गाय भी लेते आना।

समाहार :—सामूहिक एकता को कहते हैं। जैसे :-पाणी च पादौ च पाणिपादम् = हाथ-पैर की समष्टि।

इतरेतर:—परस्पर के सम्बन्ध को कहते हैं। जैसे :-रामश्च लक्ष्मणश्च रामलक्ष्मणौ।

समुच्चय :—इससे समूह का बोध होता है; जैसे :—खादति च खेलति च।

जातु :—(एकदम से, सम्भवतः, कदाचित्, कभी, शायद) :—न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति=विषयों के उपभोग से कामनायें कभी पूरी नहीं होतीं। न जातु तेन जातेन=सम्भवतः उसके जन्म लेने से क्या लाभ ? न जातु बाला लभते स्म निर्वृतिम्=उस कुमारी ने जरा भी सुख नहीं भोग पाया।

तद् (सर्वनाम) [इसके सर्वनाम प्रकरण को देखिये]:—यह क्रिया विशेषण अव्यय भी है। इसके अर्थ हैं—(इससे, इसलिये) :—तदत्र सरसि स्नात्वा सुवर्णकङ्कणं गृहाण=इसलिये इस तालाब में स्नानकर इस स्वर्ण कङ्कण को लो। (तब, उस दशा में) इस अर्थ में 'यदि' का परस्पर सम्बन्धी बनकर आता है। जैसे :—तदेहि विमर्दक्षमां भूमिमवतरामः = तब आओ, संग्राम के लिये समुपयुक्त किसी स्थान में चलें। तथापि यदि भवतां कुतूहलं तत् कथयामि=तो भी यदि आप महानुभावों को बड़ी जिज्ञासा है तो कहता हूँ।

ततः (तब, इसके बाद, बाद में, वहाँ से):—ततो लोभाक्रान्तेन केनचित् पान्थेनालोचितम् = बाद में लोभाभिभूत किसी पथिक ने सोचा। ततः प्रतिनिवृत्य अत्र स्थास्यामि = वहाँ से लौट कर यहाँ ठहरूँगा।

(क) इस कारण से, इसलिये, फलस्वरूप इन अर्थों में भी इसका प्रयोग होता है। इस दशा में 'ततः' 'यदि' का इतरेतर सम्बन्धी बनकर आता है। जैसे :—नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्=यदि भगवान् की आराधना नहीं की तो तप से क्या लाभ ?

(ख) कभी कभी 'ततः' का 'इसके अतिरिक्त' 'उसके आगे' यह अर्थ भी होता है। जैसे :—ततः परं किं वक्तव्यम् = इसके अतिरिक्त और क्या कहना है ?

तथा :—'इस प्रकार' 'वैसा ही' अर्थ में इसका प्रयोग होता है। जैसे :—तथा मां कृत्वा गतः=मुझे इस प्रकार बनाकर चला गया। भृत्यस्तथा करोति = नौकर वैसा ही करता है।

तथाहि :—क्योंकि, देखिये, कहा है आदि अर्थों में आता है। जैसेः—धर्मशास्त्रेऽपि एतदुक्तम्, तथाहि = धर्मशास्त्र में ऐसा कहा है देखिये।

तावत्—निम्नोक्त अर्थों में इसका प्रयोग होता है :—

(क) 'पहिले' :—इतस्तावदागम्यताम् देवि ! = देवी ! पहिले इधर तो आओ।

(ख) 'तब तक' :—त्वम् अग्रे चल, अहं तावत् कार्यं कृत्वा गृहमागच्छामि = तू आगे चल मैं तब तक काम करके घर आता हूँ।

(ग) 'अभी' :—गच्छ तावत् = अभी जाओ।

(घ) किसी उक्ति पर जोर देने के लिये वस्तुतः के अर्थ में :—स एव तावत् प्रथममेवमुक्तवान् = उसने ही पहले ऐसा कहा।

तु (किन्तु) :—रामः कार्यं करोति श्यामस्तु उपविशति = राम काम करता है किन्तु श्याम बैठता है। (केवल) :—एकं तु देशस्य स्वातन्त्र्यं न दृष्टवान् = केवल एक देश की स्वाधीनता नहीं देखी। (स्वयम्) :—अवनिपतिस्तु तामनिमेषलोचनो ददर्श = राजा स्वयं उसको एक टक देखने लगे।

(क) कभी कभी 'तु' विभिन्नता या उत्तमतर गुण सूचित करने के लिये प्रयुक्त होता है। जैसे :—मिष्टं पयो मिष्टतरं तु दुग्धम् = पानी मीठा होता है, परन्तु दूध और भी मीठा होता है।

(ख) कभी कभी बल देनेके लिये भी इसका प्रयोग होता है। जैसे :—भीमस्तु पाण्डवानां रौद्रः = भीम पाण्डवों में सबसे भयङ्कर हैं।

अभ्यास

(क) 'च' का प्रयोग किन किन अर्थों में होता है? उदाहरणों के द्वारा समझाओ।

(ख) 'तद्' का प्रयोग अव्यय की भाँति किन किन अर्थों में होता है? उदाहरण के द्वारा स्पष्ट करो।

(ग) 'जातु' 'ततः' 'तथा' और 'तु' का प्रयोग भिन्न भिन्न अर्थों में करो।

पाठ ९

दिष्ट्या :—इससे हर्ष सूचित होता है। दैवयोग से, सौभाग्य से, भगवान् की कृपा से इत्यादि इसके अर्थ होते हैं। जैसे :—दिष्ट्या प्रतिहतं दुर्जातम्=सौभाग्य से ही बाधायें दूर हो गयीं। दिष्ट्या कोपव्याजेन देव्या परित्रातो भवान्=भगवान् की कृपा से आप महारानी द्वारा क्रोध के बहाने बचा लिये गये। बधाई अर्थ में भी प्रायः वृध् धातु के साथ इसका प्रयोग होता है। जैसे :—दिष्ट्या महाराजो विजयेन वर्धते=महाराज को इस विजय पर बधाई है।

न, नो (नहीं): = नेदमुक्तं मया = मैंने यह नहीं कहा। 'न न' इस प्रकार दो बार 'न' का प्रयोग होने पर 'हाँ,' 'अवश्य' यह अर्थ सूचित होता है। जैसे :—नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम् = यह अवश्य ही अपनी मनोव्यथा का कारण बता देगी।

नाम :—'नामक' इस अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे :—सुदर्शनो नाम नरपतिः=सुदर्शन नामक राजा थे।

(क) बहाना करने के लिये 'नाम' का प्रयोग होता है। जैसे :—
कार्तान्तिको नाम भूत्वा = ज्योतिषी का बहाना करके।

(ख) निश्चय:—सत्येन नाम जितम् = सचमुच सत्य की जीत हुई।

(ग) स्वीकार :—एवमस्तु नाम = ऐसा ही हो।

(घ) आश्चर्य :—अन्धो नाम पुस्तकं पठति=अन्धा पुस्तक पढ़ता है।

(ङ) क्रोध :—ममापि नाम दशाननस्य परैः परिभवः ?=ऐं क्या मुझ रावण की भी दूसरों से पराजय ?

(च) सम्भावना :—अपि नाम कुलपतेरियमसवर्णक्षेत्रसम्भवा स्यात्=क्या शकुन्तला कुलपति कण्व की अन्य वर्ण की स्त्री से पैदा हुई हो सकती है ?

विशेष:—यह नाम शब्द किसी के साथ समस्त नहीं होता। नामन् (नाम) शब्द एक दूसरा है। वह इससे बिल्कुल पृथक् है। उसके साथ

शब्दों का समास होता है। नाम अव्यय के साथ कदापि नहीं। जैसे :—
दशरथनाम राजा बिल्कुल अशुद्ध प्रयोग होगा। या तो यहाँ दशरथो नाम राजा अथवा दशरथनामा राजा होना ठीक है। प्रथम उदाहरण में 'नाम' अव्यय है तथा द्वितीय उदाहरण में नामन् शब्द के साथ समास है।

ननु (निश्चय, अवश्य ही यह ऐसी ही बात है) :—१. यदाऽमेधाविनी शिष्योपदेशं मलिनयति तदाऽऽचार्यस्य दोषो ननु = जब मन्द बुद्धि शिष्या गुरु की शिक्षा को मलिन कर देती है तो क्या यह आचार्य का दोष नहीं अर्थात् यह अवश्य ही आचार्य का दोष है।

२. 'प्रार्थना करता हूँ' 'कृपया' इन अर्थों में; जैसे : = ननु मे देहि स्वसन्निधौ शरणम् = कृपया मुझे अपने पास शरण दीजिये।

३. प्रश्न करने में :—ननु समाप्तकृत्यो भवान्=क्या आपने अपना काम पूरा कर लिया ?

४ सम्बोधन करने में :—ननु मूर्खाः किं कुरुत = रे मूर्खो क्या करती हो ?

नूनम् :—'अवश्य ही' 'वस्तुतः' इस अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे :—स नूनमद्यागमिष्यति = वह अवश्य ही आज आवेगा। अद्यापि नूनं हरकोपवह्निस्त्वयि ज्वलत्यौर्व इवाम्बुराशौ = अवश्य ही शङ्कर की क्रोधाग्नि आज भी समुद्र में वडवानल की नाई तुझमें जल रही है।

पुन :—इसका अर्थ 'फिर' होता है। जैसे :—पुनः जलं पातुमिच्छति = फिर पानी पीना चाहता है।

(क) 'किन्तु' 'इसके प्रतिकूल' इस अर्थ में भी 'पुनः' का प्रयोग होता है। जैसे :—इमानि मधुराणि फलानि, इदं सुस्वादु भोजनम् मम पुनर्दुर्भाग्यस्य रोगिणो भाग्ये किमपि नास्ति = ये मीठे फल हैं, यह सुस्वादु भोजन है किन्तु मुझ अभागे रोगी के भाग्य में कुछ नहीं बदा है।

(ख) 'पुनः पुनः' इस प्रकार का 'पुनः' का दोहरा प्रयोग वक्तव्य विषय पर अधिक जोर डालने के लिये होता है। इसका अर्थ होता है 'बार बार' जैसे :—पुनः पुनस्तामेव कथां कथयसि = बार बार वही कहानी कहते हो।

प्रायः, प्रायेण :—ये 'साधारणतया' इस अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। जैसे :—प्रायो राजानः पुत्रहीना भवन्ति = साधारणतः राजा लोग पुत्र हीन होते हैं। प्रायेणानेन तण्डुलकणलोभेनास्माभिरपि तथा भाव-तव्यम्=प्रायः इन चावल के टुकड़ों के लोभ से हमें भी वैसा ही होना पड़ेगा।

बत :—शोक, दुःख तथा करुणा प्रकाश के लिये इसका प्रयोग होता है। जैसे :—अहो बत महत् पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्=हाय, दुःख की बात है, हम लोग कैसा बड़ा पाप करने जा रहे हैं।

(क) हर्ष अथवा आश्चर्य प्रकट करने के लिये यह (बत) प्रायः 'अहो' के साथ प्रयुक्त होता है। जैसे :—अहो बत महच्चित्रम्=अहा ! बड़ा आश्चर्य है।

मुहु :—इसका अर्थ है 'बार बार' 'फिर फिर'। जैसे :—बालो मुहुः रोदिति=लड़का बार-बार रोता है।

यत् :—(कि) त्वं किं कामोऽसि यदत्र प्रतिदिनमागच्छसि ? तू क्या चाहता है कि प्रतिदिन यहाँ आता है ? (जो) तस्य मनसि किं वर्तते यदेवमनुचितं सर्वदा करोति = उसके मन में क्या है जो बराबर ऐसा अनुचित करता है।

यतः (जहाँ से, जिससे) :—यह 'यस्मात्' के स्थान पर प्रयुक्त होता है। जैसे :—यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी = जहाँ से यह पुरातन सृष्टि चली। (क्योंकि) :—यतोऽयं पुण्यकर्मणां धुरीणः हिरण्यको नाम मूषिकराजः=क्योंकि यह पुण्यात्माओं में अग्रगण्य हिरण्यक नामक मूषिक-राज है।

वरम् (अच्छा है) :—याच्ञा मोघा वरमधिगुणे=गुणवान् से की गयी याचना व्यर्थ भी हो जाय तो भी अच्छी है।

वरं न :—वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतम्=चुप्पी साध लेना अच्छा है किन्तु मिथ्या वचन बोलना अच्छा नहीं।

वा (या) :—रामः कृष्णो वा पठतु = राम या कृष्ण पढ़े।

१. वा (और) मद्वचनात् वक्तव्यो राजा सकलः प्रजावर्गो वेति = मेरी आज्ञा से राजा और सम्पूर्ण प्रजावर्ग को कह देना।

२. वा (ऐसा) := पद्मिनी वान्यरूपा = दूसरी तरह की परिवर्तित आकार वाली कमलिनी सी।

३. वा (सम्भवतः) :—इस अर्थ में यह प्रश्नवाचक सर्वनाम शब्दों के साथ होकर प्रयुक्त होता है। जैसे :—मृतः को वा न जायते = सम्भवतः कौन मरा हुआ फिर जन्म नहीं लेता।

४. वा वा……वा का प्रयोग 'या तो……या' 'चाहे—चाहे' इस अर्थ में होता है। जैसे :—सुरेशो वा उमेशो वा इदं कार्यं कर्तुं शक्नोति = या तो इन्द्र या शङ्कर इस काम को कर सकते हैं।

स्थाने (ठीक उचित समय पर) :—स्थाने खलु वाक्यनिवृत्तिः मोहश्च=ठीक समय पर कहना समाप्त हुआ और मूर्च्छा हुई। (यह सर्वथा ठीक ही है कि) स्थाने हृषीकेश तव प्रकृत्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।

अस्थाने (अनुपयुक्त, अनवसर) जैसे :—अस्थाने तवायमाग्रहः = आपका यह आग्रह अनुचित या अनवसर का है।

हन्त :—हिन्दी में 'अरे' और 'अहा' शब्दों द्वारा प्रकट किये जाने वाले हर्ष अथवा आश्चर्य के अर्थ में इसका प्रयोग होता है। जैसे :-हन्त प्रवृत्तं संगीतकम् = अरे, अहा, संगीत प्रारम्भ हो गया। (खेद, शोक) :—हन्त सत्यपि त्वयि देशस्येदृशी दशा=हाय, शोक तुम्हारे रहते देशकी ऐसी दशा। कभी कभी वाक्यारम्भ करने के लिये भी इसका प्रयोग होता है। जैसे :—हन्त ते कथयिष्यामि दिव्याह्यात्मविभूतयः = अच्छा, मैं तुझे अपनी दिव्य विभूतियाँ बतलाऊँगा।

हा (दुःख और शोक में) :—हा प्रिये जानकि ! = हाय प्यारी जानकी ! हा हा देवि स्फुटति हृदयम् ! = हाय, देवी ! मेरा हृदय फटा जा रहा है ! (आश्चर्य या विस्मय) :—हा कथं महाराजदशरथस्य धर्मदाराः प्रियसखी मे कौसल्या ! = ओहो, यह तो महाराज दशरथ की धर्म-पत्नी मेरी प्रियसखी कौसल्या है !

हि (निश्चय, सचमुच) :—एको हि दोषो गुणसन्निपाते निम-

ज्ञति = गुणसमूह में निश्चय एक दोष छिप जाता है। (क्योंकि) :—मातृजङ्घा हि वत्सस्य स्तम्भीभवति बन्धने = क्योंकि मां की जांघ बछड़े के बन्धन में खूँटा बन जाती है। (वस्तुतः) :—न हि कमलिनी दृष्ट्वा ग्राहमवेक्षते मतङ्गजः = वस्तुतः कमलिनी को देख कर हाथी ग्राह की परवाह नहीं करता। (उदाहरणार्थ) :—सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः = उदाहरणार्थ भगवान् सूर्यदेव सहस्रगुना करके लौटाने के लिये जल का आदान करते हैं। (केवल) :—अज्ञानिनो हि माययाऽभिभूयन्ते = केवल अज्ञानी माया से अभिभूत होते हैं।

अभ्यास

(क) 'दिष्ट्या' का प्रयोग किन अर्थों में होता है ? उदाहरण के द्वारा स्पष्ट करो।

(ख) 'न' का दुहरा प्रयोग किस अर्थ में होता है ? उदाहरण के द्वारा स्पष्ट करो।

(ग) बहाना करने के अर्थ में 'नाम' इस अव्यय का प्रयोग करो।

(घ) 'ननु' का प्रयोग किन किन अर्थों में होता है ? उदाहरण दो।

(ङ) 'पुनः' का दुहरा प्रयोग किस अर्थ में होता है ?

(च) 'बत', 'मुहुः', 'यत्', 'यतः' 'वरं', 'वा', 'स्थाने', 'इति', 'हा', 'हि'-का अर्थ बताओ और प्रयोग करो।

पाठ ६

यथा (जैसा) :—यथा दिशति भवान् = जैसी आपकी आज्ञा। (तुल्य, समान) :—उपविशति अयं मम क्रोडे यथात्मजः = यह पुत्र की तरह मेरी गोद में बैठता है। (उदाहरणार्थ) :—कर्मणि द्वितीया, यथा फलं खाद = कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है ; जैसे फल खा। (ताकि, जिसमें) :—त्वं दर्शय तमाततायिनं यथा तं मारयामि—

तू उस आततायी को दिखला जिसमें मैं उसको मारूँ। (निम्नोक्त प्रकार से):—यथानुश्रूयते = जैसा कि निम्नलिखित प्रकार से सुना जाता है।

यथा-तथा (जैसा-वैसा) :—यथा गुरुस्तथा शिष्यः = जैसा गुरु वैसा चेला। (इस प्रकार…कि):—अहं स्वामिनं विज्ञाप्य तथा करोमि यथा स तस्य वधं करिष्यति = मैं श्रीमान् से निवेदन कर ऐसा करूँगा कि वह उसे मार देगा। (चूँकि–इसलिये):—यथेमे इतस्ततः परिधावन्ति वन्यास्तथा सम्भाव्यते उत्थितो वनाग्निरिति = चूँकि जंगली जीव इधर–उधर दौड़ते हैं इसलिये जंगल में आग लगी है यह सम्भावना की जाती है।

यथैव–तथैव :—यथा तथा के द्वारा जिस समानता का बोध होता है उसे और बलवती बनाने के लिए किसी एक के साथ अथवा दोनों के साथ प्रायः एव शब्द जोड दिया जाता है। जैसे :–तस्य पुत्रेषु यथैव प्रेम तथैव प्रजासु = उसका जितना पुत्रों में प्रेम था उतना ही प्रजा में।

यथा यथा–तथा तथा (जितना जितना…उतना उतना, जितना ही…उतना ही) जैसे:—यथा यथा सान्त्वयिता वश्यः स्त्रीणां तथा तथा = ज्यों-ज्यों स्त्रियों को समझाने का पुरुष प्रयासी होता है त्यों त्यों उनका वशीभूत हो जाता है। यथा यथा प्रियं वदति परिभूयते तथा तथा = ज्यों ज्यों (जितना ही) पुरुष स्त्री से मीठा बोलता है त्यों त्यों (उतना ही) तिरस्कृत होता है।

यावत :—'जहाँ तक', 'तक' इसके अर्थ होते हैं। इससे समय की अवधि या मार्ग की दूरी का बोध होता है। ऐसी अवस्था में इसके योग में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे :—स्तनत्यागं यावत् पुत्रयोरवेक्षस्व= दूध छोड़ने की अवस्था तक इन दोनों पुत्रों की देख रेख करो। कियन्ति दिनानि यावद् भवन्तस्तत्र स्थास्यन्ति=कितने दिनों तक आप लोग वहाँ ठहरेंगे ?

(क) 'अभी' 'तो' इस अर्थ में भी कभी कभी यावत का प्रयोग होता है। जैसे :—तद् यावत् गृहिणीमाहूय संगीतकमनुतिष्ठामि=तो अभी

अपनी स्त्री को बुलाकर मैं संगीत प्रारम्भ करता हूँ। यावदिमां छायामाश्रित्य प्रतिपालयामि ताम् = अभी इस छाया का सहारा ले, उसकी प्रतीक्षा करता हूँ।

यावत्-तावत् (जब तक, तब तक):—तावद् भयाद्धि भेतव्यं यावद् भयमनागतम् = जब तक भय नहीं आया हो तभी तक भय से डरना चाहिए। (ज्योंही त्योंही, जब तब):—यावत् सरः स्नातुं प्रविशति तावन्महापङ्के पतितः पलायितुमक्षमः = ज्योंही तालाब में स्नान करने के लिये प्रवेश किया त्योंही बड़े भारी पांक में फंसकर भागने में असमर्थ हो गया। (सब, सम्पूर्ण) :—यावत्पठितं तावद्विस्मृतम् = सम्पूर्ण (जो कुछ) पढ़ा सो भूल गया।

(क) 'पहिले ही', 'पूर्व ही' का अनुवाद 'यावन्न' से किया जाता है। जैसे :—तद् यावन्न लग्नवेला चलति तावदागम्यतां देवेन = तो लग्न काल के टल जाने के पूर्व ही (पहिले ही) श्रीमान् आवें।

अभ्यास

(क) 'यथा' 'तथा' 'यथैव' 'तथैव' 'यथा-यथा' 'तथा-तथा' का प्रयोग भिन्न अर्थों में करो।

(ख) 'यावत्' का प्रयोग किन अर्थों में होता है? 'यावत्' 'तावत्' इन दो अव्ययों का प्रयोग कब और किन किन अर्थों में होता है? उदाहरण के द्वारा स्पष्ट करो।

अध्याय ७

पाठ १

विभक्ति-विवेचन

संस्कृत में विभक्तियों का समुचित प्रयोग जानना परमावश्यक है। विभक्तियों के समुचित प्रयोग के बिना कोई भी संस्कृत की रचना ठीक नहीं हो सकती। विभक्तियों के समुचित प्रयोग के लिये 'कारक' का ज्ञान परमावश्यक है इसलिये यहाँ कारक का विचार किया जाता है।

क्रिया के साथ विशेष सम्बन्ध रखने वाले को कारक कहते हैं। हिन्दी में कारक के आठ भेद हैं, कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण और सम्बोधन। परन्तु संस्कृत में क्रिया का जनक अर्थात् क्रिया के द्वारा पैदा होनेवाले फल की उत्पत्ति के साधक को कारक कहा जाता है, अतएव सम्बन्ध और सम्बोधन को कारक नहीं माना जाता क्योंकि इनमें सम्बोधन की गणना तो प्रथमा ही के अन्तर्गत हो जाती है और सम्बन्ध को क्रिया के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होने के कारण उपर्युक्त अर्थ में कारकत्व नहीं होता। सम्बन्ध तो एक संज्ञा का दूसरी संज्ञा के साथ सम्बन्ध मात्र प्रकट करता है किन्तु क्रिया का जनक नहीं होता। इस प्रकार संस्कृत में छः ही कारक होते हैं। जैसेः—

कर्त्ता कर्म च करणं च सम्प्रदानं तथैव च।
अपादानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट्॥

इन कारकों का अर्थात् क्रिया के साथ वाक्य में प्रयुक्त संज्ञाओं के विशेष सम्बन्ध का बोध विभक्तियों के द्वारा होता है। कहा भी हैः—'संख्या-कारकबोधयित्री विभक्तिः'=जिसके द्वारा संख्या और कारक का बोध हो उसे विभक्ति कहते हैं। जैसेः—बालकः, बालकौ, बालकाः, यहाँ बालक शब्द में प्रथमा विभक्ति का योग होने से, एक बालक, दो बालक, बहुत बालक, इस प्रकार संख्या का ज्ञान होता है। और रामः गच्छति, चन्द्रं पश्यति, दण्डेन ताडयति, श्यामाय ददाति, वृक्षात् पतति, विद्यालये पठति इत्यादि वाक्यों में राम आदि के आगे क्रमशः प्रथमादि

विभक्तियों के रहने के कारण ही राम—एकवचन कर्तृकारक, चन्द्र—एकवचन कर्मकारक, दण्ड—एकवचन करण कारक, श्याम—एकवचन सम्प्रदान कारक, वृक्ष—एकवचन अपादान कारक तथा विद्यालय—एकवचन अधिकरण कारक होकर 'गच्छति' आदि क्रियाओं के साथ अपना २ सम्बन्ध विशेष प्रकट करते हैं। यदि इनके आगे विभक्तियाँ नहीं रहतीं तो किसी प्रकार क्रिया के साथ इनके विशेष सम्बन्ध तथा संख्या का ज्ञान नहीं होता।

संस्कृत में ये विभक्तियां सात हैं। प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी। इनमें षष्ठी को छोड़कर अवशिष्ट छः विभक्तियाँ क्रम से कर्तृवाच्य में कर्त्ता के लिये प्रथमा और कर्म के लिये द्वितीया और किसी भी वाच्य में अवशिष्ट चार विभक्तियाँ उपर्युक्त छः कारकों को अर्थात् जिन संज्ञाओं के आगे आती हैं, क्रिया के साथ उन संज्ञाओं के विशेष संबंध को प्रकट करती हैं। षष्ठी जिसे सम्बन्ध कहते हैं, केवल एक संज्ञा का दूसरी संज्ञा के साथ सम्बन्ध (लगाव) प्रकट करती है।

विभक्तियों और कारकों के बीच ऐसा सम्बन्ध होने के कारण ही प्रायः कुछ विद्यार्थी इस भ्रम में पड़ जाते हैं कि विभक्ति और कारक एक ही हैं। परन्तु बात ऐसी नहीं है ? क्योंकि एक ही कारक अपनी अवस्था के अनुसार भिन्न २ विभक्तियों से प्रकाशित किया जा सकता है। जैसेः—रामः ग्रामं गच्छति = राम गाँव को जाता है और रामेण ग्रामः गम्यते=राम से गाँव जाया जाता है इन दोनों वाक्यों में 'राम' कर्त्ता ही है, परन्तु क्रियापद बोधित व्यापार के आश्रय होने के कारण प्रथम वाक्य में उसका कर्तृत्व प्रथमा विभक्ति के द्वारा तथा द्वितीय वाक्य में तृतीया विभक्ति के द्वारा प्रकट किया गया है। इसी प्रकार इन दोनों वाक्यों में 'ग्राम' कर्म कारक ही है, परन्तु प्रथम वाक्य में उसका कर्मकारकत्व द्वितीया विभक्ति के द्वारा तथा द्वितीय वाक्य में प्रथमा विभक्ति के द्वारा प्रकट किया गया है। इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कारक और विभक्ति एक वस्तु नहीं हैं अपि तु दो वस्तु हैं।

पाठ २

प्रथमा विभक्ति (कर्त्ता)

(१) क्रिया के करने वाले को कर्त्ता कहते हैं। अर्थात् धातु के अर्थ व्यापार के आश्रय को कर्त्ता कहते हैं। कर्तृवाच्य के कर्त्ता में प्रथमा विभक्ति होती है। जहाँ क्रिया के वचन और पुरुष कर्त्ता के वचन और पुरुष के अनुसार होते हैं उसे कर्तृवाच्य कहते हैं। कर्तृवाच्य के कर्त्ता में प्रथमा विभक्ति और कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है तथा क्रिया के वचन और पुरुष कर्त्ता के वचन और पुरुष के अनुसार होते हैं। जैसे :—छात्रः विद्यालयं गच्छति = विद्यार्थी स्कूल जाता है। त्वं पुस्तकं पठसि = तू पुस्तक पढ़ता है। अहं वसामि = मैं रहता हूँ इत्यादि। इन उदाहरणों में प्रथम वाक्य में कर्त्ता 'छात्रः' प्रथम पुरुष एकवचन है इसलिये क्रिया 'गच्छति' प्रथम पुरुष एकवचन हुई। 'गम्' का कर्म 'विद्यालय' है उसमें द्वितीया विभक्ति हुई। द्वितीय वाक्य में कर्त्ता 'त्वं' मध्यम पुरुष एकवचन है इसलिये क्रिया 'पठसि' मध्यम पुरुष एकवचन हुई तथा 'पठ्' धातु का कर्म जो 'पुस्तक' है उसमें द्वितीया विभक्ति हुई। तृतीय वाक्य में 'अहं' 'कर्त्ता' उत्तम पुरुष एकवचन है इसलिये क्रिया 'वसामि' उत्तम पुरुष एकवचन हुई। 'वस्' धातु अकर्मक है इसलिये कर्म की जगह कुछ नहीं आया। इसी प्रकार द्विवचन, बहुवचन में भी समझना चाहिये। यहां यह भी समझ लेना चाहिये कि 'यस्मिन् प्रत्ययः स उक्तः' जिसमें प्रत्यय होता है, उसको उक्त कहते हैं। इसीलिये कर्तृवाच्य में कर्त्ता को उक्त कर्त्ता कहते हैं और कर्म को अनुक्त कर्म।

(२) जहाँ क्रिया न हो केवल किसी वस्तु का नाम-मात्र प्रकट करना हो वहां प्रथमा विभक्ति होती है। जैसे :—रामः, कृष्णः, वृक्षः, लता, नदी, गृहम् आदि।

(३) सम्बोधन में भी प्रथमा विभक्ति होती है। जैसेः—हे कृष्ण हे राजन् ! हे मातः ! आदि।

(४) नीचे लिखे अव्ययों के योग में प्रथमा विभक्ति होती है :—

(क) 'इति' :—मिथिलायां जनक इति ख्यातः नृपः आसीत् = मिथिला में जनक नामक राजा थे।

(ख) 'नाम' :—सुदर्शनो नाम नरपतिरासीत् = सुदर्शन नामक राजा थे।

(ग) 'अपि':—विषवृक्षोऽपि संवर्द्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् = विष का वृक्ष भी लगाकर स्वयं काटना योग्य नहीं है।

अभ्यास

(क) कारक किसे कहते हैं ? कारक और विभक्ति में क्या अन्तर है ? उदाहरण देकर समझाओ।

(ख) संस्कृत में कारक कितने होते हैं ? सम्बन्ध कारक क्यों नहीं कहलाता ? समझाओ।

(ग) किन २ अव्ययों के योग में प्रथमा विभक्ति होती है ? उदाहरण देकर बताओ।

(घ) कर्तृवाच्य के कर्त्ता में प्रथमा विभक्ति होती है। यहां कर्तृवाच्य से क्या समझते हो ? उदाहरण देकर समझाओ।

पाठ ३

द्वितीया विभक्ति (कर्म)

(१) कर्ता की क्रिया के द्वारा जो आक्रान्त हो अर्थात् कर्त्ता के व्यापार से उत्पन्न होने वाले फलका जो आश्रय हो या कर्त्ता अपनी क्रिया के द्वारा मुख्यरूपेण जिसे प्राप्त करना चाहे उस कारक को 'कर्म' कहते है। कर्तृवाच्य के कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे :—रामः गृहं गच्छति = राम घर को जाता है। कृष्णः चन्द्रं पश्यति = कृष्ण चन्द्रमा को देखता है। छात्राः पुस्तकं पठन्ति = विद्यार्थी पुस्तक पढ़ते हैं। इन उदाहरणों में कर्तृभूत जो राम, कृष्ण तथा छात्र हैं, उनकी गमन, दर्शन तथा पठन रूपी क्रियाओं से क्रमशः ग्राम, चन्द्र एवं पुस्तक आक्रान्त हैं अर्थात् इन

कर्त्ताओं से सम्पादित क्रियाओं से होने वाले फलों के आश्रय हैं इसलिये ये कर्म कहलाते हैं और इनमें द्वितीया विभक्ति होती है। ऊपर बतलाये हुए ईप्सित कर्म के अतिरिक्त स्वाभाविक कर्म के और दो प्रकार हैं (१) उपेक्ष्य (उदासीन), (२) द्वेष्य। इच्छा नहीं रहने पर भी कभी कभी कर्त्ता अपने ही व्यापार द्वारा आनुषंगिक रूप से अनायास ईप्सित तथा अभिलषित वस्तु के साथ कुछ चीजों को प्राप्त कर लेता है जो उसके लिये उपेक्ष्य या द्वेष्य हैं। इसे भी स्वाभाविक कर्म ही मानना होगा क्योंकि कर्त्ता के व्यापार का फल इन पर भी पड़ता है और इसका पारिभाषिक नाम 'अनीप्सित कर्म' है। इस प्रकार के कर्म में भी द्वितीया विभक्ति होती है। यथा :—१—ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति = गाँव जाता हुआ रास्ते में तिनके को भी छू देता है। यहाँ पर गाँव ही कर्त्ता का अभिलषित है। तिनके का छूना तो यों ही हो जाता है क्योंकि तृण उसके लिये उपेक्ष्य है। २—ओदनं भुञ्जानः विषं भुङ्क्ते = भात खाता हुआ विष भी खा लेता है। यहाँ पर भात ही कर्त्ता के लिये अभिलषित है किन्तु धोखे से वह भात के साथ जहर भी खा जाता है जिसे खाना वह कभी नहीं चाहता। बल्कि उसके खाने से द्वेष रखता है।

टिप्पणी :—कर्मवाच्य के कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है। जैसे :— कृष्णेन चन्द्रः दृश्यते=कृष्ण से चन्द्रमा देखा जाता है। जहाँ क्रिया का वचन, पुरुष और लिङ्ग कर्म के अनुसार हो उसे 'कर्मवाच्य' कहते हैं। कर्मवाच्य का कर्म उक्त और कर्त्ता अनुक्त कहलाता है।

(२) नीचे के अव्ययों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है :—

(क) अभितः (चारों ओर) :—ग्रामम् अभितः वनम्—गाँव के चारों ओर वन है।

(ख) परितः (चारों ओर) :—परितः शय्यां परिजनाः सन्ति = शय्या के चारों ओर परिजन हैं।

(ग) सर्वतः (चारों ओर) : ग्रामम् सर्वतः जलम्=गाँव के चारों ओर जल है।

(घ) उभयतः (दोनों ओर) :—विद्यालयम् उभयतः राजमार्गः अस्ति = स्कूल के दोनों ओर सरकारी सड़क है।

(ङ) समया (निकट) :—गृहं समया कूपः अस्ति = घर के पास कूआं है।

(च) निकषा (निकट) : ग्रामं निकषा शिवमन्दिरम् अस्ति = गांव के पास शिवमन्दिर है।

(छ) प्रति (प्रति, तरफ) :—दीनं प्रति दयां कुरु = दुखिया पर दया करो।

(ज) धिक् (धिक्कार) :—कृतघ्नं धिक्=कृतघ्न को धिक्कार है।

विशेष—कभी २ धिक् के योग में प्रथमा अथवा सम्बोधन भी होता है। जैसेः—धिक् मूर्ख !। धिक् इयं दरिद्रता=इस दरिद्रता को धिक्कार है।

(झ) अन्तरा (बीच में) :—रामं श्यामम् अन्तरा केशवः = राम श्याम के बीच केशव है।

(ञ) अन्तरेण (विना) :—अन्तरेण भक्तिं न मुक्तिः=विना भक्ति के मुक्ति नहीं होती।

(ट) अनु (पीछे, बाद) :—जपमनु प्रावर्षत् = जप के बाद वर्षा हुई।

(ठ) यावत् (पर्यन्त) :—वनं यावत् अन्धकारः प्रसरति = जङ्गल तक अन्धकार फैल जाता है।

(ड) हा (खेद सूचक) :—हा ! कृष्णाभक्तम् = कृष्ण के अभक्त के लिये खेद है।

विशेष :—इसके योग में सम्बोधन भी होता है। जैसे :—हा ! देवि सीते। क्वासि ? = हा देवि सीता ! कहां हो ?

(ढ) अधोऽधः (नीचे नीचे) :—पर्वतम् अधोऽधः गच्छति = पर्वत के नीचे जाता है।

(ण) उपर्युपरि (ऊपर ऊपर) :—प्रासादम् उपर्युपरि पश्यति = कोठे के ऊपर ऊपर देखता है।

(३) नाम धरना, चुनना, बनाना, नियुक्त करना, निर्वाचित करना, जानना, समझना, पुकारना इत्यादि अर्थवाली धातुएं दो कर्म की अपेक्षा करती हैं। उनमें एक प्रत्यक्ष कर्म होता है और दूसरा अप्रत्यक्ष, दोनों में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसेः—त्वामामनन्ति पुरुषाः प्रकृतिम् = तुम्हें लोग प्रकृति मानते हैं। स त्वां मूर्खं जानाति = वह तुम्हें मूर्ख समझता है। मुनिः तं मूषिकं सिंहं कृतवान् = मुनि ने उस चूहे को सिंह बना दिया। इत्यादि।

(४) अधि उपसर्गपूर्वक शी, स्था और आस् धातुओं के योग में आधारवाचक शब्द में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे :—हरिः वैकुण्ठम् अधिशेते = विष्णु वैकुण्ठ में सोते हैं। बालकः शय्याम् अध्यास्ते = लड़का शय्या पर लेटा है। सः स्वर्णासनम् अधितिष्ठति=वह स्वर्ण के आसन पर बैठा है।

(५) अभि तथा नि पूर्वक विश् धातु के योग में आधारवाचक शब्द में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे :—अभिनिविशते सन्मार्गम् = वह अच्छे मार्ग की तरफ जा रहा है।

(६) उप, अनु, अधि, आङ् (आ) पूर्वक वस् धातु के आधार-वाचक शब्द में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे :—सः वनम् उपवसति, अधिवसति, अनुवसति, आवसति वा = वह वन में रहता है।

विशेष :—यदि 'उपवस्' का अर्थ उपवास करना हो तो आधार-वाचक शब्द में सप्तमी होती है। जैसे :—रामः वने उपवसति = राम वन में उपवास करता है।

(७) अत्यन्त संयोग (लगातार) अर्थ के बोध होने पर समय तथा मार्गवाची शब्दों में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे :—द्वादश वर्षाणि व्याकरणं पठितवान्=बारह वर्षों तक लगातार व्याकरण पढ़ा। क्रोशं घनं वनम् अस्ति = कोस भर (लगातार) घना जंगल है।

(८) क्रियाविशेषण में द्वितीया विभक्ति होती है, परन्तु यह

क्लीब लिङ्ग एकवचन ही होता है। यथा :—शीघ्रं गच्छति = तेज जाता है। मन्दं मन्दं भाषते = धीरे धीरे बोलता है।

(९) 'विना' इस अव्यय के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है; जैसे :—कृष्णं विना कः रक्षेत् = कृष्ण के बिना कौन बचावे ?

अकथित कर्म

संस्कृत में कुछ ऐसी धातुयें होती हैं जिनके दो कर्म होते हैं। एक को प्रधान वा मुख्य कर्म (Direct object) कहते हैं और दूसरे को अप्रधान अथवा गौण कर्म (Indirect object) कहते हैं। इनमें क्रिया से मुख्यतः सीधा सम्बन्ध रखने वाले कर्म को प्रधान कर्म कहते हैं तथा क्रिया से अप्रधान भाव से वक्ता की इच्छा के अधीन होकर सम्बन्ध रखने वाले कर्म को गौण कर्म कहते हैं। ये ही गौण कर्म अकथित कर्म कहलाते हैं। इनमें अपादान आदि अन्य कारकों का भी प्रयोग हो सकता है, किन्तु वक्ता यदि इन कारकों का व्यवहार नहीं करना चाहता है तो वैकल्पित रूप से द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे :—गोपः गां दुग्धम् दोग्धि = ग्वाला गाय से दूध दुहता है। भिक्षुकः पथिकम् भिक्षां याचते = भिक्षुक पथिक से भीख मांगता है इत्यादि। यहाँ गोपः गोः दुग्धं दोग्धि तथा भिक्षुकः पथिकात् भिक्षां याचते भी हो सकता है।

निम्न लिखित धातु अकथित कर्म (द्विकर्मक) वाले धातु हैं :—

दुह् (दुहना) :—कृष्णः धेनुं दुग्धं दोग्धि = कृष्ण गाय से दूध दुहते हैं।

भिक्ष्, याच् (मांगना) :—वामनः बलिं वसुधां याचते, भिक्षते वा = वामन बलि से पृथ्वी मांगते हैं।

पच् (पकाना) :—माता तण्डुलान् ओदनं पचति = माता चावलों से भात पकाती है।

दण्ड (दण्ड देना) :—लुण्ठकान् सहस्रं दण्डितवान् = लुटेरों पर हजार रुपया दण्ड लगाया।

रुध् (रोकना):—व्रजम् अवरुणद्धि गाम्=गाय को गोष्ठ घेरता है।

प्रच्छ् (पूछना) :—शिष्यः गुरुम् धर्मं पृच्छति = शिष्य गुरु से धर्म पूछता है।

चि (एकत्र करना) :—वृक्षम् अवचिनोति पुष्पाणि = पेड़ से फूलों को एकत्र करता है।

ब्रू, भास्, शास् (बोलना) :—माणवकं धर्मं ब्रूते, भाषते, शास्ति वा = बटुक से धर्म कहता है।

जि (जीतना) :—प्रद्युम्नं सहस्रं जयति = प्रद्युम्न से हजार रुपया जीतता है।

मन्थ् (मथना) :—सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति = क्षीरसागर से अमृत मथता है।

मुष् (चुराना):—रामं शतं मुष्णाति = राम से १०० रुपया चुराता है।

नी (ले जाना) :—कृष्णः गाः व्रजम् नयति = कृष्ण गायों को बाड़े में ले जाते हैं।

हृ (हरना) :—आजाम् ग्रामम् हरति = बकरी चुराकर गाँव में ले जाता है।

कृष् (खींचना) :—वृषम् क्षेत्रम् कर्षति = बैल को खींच कर खेत में ले जाता है।

वह् (ढोना) :—भारं ग्रामं वहति = बोझा को गाँव में ले जाता है।

ऊपर लिखी धातुओं के समान अर्थ वाली अन्य धातुयें भी इसी प्रकार द्विकर्म होती हैं। ऊपर के उदाहरणों के क्रमशः धेनुम्, बलिम्, तण्डुलान्, लुण्ठकान्, व्रजम्, गुरुम्, वृक्षम्, माणवकम्, प्रद्युम्नम्, क्षीरनिधिम्, रामम्, व्रजम्, ग्रामम्, क्षेत्रम्, ग्रामम्, ये गौण (अकथित) कर्म हैं। क्योंकि क्रिया से इनका मुख्य सम्बन्ध नहीं होता किन्तु वक्ता की इच्छानुसार यहाँ अपादानादि भी हो सकते हैं।

विशेष—द्विकर्मक अर्थात् अकथित कर्मवाली धातुओं से कर्मवाच्य होने पर दुहादि (दुह् से लेकर मुष् पर्यन्त १२ धातु) धातुओं के गौण

कर्म में प्रथमा विभक्ति हो जाती है तथा नी, हृ, कृष्, वह् धातुओं के प्रधान कर्म में प्रथमा विभक्ति हो जाती है। ज्ञान अर्थवाली, भक्षण अर्थ वाली तथा शब्दकर्मक (ब्रू, वच्, भाष्) धातुओं के प्रधान तथा गौण जिसमें चाहे एक में वक्ता प्रथमा विभक्ति कर सकता है। जैसे, दुहादि— गां दुग्धं दोग्धि (कर्तृवाच्य), गौः दुग्धं दुह्यते (कर्मवाच्य), नी आदि—कृष्णः गाम् व्रजम् नयति; हरति, कर्षति, वहति वा (कर्तृवाच्य) कृष्णेन गौः व्रजम् नीयते, ह्रियते, कृष्यते, उह्यते वा।

अभ्यास

(क) कर्म किसे कहते हैं ? उसमें कौन विभक्ति होती है ? उदाहरण देकर समझाओ।

(ख) कर्मवाच्य के कर्म में कौन विभक्ति होती है ? तथा उक्त कर्म किसे कहते हैं ? उदाहरण देकर समझाओ।

(ग) प्रति, धिक्, अनु, यावत् इन अव्ययों के योग में कौन विभक्ति होती है ? उदाहरण देकर बताओ।

(घ) नीचे लिखे अव्ययों के योग से संस्कृत में वाक्य बनाओ—हा, निकषा, अभितः, परितः, समया, अधोऽधः, उपर्युपरि, अन्तरा, अन्तरेण।

(ङ) उप + वस् तथा अधि + स्था धातुओं का प्रयोग कर वाक्य बनाओ।

(च) अकथित कर्म किसे कहते हैं और क्यों ? समझाओ।

(छ) अकथित कर्म किसे कहते हैं और क्यों ? समझाओ।

(ज) अकथित कर्मवाली धातुओं में से किन्हीं पाँच धातुओं को लेकर उनके योग से ऐसे पाँच वाक्य बनाओ जिनमें उनके दोनों (प्रधान, अप्रधान) कर्म आवें।

(झ) द्विकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य होने पर किन धातुओं के प्रधान तथा किन धातुओं के अप्रधान कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है ? प्रत्येक का एक एक उदाहरण देकर समझाओ।

शुद्ध करो :—स गौः दुग्धं दुग्धवान्। बालकः नृपेण पुस्तकं याचते। त्वं मया किं पृच्छसि ? सः तव किं ब्रवीति ! रामेण तण्डुलान् ओदनः पच्यते। तेन अजां ग्रामः नीयते।

पाठ ४

तृतीया विभक्ति (करण)

(१) कर्ता की क्रिया के सम्पादन में जो प्रधान साधन है उसे करण कहते हैं।

(क) करण में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे :—मुसलेन शिरः चूर्णयति = मुसल से शिर चूर-चूर करता है। यहाँ कर्त्ता की 'चूर करना' जो क्रिया है उस क्रिया के सम्पादन में मुसल प्रधान साधन है इसलिये वह करण कहलाया और उसमें तृतीया विभक्ति हुई।

(ख) यदि किसी कार्य के सम्पादन की रीति जानी जाय तो उसमें करण होता है और उसमें तृतीया विभक्ति होती है। जैसे :—विधिना पूजयामास = उसने विधिपूर्वक पूजा की।

(ग) प्रकृति आदि शब्दों में तृतीया विभक्ति हो जाती है ? जैसे :— प्रकृत्या चारुः = स्वभाव से ही सुन्दर है। जात्या ब्राह्मणः = जाति से वह ब्राह्मण है। गोत्रेण गार्ग्यः = गोत्र से वह गर्ग है अर्थात् गर्ग गोत्र का है।

(घ) गत्यर्थक धातुओं के योग में जिसके द्वारा गमन किया जाय वह करण होता है और उसमें तृतीया विभक्ति होती है। जैसे :—वायुयानेन स इन्द्रप्रस्थं प्रस्थितः = वह हवाई जहाज से दिल्ली गया।

(ङ) जिसके नाम पर शपथ किया जाय उसमें करण कारक होता है और उसमें तृतीया विभक्ति होती है। जैसे :— सत्येन शपामि = मैं सत्य का शपथ करता हूँ।

(च) जिस मूल्य पर कोई वस्तु ली जाय, वह 'करण' कहलाता है। उसमें तृतीया विभक्ति होती है। जैसे :—सहस्रमुद्राभिः क्रीतोऽयमश्वः = हजार रुपये में खरीदा हुआ यह घोड़ा है।

(छ) वहनार्थक (ढोना) अथवा स्थापनार्थक धातुओं के योग में जिस पर कोई वस्तु ढोई जाय या रखी जाय वह करण होता है और उससे तृतीया विभक्ति होती है। जैसे :—स शिरसा तत्र पादुकां वहति =

वह शिर पर तेरी खराऊँ ले चलता है। तदाज्ञां शिरसाऽऽदाय प्रस्थि-तोऽसौ वनालयः=वह वानर उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर चल पड़ा।

(ज) किसी स्थान तक जाने के लिये जिस मार्ग का अनुसरण किया जाय उसकी दिशा करण होती है तथा उसमें तृतीया होती है। जैसे :— कतमेन दिग्भागेन स गतः = किस दिशा से वह गया।

(२) (क) कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होती है। कर्मवाच्य में क्रिया कर्म के अनुसार होती है अर्थात् कर्म के जो पुरुष, वचन और लिङ्ग होते हैं, क्रिया के भी वे ही पुरुष, वचन और लिङ्ग होते हैं और कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे :—रामेण पुस्तकं पठ्यते= राम से किताब पढ़ी जाती है।

भाववाच्य में क्रिया सदा प्रथम पुरुष एकवचन में रहती है और कर्त्ता में तृतीया विभक्ति हो जाती है। जैसे :—जनैः हस्यते=लोगों से हंसा जाता है।

(ख) क्रिया की सामान्यावस्था का कर्त्ता प्रेरणार्थक दशा (णिजन्त) में प्रयोज्य कर्त्ता कहलाता है। प्रयोज्य कर्त्ता में तृतिया विभक्ति होती है। जैसे :—बालकः ओदनं खादति—माता बालकेन ओदनं खादयति। माता बालक को भात खिलाती है।

(३) सह (साथ) तथा इसके अर्थवाले अव्ययों (साकम्, सार्द्धम्, समम्) के योग में अप्रधान अर्थात् प्रधान कर्त्ता का साथ देने वाले शब्द में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे:—पुत्रेण सह आगच्छति पिता= पुत्र के साथ पिता आता है। सह का प्रयोग नहीं रहने पर भी यदि उस का अर्थ ऊह्य होता हो तो तृतीया विभक्ति हो जाती है। जैसे :—धनदेन न मे सख्यम् =कुबेर के साथ मेरी मित्रता नहीं है।

(४) उत्कर्ष तथा सादृश्य अर्थ के बोधक धातुओं के योग में जिन गुणों की उत्कृष्टता समझी जाय अथवा जिन बातों में सादृश्य पाया जाय, उनमें तृतीया विभक्ति होती है। जैसे :—त्वं विनयेन सर्वान् भ्रातॄन् अतिशेषे =तू विनय के कारण सब भाइयों से बढ़ गया। अयम् बालकः रूपेण पितरम् अनुहरति=यह बालक रूप में पिता से मिलता जुलता

है। कभी-कभी इस अर्थ में सप्तमी का भी प्रयोग होता है। जैसे :—धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः = वह त्याग में कुबेर के समान तथा सत्यता में दूसरे धर्म के समान है।

सादृश्य या समानता बोधक शब्दों के योग में जिससे सादृश्य या समानता का बोध हो उसमें तृतीया विभक्ति होती है। जैसे :—अयं सत्ये हरिश्चन्द्रेण तुल्यः, सदृशः, समः, समानो वा = यह सत्य में हरिश्चन्द्र के समान है।

(५) अपवर्ग (अभीष्ट फल की प्राप्ति या अभीष्ट कार्य की सिद्धि) का बोध हो तो समयवाची तथा मार्गवाची शब्दों में तृतीया विभक्ति होती है। अर्थात् जितना समय लगते-लगते या जितना मार्ग चलते-चलते कार्य सिद्ध हो जाता है, उस समय और मार्ग में तृतीया होती है। जैसे :—अह्ना क्रोशेन वा व्याकरणम् अधीतवान् = एक दिन में या एक कोश चलते-चलते व्याकरण पढ़ लिया और वह उसे आ भी गया। जहाँ फलकी प्राप्ति न हो वहाँ द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे :—मासमधीतन् नायातम् = महीना भर लगातार पढ़ा पर कुछ नहीं आया।

(६) जिस लक्षण या चिह्न से कोई व्यक्ति सूचित हो (पहचाना जाय) उस लक्षण या चिह्नवाचक शब्द में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे :—पुस्तकेन छात्रमजानाम् = पुस्तक से विद्यार्थी समझा। खड्गेन योद्धारमपश्यम् = तलवार से सैनिक समझा।

(७) हेतु अर्थात् किसी वस्तु या क्रिया के कारण या प्रयोजन का बोध कराने वाले शब्द में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे :—पुण्येन दृष्टो हरिः = पुण्य के कारण भगवान् को देखा अर्थात् भगवान् का दर्शन हुआ। दण्डेन घटो भवति = दण्ड से घड़ा होता है।

(८) प्रयोजन भी हेतु (कारण) होता है। इसलिये जिस प्रयोजन से कोई क्रिया करे उस प्रयोजनवाची शब्द में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे :—अध्ययनेन वसति = अध्ययन करने के प्रयोजन से रहता है।

(९) ऊन (कम) अर्थवाले, निषेध अर्थ वाले तथा प्रयोजन अर्थ वाले शब्दों के योग में तृतीया विभक्ति होती है; जैसे :—एकेन ऊनः =

एक कम, विद्यया शून्यः = विद्याशून्य, ज्ञानेन हीनः = ज्ञानरहित, बलेन रहितः = निर्बल, अलं श्रमेण = बस परिश्रम से कुछ नहीं होगा, विवादेन किम् = झगड़े से क्या ? धनेन किं प्रयोजनम् = धन से क्या प्रयोजन ?, कोऽर्थो विवादेन, कृतं कलहेन = बस झगड़ा हटाओ आदि ।

(१०) शरीर के जिस अंग के विकार के कारण शरीर में विकार लक्षित हो उसमें तृतीया होती है; जैसे :—चक्षुषा काणः, पादेन खञ्जः, कर्णाभ्यां बधिरः आदि ।

(११) सर्वनाम के साथ हेतु शब्द का प्रयोग होने पर सर्वनाम तथा हेतु शब्द दोनों में तृतीया विभक्ति होती है; जैसेः—केन हेतुना गच्छति = किस कारण से जाता है ।

(१२) निमित्त के पर्यायवाची शब्दों के योग में तृतीया भी होती है । जैसे :—केन निमित्तेन, केन प्रयोजनेन, केन कारणेन आदि । अन्य भी सब विभक्तियाँ होती हैं ।

(१३) दिव् (जूआ खेलना) धातु की क्रिया का प्रधान साधन द्वितीया अथवा तृतीया विभक्ति में हो जाता है जैसे :—अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति = पाशों से जूआ खेलता है ।

(१४) सम् पूर्वक ज्ञा धातु के कर्म में द्वितीया अथवा तृतीया होती है; जैसे :—पित्रा पितरं वा संजानीते = वह पिता के साथ राय से रहता है ।

अभ्यास

(क) करण किसे कहते हैं ? करण में कौन विभक्ति होती है ?
(ख) अनुक्त कर्त्ता कब होता है ? उसमें कौन विभक्ति होती है ?
(ग) सह, साकम्, समम्, तुल्यः, सदृशः इनके योग में तृतीया विभक्ति का प्रयोग करते हुए प्रत्येक से एक-एक वाक्य बनाओ ?

शुद्ध करो :—दण्डात् वृषभं ताडयति । रामः चन्द्रं दृश्यते । पितुः सह पुत्रः गच्छति । नेत्रस्य काणः भिक्षां याचते । माता बालकम् ओदनम् खादयति । मासमधीनम् आयातञ्च । सः शौर्यं रामात् सदृशः अस्ति । तमहम् अलङ्कारात् धनिनम् अपश्यम् ।

पाठ ९

चतुर्थी–सम्प्रदान

(१) जिसको कोई वस्तु दी जाय उसे सम्प्रदान कहते हैं। सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है, जैसे :—रामः श्यामाय पुस्तकं ददाति = राम श्याम को पुस्तक देता है।

(२) रुचि (प्रसन्नता) अर्थ वाले धातुओं के योग में प्रीयमाण (प्रसन्न होने वाला) सम्प्रदान होता है और उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसे :—हरये रोचते भक्तिः = भगवान् को भक्ति अच्छी लगती है। बालकाय स्वदते अपूपः = लड़का को पूआ अच्छा लगता है।

(३) स्पृहि (चाहना) धातु के योग में जिस वस्तु की चाह की जाय उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसे:—बालकः मिष्टान्नेभ्यः स्पृहयति = लड़का मिठाइयाँ चाहता है। परन्तु अत्यन्त उत्कट चाह होने पर द्वितीया ही होती है, जैसे :—अहं मुक्तिं स्पृहयामि = मैं मुक्ति चाहता हूँ।

विशेष—स्पृह् धातु से कृत्प्रत्यय लगाकर बने शब्दों के योग में भी कभी-कभी चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसे :—महात्मानः ज्ञानाय स्पृहयालवो भवन्ति = महात्मा लोग ज्ञान के इच्छुक होते हैं। कः कुपुत्राय स्पृहां कुर्यात् = कुपुत्र की कौन स्पृहा करेगा ?

(४) क्रोध, द्रोह, ईर्ष्या तथा असूया (डाह) अर्थ को कहने वाले धातुओं के योग में जिस पर क्रोध आदि किया जाय उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसे :—देवदत्तः भृत्याय क्रुध्यति = देवदत्त नौकर पर क्रोध करता है।

विशेष:—यदि क्रुध और द्रुह् के पहले कोई उपसर्ग हो तो जिस पर क्रोध या द्रोह किया जाय उसमें कर्म कारक होता है, यथा :—पुत्रमभिक्रुध्यति = पुत्र पर क्रोध करता है।

(५) धारि (धारना) धातु के प्रयोग में ऋण देने वाला सम्प्रदान होता है और उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसे :—रामः श्यामाय सहस्रं धारयति = राम श्याम का हजार रुपया धारता है।

(६) प्रति और आपूर्वक श्रु (प्रतिज्ञा करना) धातु के प्रयोग में जिसके लिये देने की प्रतिज्ञा की जाती है वह सम्प्रदान होता है; जैसे :— दरिद्राय वस्त्रं प्रतिश्रृणोति आश्रृणोति वा = दरिद्र को कपड़ा देने की प्रतिज्ञा करता है।

(७) जिसके लिये कोई क्रिया की जाय वह भी सम्प्रदान होता है; जैसे :—पुण्याय ददाति = पुण्य के लिये देता है। मुक्तये हरिं भजति = मुक्ति के लिये भगवान् को भजता है।

टिप्पणी—यज् धातु (यज्ञ करना) के योग में जिसको यज्ञ अर्पण किया जाता है उसमें द्वितीया विभक्ति होती है, और जिस वस्तु या सामग्री द्वारा यज्ञ सम्पन्न होता है उसमें तृतीया विभक्ति रक्खी जाती है। जैसे :— पशुना रुद्रं यजते = वह रुद्र को पशु चढ़ाता है।

(८) जिस प्रयोजन के लिये कोई कार्य किया जाता है, या जिस वस्तु के निर्माण के लिये दूसरी वस्तु का प्रयोग किया जाता है, उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसे :—दानम् धर्माय = दान धर्म के लिये होता है। यूपाय दारु = यज्ञ का खम्भा बनाने के लिये लकड़ी। कुण्डलाय हिरण्यम् = कुण्डल बनाने के लिए सोना। अवहननाय उलूखलम् = कूटने के लिये ओखली।

(९) कहना अर्थवाली क्रिया के प्रयोग में जिससे कुछ कहा जाय या निवेदन किया जाय उसमें चतुर्थी विभक्ति भी होती है। जैसे :—तुभ्यं सर्वं वृत्तम् आचक्षे = तुझसे सारी घटना कहता हूँ। तस्मै सर्वं कथय स उचितं करिष्यति = उससे सब कुछ कहो वह उचित करेगा।

(१०) भेजना अर्थ वाले धातु के योग में गौण (अप्रधान) कर्म में चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे :—कृष्णः दुर्योधनाय एकं दूतं विसृष्टवान्, प्रेषितवान्, प्रेरितवान्।

(११) जब किसी वाक्य में तुमुन् प्रत्ययान्त धातु का अर्थ छिपा रहे तो उसके कर्म में चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसे :—फलेभ्यो याति = फलानि आहर्तुं याति = फलों को लाने के लिये जाता है। अध्ययनाय

गच्छति=अध्ययनं कर्त्तुं गच्छति=अध्ययन करने के लिये जाता है। यहाँ 'आहर्त्तुम्' का कर्म 'फलानि' और 'कर्त्तुम्' का कर्म 'अध्ययन' में चतुर्थी विभक्ति हुई है।

(१२) तुमुन् के अर्थ से युक्त जो धातु-निष्पन्न भाववाचक संज्ञा है उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसेः—यागाय याति=यष्टुं याति = वह यज्ञ करने जाता है। पाठाय याति = पठितुं याति = वह पढ़ने के लिये जाता है।

(१३) क्लृप् (समर्थ होना, पैदा होना) धातु तथा उसके समान अर्थ वाले संपद्, भू, जन् इत्यादि अन्य धातुओं के योग में जो कुछ सम्पद्यमान (परिणाम) हो उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसे :—ज्ञानं मोक्षाय कल्पते=ज्ञान से मोक्ष होता है। संयमः स्वास्थ्याय चारोग्याय कल्पते = संयम स्वास्थ्य और नीरोगता पैदा करता है।

(१४) जब किसी गत्यर्थक धातु का कर्म कोई मार्गवाची शब्द न रहे तथा क्रिया के सम्पादन के लिये शरीर से व्यापार करना पड़े, तब उसके कर्म में द्वितीया या चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे :—विद्यालयं विद्यालयाय वा गच्छति = विद्यालय जाता है। परन्तु गत्यर्थक धातु का कर्म कोई मार्गवाची रहे तो उसमें केवल द्वितीया विभक्ति होती है; जैसे :—मार्गं वा पन्थानं गच्छामि।

मार्गवाची से भिन्न कर्म रहने पर भी यदि शारीरिक चेष्टा न हो तो केवल द्वितीया होती है; जैसे :—मनसा काशीं गच्छति = मन से काशी जाता है।

(१५) राध् (आराधना, प्रसन्न करना) ईक्ष् (मंगल कामना करना) धातु के योग में जिसके विषय में कुशल-सम्बन्धी या सुखादि-सम्बन्धी प्रश्न किये जाते हैं उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसे :—कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा गर्गः=नन्देन पृष्टः गर्गः शुभाशुभं पर्यालोचयति—नन्दजी के पूछने पर गर्गजी श्रीकृष्ण के शुभाशुभ का विचार कर रहे हैं।

(१६) जिस नियत मूल्य पर कोई वस्तु खरीदी जाय या जिस नियत पारिश्रमिक पर कोई व्यक्ति नियुक्त किया जाय उस मूल्य तथा पारिश्रमिक शब्द में तृतीया तथा चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे :—शतेन शताय वा परिक्रीतोऽयमश्वो दासो वा = यह घोड़ा अथवा नौकर सौ रुपये में खरीद लिये गये हैं।

(१७) निवृत्ति अर्थ में जिस वस्तु की निवृत्ति चाहते हैं उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है, जैसे:—अन्धकाराय दीपः = अन्धकारनिवृत्तये दीप इत्यर्थः = अंधेरा दूर करने के लिये दीपक। आतपाय छत्रम् = धूप रोकने के लिये छाता।

(१८) हित और सुख के योग में जिसके लिये हित अथवा सुख हो उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसे :—लोकाय हितम् वा सुखम्=संसार के लिये हितकर वा सुखकर।

(१९) नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् (जोड़, पर्याप्त, काफी) वषट् इन अव्ययों के योग में जिसके लिये इन अव्ययों का प्रयोग हो उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे :—नमः कमलनाभाय = भगवान् विष्णु को नमस्कार। राज्ञे स्वस्ति = राजा का कल्याण हो। अग्नये स्वाहा = अग्निदेव के लिये यह हविष्य। पितृभ्यः स्वधा = पितरों के लिये समर्पित। इन्द्राय वषट् = इन्द्र के लिये यह बलि। दैत्येभ्यो हरिरलम = दैत्यों के लिये श्रीविष्णु पर्याप्त हैं।

(२०) अलम् के अर्थवाची प्रभु, समर्थ, शक्त आदि शब्द तथा प्रपूर्वक-भू धातु के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसेः—अलं, समर्थः, शक्तः, प्रभुः, प्रभवति मल्लो मल्लाय = पहलवान का जोड़ पहलवान होता है। विधिरपि न येभ्यः प्रभवति = ब्रह्मा भी जिनके लिए समर्थ नहीं है।

(२१) 'नमस्' पूर्वक कृधातु के योग में 'नमस्कृ' के कर्म में प्रायः द्वितीया विभक्ति होती है, परन्तु कहीं कहीं चतुर्थी भी होती है; जैसे :—नमस्कृत्य गणाध्यक्षम्=गणेशजी को प्रणाम करके। नमस्कुर्मो नृसिंहाय = हम लोग नृसिंह को नमस्कार करते हैं।

(२२) 'प्रणाम करना' इस अर्थवाले धातु 'प्रणम्' तथा 'प्रणिपत्' इत्यादि

के कर्म में द्वितीया तथा चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे :—पितरं प्रणि-पत्याह = पिता को प्रणाम करके बोला। ते देवताभ्यः प्रणमन्ति=वे देवताओं को प्रणाम करते हैं।

(२३) 'स्वागतम्' 'कुशलम्' 'भद्रम्' 'सुखम्' इत्यादि शब्दों के योग में जिसके लिये इनका प्रयोग हो उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे :— रामाय स्वागतम्, कुशलं, भद्रं, सुखम् वा। भद्रम्, कुशलम्, सुखम् के योग में षष्ठी भी होती है। जैसे :—लोकानां भद्रं, सुखम् कुशलम् वा।

(२४) यदि अनादर अर्थ समझा जाय तो दिवादिगणीय 'मन्' (सम, झना) धातु के गौण कर्म में (यदि वह प्राणिवाचक न हो तो) द्वितीया या चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसे :-न त्वाम् अहम् तृणं तृणाय वा मन्ये= मैं तुझे तिनके के समान भी नहीं समझता। परन्तु यदि निषेध या अनादर सूचित न हो, केवल तुलना दिखाई जाय तो केवल द्वितीया होती है; जैसे :—त्वां तृण मन्ये=मैं तुझे तिनके के तुल्य मानता हूँ।

टिप्पणी:—नौ, काक, अन्न, शुक, शृगाल शब्द में (यदि इनमें 'मन्' का कोई कर्म हो) यह नियम नहीं लगता; जैसे :—न त्वामहं शुकं शृगालं काकं वा मन्ये।

अभ्यास

(क) सम्प्रदान किसे कहते हैं ?

(ख) सम्प्रदान में कौन विभक्ति होती है ?

(ग) नमः, स्वस्ति, स्वाहा, अलम्, भद्रम्, कुशलम् इनके योग में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग करते हुए प्रत्येक से एक एक वाक्य बनाओ।

(घ) निम्नलिखित वाक्यों के रेखाङ्कित शब्दों में चतुर्थी विभक्ति होने के कारण बतलाओः-शिशवे क्रीडा रोचते। योगी मुक्तये स्पृहयति। मूर्खः विदुषे क्रुध्यति। त्वं दरिद्राय वस्त्रं प्रतिश्रृणोषि। अश्वाय घास-मानयति। तस्मै सत्यं कथय। पाठाय याति। स मह्यं शतं धारयति। शताय क्रीतोऽयमश्वः। आतपाय छत्रम्। पुत्राय हितमिच्छति। कृष्णः कंसं तृणाय मन्यते।

पाठ ६

पञ्चमी–अपादान

(१) जिस स्थान, पुरुष या वस्तु से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में कोई वस्तु अलग हो उस स्थान, पुरुष या वस्तु को अपादान कहते हैं और अपादान में पञ्चमी विभक्ति होती है; जैसे :—गृहात् गच्छति = घर से जाता है। यहां जानेवाले का घर से वियोग हो रहा है इसलिये 'गृह' अपादान हुआ और उसमें पञ्चमी विभक्ति हुई।

(२) हेतु (कारण) का बोध होने से हेतु का बोधक जो शब्द है, उसमें पञ्चमी और तृतीया दोनों होती हैं। जैसे :—बालः भयात् भयेन वा पलायते = लड़का डर के कारण भागता है।

(३) जुगुप्सा (घृणा), विराम (बन्द हो जाना, अलग होना), प्रमाद (भूल करना) अर्थवाले तथा इनके समान अर्थवाले धातुओं के योग में जिससे जुगुप्सा, विराम या प्रमाद किया जाय उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है; जैसे:—पापात् जुगुप्सते = पाप से घृणा करता है। अधर्मात् विरमति = अधर्म से दूर होता है। धर्मात् प्रमाद्यति = धर्म में प्रमाद (भूल) करता है।

(४) भू (होना) धातु के प्रयोग में जहां से उसके कर्त्ता का आविर्भाव या प्रकाश हो उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे :—हिमालयात् गङ्गा प्रभवति = हिमालय से गङ्गा निकलती है।

(५) भय अर्थवाले तथा रक्षा अर्थवाले धातुओं के योग में जिससे भय हो तथा जिससे रक्षा हो उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है, जैसे :—बालकः सर्पात् बिभेति = लड़का सांप से डरता है। ईश्वरः दुःखात् रक्षति = ईश्वर दुःख से बचाते हैं।

(६) जब वाक्य में ल्यप् प्रत्ययान्त क्रिया लुप्त रहे तब उसके कर्म तथा अधिकरण में पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे :—वृक्षात् प्रेक्षते = वृक्षमारुह्य प्रेक्षते = पेड़ पर चढ़कर देखता है। श्वशुरात् जिह्रेति =

श्वशुरं वीक्ष्य जिह्रेति=ससुर को देखकर लजाती है। आसनात् प्रेक्षते=आशने उपविश्य प्रेक्ष्यते=आसन पर बैठकर देखता है।

(७) प्रश्न और उसके उत्तर में पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे:—कुतस्त्वम आगच्छसि ? विद्यालयात्=तू कहां से आता है ? मैं विद्यालय से आता हूँ।

(८) वारण (रोकना) अर्थवाले धातुओं के प्रयोग में जिससे निवारण करना अभीष्ट हो उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है, जैसे :—अधर्मात् निवारयति=अधर्म से निवारण करता है। यवेभ्यो गां वारयति=यवों से गौ को हटाता है।

(९) परापूर्वक जि धातु के प्रयोग में असह्य जो विषय है, वह अपादान होता है और उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है; जैसे :—अध्ययनात् पराजयते=अध्ययन से पराजित होता है।

(१०) 'छिपना' या 'छिपाना' अभीष्ट रहने पर जिससे छिपता या छिपाता है वह अपादान होता है और उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है; जैसे :—मातुर्निलीयते कृष्णः=कृष्ण माता से छिपते हैं।

(११) नियमपूर्वक विद्या अध्ययन करने में जिससे अध्ययन किया जाय उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है; जैसे :—उपाध्यायादधीते=गुरु से पढ़ता है।

(१२) जन् (पैदा होना) धातु का कर्त्ता जहां से पैदा हो उसकी अपादान संज्ञा होती है और उसमें पञ्चमी होती है; जैसे :—ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते=ब्रह्मा से प्रजा पैदा होती हैं। कामात् क्रोधोऽभिजायते=काम से क्रोध पैदा होता है।

१३—(क) जिस स्थान से किसी दूसरे स्थान की दूरी बतलायी जाती है उस स्थानवाचक शब्द में पञ्चमी विभक्ति होती है तथा दोनों स्थानों के बीच की दूरी बताने वाला शब्द प्रथमा या सप्तमी विभक्ति में रक्खा जाता है; जैसे :—वनात् ग्रामः पञ्चकोशाः पञ्चकोशेषु वा= जङ्गल से गाँव पांच कोस है। यहां वन से ग्राम की दूरी बतलायी जाती है; इसलिये वन में पञ्चमी विभक्ति हुई। दोनों के बीच की दूरी का

वाचक शब्द 'पञ्चक्रोश' है, उससे प्रथमा और सप्तमी दोनों विभक्तियाँ हुई।

(ख) यदि एक काल से दूसरे काल की दूरी बतलायी जाती हो; तो जिस काल से दूसरे काल की दूरी बतलायी जाय उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है तथा दोनों कालों के बीच की दूरी का वाचक जो शब्द है, उसमें सप्तमी विभक्ति होती है; जैसे:—कार्तिक्या आग्रहायणी मासे=कार्तिक की पूर्णिमा से अगहनी पूर्णिमा एक महीने पर होती है। यहां कार्तिकी पूर्णिमा से आग्रहायणी पूर्णिमा का परिमाण (दूरी) बताया जाता है, इसलिये 'कार्तिकी' में पञ्चमी विभक्ति हुई तथा समय का परिमाण (दूरी) बतलाने वाला 'मास' शब्द सप्तमी विभक्ति में रक्खा गया।

(१३) दो अथवा अनेक वस्तुओं में यदि किसी एक वस्तु की उत्कृष्टता (अधिकता) बतायी जाय, तो निकृष्ट में अर्थात् जिसकी अपेक्षा उत्कृष्टता बतायी जाती है उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे:—ज्ञानात् भक्तिः गरीयसी=ज्ञान से भक्ति बढ़ी-चढ़ी है। माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्यः आढ्यतराः = मथुरा वाले पटना वालों से धनी होते हैं।

(१४) 'सुनना' अर्थ वाले धातु के योग में जो सुनाने वाला हो उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है; जैसे :—पण्डितात् कथां शृणोति = पंडित से कथा सुनता है।

(१५) ग्रहण (लेना) प्राप्ति (पाना) अर्थ वाले धातुओं के योग में जिससे लिया जाय या प्राप्ति हो उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे:—प्रजाभ्यः करमादत्ते = प्रजा से कर लेता है। पुत्रात् सुखमवाप्नोति = पुत्र से सुख पाता है।

(१६) मर्यादा (सीमा), अभिविधि (व्याप्ति) अर्थ का बोध होने से 'आ' इस अव्यय के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे मर्यादा :—आ समुद्रात्=समुद्र तक। आ कैलाशात्=कैलाश तक। आ परितोषात् विदुषाम्=विद्वानों का सन्तोष हो जाने तक। अभिविधि :—आमूलात् श्रोतुमिच्छामि=आरम्भ से ही सुनना चाहता हूँ।

(१७) अन्य (दूसरा) अर्थवाचक शब्दों के योग में पञ्चमी विभक्ति

होती है। जैसे :—कृष्णात् अन्यः को मां रक्षेत्=कृष्ण के सिवा कौन मुझे बचावे ? इतर, अतिरिक्त, भिन्न, विलक्षण आदि अन्यार्थक शब्द हैं।

(१८) दिशावाचक, देशवाचक और कालवाचक शब्दोंके प्रयोग में पञ्चमी विभक्ति होती है; जैसे, दिशावाचकः—पूर्वः गृहात्=घरसे पूरब। उत्तरो ग्रामात्–गांव से उत्तर। देशवाचीः—काशी पाटलिपुत्रात् पश्चिमदेशे=काशी पटना से पश्चिम है। कालवाची :—चैत्रात् पूर्वः फाल्गुनः=चैत से पहले फाल्गुन होता है।

(१९) बहिः, आरात् (समीप) प्रभृति (से) शब्द के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे :—गृहाद्बहिः=घर से बाहर। आरात् विद्यालयात्=विद्यालय के पास। शैशवात् प्रभृति=बचपन से ही।

टिप्पणी—ऊर्ध्वम्, परम्, अनन्तरम्, आरभ्य आदि शब्दों के योग में भी पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे :—मासादूर्ध्वं, परम्, अनन्तरम्, आरभ्य = एक महीने के बाद।

(२०) आ और आहि प्रत्ययान्त शब्दों के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है, जैसे :—गृहादुत्तरा कूपः = घर से उत्तर दिशा में कुआँ है। गृहात् दक्षिणाहि गतः = घर से दक्षिण विशा में गढ्ढा है।

(२१) ऋते (विना) के योग में पञ्चमी तथा द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे :—ज्ञानात् ऋते वा ज्ञानमृते न मुक्तिः = ज्ञान के विना मुक्ति नहीं होती।

(२२) पृथक्, विना और नाना (विना) शब्दों के योग में द्वितीया, तृतीया तथा पञ्चमी कोई विभक्ति आ सकती है। जैसे :—ग्रामं ग्रामेण ग्रामात् वा पृथक् = गांव से अलग। श्रमं विना, श्रमेण विना, श्रमात् विना = परिश्रम के विना। धर्मं नाना, धर्मेण नाना, धर्मात् नाना = धर्म के विना।

(२३) स्तोक (थोड़ा), अल्प (थोड़ा), कृच्छ्र (कठिनता, मुश्किल), कतिपय शब्दों के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है, जैसे :—स्तोकात् स्तोकेन वा मुक्तः—बहुत थोड़े से ही बचा।

(२४) 'किसी के बदले में' अथवा 'प्रतिनिधि' अर्थ का वाचक जो

'प्रति' उपसर्ग है, उसके योग में जिसके बदले में कोई वस्तु दी जाती है या जिसका 'प्रतिनिधित्व' दिखाया जाता है, उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसेः—तण्डुलेभ्यः प्रतियच्छति गोधूमान्=चावलों के बदले गेहूँ देता है। प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति=प्रद्युम्न श्रीकृष्ण के प्रतिनिधि हैं।

अभ्यास

(क) अपादान किसे कहते हैं? अपादान में कौन विभक्ति होती है?

(ख) नीचे लिखे शब्दों के योग से वाक्य बनाओः—
बहिः, प्रभृति, आ, अन्य, कृच्छ्र, उत्तराहि, ऋते, आरात्।

(ग) नीचे के वाक्यों में पञ्चमी विभक्ति होने के कारण बताओ? ग्रामात् आयाति। दुःखात् रोदिति। धर्मात् प्रमाद्यति। मित्रात् अन्यः कः रक्षेत्। आजन्मनः सत्यं कथय। पापात् बिभेति। उद्यमात् पराजयते। अधर्मात् दुःखं जायते। विरम्यतां कलहात्। धनात् धर्मः श्रेयान्। कुतो भवान्? काशीनगरात्। तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्।

(घ) नीचे के वाक्यों को कारण दिखलाते हुये शुद्ध करोः—श्वसुरेण जिह्रेति। अनेन अतिरिक्तं किमपि नास्ति। एकस्य वर्षस्य ऊर्ध्वम् स आगमिष्यति। उत्तरः ग्रामस्य गङ्गा अस्ति। धनेन विद्या गरीयसी। तस्य ऋते अहं न गमिष्यामि। गोधूमैः प्रतियच्छ यवान्। गुरुणा शास्त्रं पठति। पाटलिपुत्रेण काशी पञ्च क्रोशाः। पापे जुगुप्सन्ते सज्जनाः।

पाठ ७

सप्तमी—अधिकरण

(१) कर्त्ता की क्रिया का जो आधार अर्थात् कर्त्ता की क्रिया जिस स्थान पर या जिस समय में हो उसको 'अधिकरण' कहते हैं और अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है।

आधार तीन प्रकार के होते हैं। औपश्लेषिक, वैषयिक, अभिव्यापक। औपश्लेषिक आधार से 'पर' अर्थ का बोध होता है। वैषयिक आधार से

'विषय में' इस अर्थ का बोध होता है और अभिव्यापक आधार से 'प्रत्येक में' इस अर्थ का बोध होता है। जैसे, औपश्लेषिक :—कटे आस्ते = (कटस्य एकदेशे इत्यर्थः)=चटाई पर बैठा है। वैषयिक :—मोक्षे इच्छा अस्ति =(मोक्षविषये इत्यर्थः) = मोक्ष के विषय में इच्छा है। अभि-व्यापक :—तिलेषु तैलम् अस्ति = प्रत्येक तिल में तेल है।

(२) जब किसी समान जाति (एक तरह की चीज) के समुदाय में किसी विशेषण द्वारा एक की विशेषता दिखलायी जाती है, तब समुदाय-वाचक शब्द में षष्ठी या सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे :—छात्राणां विनयः सुशीलः अथवा छात्रेषु विनयः सुशीलः = छात्रों में विनय सुशील है। कवीनां कविषु वा कालिदासः श्रेष्ठः = कवियों में कालिदास श्रेष्ठ हैं।

(३) निक्षेप (फेंकना) अर्थवाले (क्षिप्, मुच्, अस्) धातुओं के योग में जिस पर निक्षेप किया जाय उसमें सप्तमी विभक्ति होती है, जैसे :—हरिणशावकेषु शरान् मुञ्चति। = हरिण के बच्चों पर बाण छोड़ता है।

(४) वृत् (बर्ताव करना), व्यवहृ (व्यवहार करना) अर्थवाले धातुओं के योग में जिसके प्रति व्यवहार या बर्ताव किया जाय, उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे :—प्रियवत्स ! गुरुजनेषु विनयेन वर्तताम्=हे प्रियवत्स ! गुरुजनों के प्रति विनयपूर्वक बर्ताव करो। कथं मातरि अपि एवं शाठ्येन व्यवहरसि ? = ओह, क्या माता के प्रति भी इस प्रकार शठतापूर्वक व्यवहार करता है ?

(५) स्नेह, अभिलाष, अनुराग, आसक्ति इत्यादि अर्थ वाले धातुओं (स्निह्, अभि + लष्, अनुरञ्ज, आसञ्ज, रम्) के योग में जिस पर स्नेह आदि प्रदर्शित किये जांय उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे :—किं नु खलु बालेऽस्मिन् स्निह्यति मे मनः = मेरा मन इस लड़के में क्यों स्नेह करता है ?। मोक्षे तस्य अभिलाषः अस्ति=मोक्ष में उसका अभिलाष है। धर्मे तस्य अनुरागं दृष्ट्वा मनः प्रसीदति=धर्म में उसका अनुराग देखकर मन प्रसन्न होता है। विषयेषु आसक्तिः न शोभना = विषयों

में आसक्ति अच्छी नहीं। न तेषु रमते बुधः = ज्ञानी उनमें रमण नहीं करता।

(६) निपूर्वक युज् (नियुक्त करना, लगाना) के साथ तथा उस (युज्) से प्रत्यय द्वारा निष्पन्न शब्दों के साथ जिस विषय में नियुक्त किया जाय उस में सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे:—कथं माम् अस्मिन् पापकर्मणि नियुङ्क्ते भवान् = क्यों मुझे आप इस पाप कर्म में लगाते हैं ?

(७) 'विश्वास' अर्थवाले धातुओं तथा शब्दों के योग में जिस पर विश्वास किया जाय उस में प्रायः सप्तमी विभक्ति होती है; जैसे:—असत्यवादिनि कोऽपि न विश्वसिति = मिथ्याभाषी में कोई विश्वास नहीं करता। अस्मिन् दुर्जने कथं तवैवं विश्वासः। इस दुष्ट में तेरा ऐसा विश्वास कैसे हुआ ?

(८) जिस निमित्त या प्रयोजन से कोई क्रिया की जाती है, उस निमित्त या प्रयोजनवाची शब्द को यदि उस क्रिया के कर्म से सम्बन्ध हो तो उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे :—

चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्।
केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः॥

लोग चमड़े के लिये बाघ, दांत के लिये हाथी, केश के लिये चमरी (एक प्रकार की जंगली गाय) और अण्डकोश (जिस में कस्तूरी रहती है) के लिये कस्तूरीमृग को मारते हैं। ऊपर के उदाहरणों में हनन (मारना) क्रिया के चर्म, दन्त, केश, सीमन् ये क्रमशः प्रयोजन हैं। ये प्रयोजनवाची शब्द 'हन्ति' क्रिया के कर्म 'द्वीपिनम्' 'कुञ्जरम्' 'चमरीम्' 'पुष्कलकः' के सम्बन्धी हैं इसलिये इन में सप्तमी विभक्ति हुई।

(९) समय अथवा मार्ग के अन्तर जनानेवाले जो शब्द हैं उनमें पञ्चमी या सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे:—अद्य दिने भुक्त्वा अयं द्र्यहात् द्र्यहे वा भोक्ष्यते=आज खाकर वह फिर दो दिन बाद खायगा। अत्रैव स्थित्वा अयं क्रोशे क्रोशात् वा लक्ष्यं विध्येत् = यहां ही खड़ा हो कर यह एक कोश की दूरी पर स्थित लक्ष्य का वेध कर सकता है।

(१०) इनिसहित क्तप्रत्यय जैसे :—'अधीतिन्' 'गृहीतिन्' आदि के प्रयोग में उनके कर्म में सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे :—अधीती व्याकरणे = व्याकरण में पारदर्शी है। गृहीती षट्सु अङ्गेषु = छे वेदाङ्गों का अधिकारी है।

(११) साधु, असाधु शब्द के योग में जिस के प्रति साधुता या असाधुता दिखलायी जाय उस में सप्तमी विभक्ति होती है, जैसे :—कृष्णः मातरि साधुः, मातुले असाधुः = कृष्ण माता के प्रति अच्छे और मामा के प्रति बुरे थे।

(१२) प्रसित (अत्यन्त इच्छुक) उत्सुक (अत्यन्त इच्छुक) शब्दों के योग में जिस विषय में अत्यन्त इच्छुकता हो तद्वाची शब्द में तृतीया या सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे :—छात्रः विद्यायां विद्यया या प्रसितः उत्सुको वा = विद्यार्थी विद्या में अत्यन्त इच्छुक है।

(१३) दूर के अर्थवाले तथा अन्तिक (निकट) के अर्थवाले शब्दों में द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी या सप्तमी में से कोई विभक्ति होती है; जैसेः—दूरम्, दूरेण, दूरात्, दूरे वा गृहस्य। अन्तिकम्, अन्तिकेन, अन्तिकात्, अन्तिके वा ग्रामस्य।

(१४) स्वामिन्, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षिन्, प्रतिभू, प्रसूत शब्दों के योग में जिस के प्रति स्वामित्व आदि का बोध हो उस में सप्तमी और षष्ठी विभक्ति होती हैं, जैसेः—मनुष्याणां मनुष्येषु वा स्वामी= मनुष्यों का मालिक। देवानां देवेषु वा अधिपतिः। यदूनां यदुषु वा दायादः। स्त्रियाः स्त्रियां वा प्रसूतः = स्त्री में पैदा हुआ।

(१५) संलग्न, कटिबद्ध, व्यापृत, आसक्त, व्यग्र, तत्पर, व्यस्त इत्यादि शब्दों के योग में जिस विषय में संलग्नता आदि हो उस में सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे :—गृहकार्ये संलग्नः, कटिबद्धः, व्यापृतः, आसक्तः, व्यग्रः, तत्परः, व्यस्तः अस्ति = घर के कामों में संलग्न है।

(१६) कुशल, निपुण, पटु, प्रवीण, शौण्ड, पण्डित आदि 'चतुर' के अर्थबोधक शब्दों के योग में तथा धूर्त्त, कितव, (ठग, बदमाश) अर्थवाले

शब्दों के योग में जिस वस्तु के विषय में कुशलता आदि हो उनमें सप्तमी विभक्ति होती है; जैसे :—सः व्यवहारे कुशलः, निपुणः, पटुः, प्रवीणः, शौण्डः, पण्डितः, चतुरः = वह व्यवहार में कुशल है। स व्यवहारे धूर्तः, शठः, कितवः = वह व्यवहार में ठग है।

(१७) जिस क्रिया के काल से दूसरी क्रिया का काल निरूपित होता है उस क्रिया तथा उसके कर्त्ता में सप्तमी विभक्ति होती है। दोनों क्रियाओं का भिन्न भिन्न कर्त्ता होना चाहिये। जैसेः—सूर्ये उदिते कृष्णः प्रस्थितः= सूर्य उगने पर कृष्ण ने प्रस्थान किया। यहाँ सूर्य की उदय क्रिया से कृष्ण की प्रस्थान क्रिया का काल निश्चित होता है अर्थात् कृष्ण ने कब प्रस्थान किया ? सूर्य के उदय होने पर, ऐसा निश्चय होता है इसलिये 'उदित' क्रिया तथा उसके कर्त्ता 'सूर्य में' सप्तमी विभक्ति हुई। दोनों क्रियाओं के कर्त्ता दो हैं जैसे :—'उदित' के सूर्य और 'प्रस्थित' के कृष्ण।

(१८) क्रिया द्वारा यदि अनादर प्रकट हो तो ऊपर बतलाये हुए भाव सप्तमी के स्थान में जिसका अनादर सूचित हो उसमें सप्तमी और षष्ठी दोनों विभक्ति होती हैं। जैसे :—रुदति पुत्रे, रुदतः पुत्रस्य वा पिता जगाम = रोते पुत्र को छोड़कर पिता चला गया।

अभ्यास

(क) अधिकरण किसे कहते हैं ? अधिकरण में कौन विभक्ति होती है ?

(ख) आधार कितने प्रकार के हैं ? उनसे किस २ अर्थ का बोध होता है ? प्रत्येक का उदाहरण देकर समझाओ।

(ग) नीचे लिखे शब्दों के योग में कौन विभक्ति आती है ? प्रत्येक के योग से एक एक वाक्य बनाकर बताओ :—

स्नेह, विश्वास, अभिलाष, साक्षिन् , उत्सुक, प्रवीण, साधु।

(घ) नीचे के वाक्यों में सप्तमी विभक्ति होने के कारण बताओ :—

तस्मिन् स्निह्यति मे मनः। मनुष्याणां मनुष्येषु ब्राह्मणः श्रेष्ठः। अतिथौ साधुः। त्रिषु लोकेषु विख्यातः। मयि लल ललने ! यथासुखम्। न्यायशास्त्रे

पठिती। रामे गते दशरथः मृतः। चर्मणि द्वीपिनं हन्ति। आश्रमहरिणेषु बाणान् निक्षिपसि ? मयि विश्वसिहि प्रिये ! अद्य पठित्वा त्र्यहे त्र्यहात् वा पठिष्यति प्रासादे आस्ते। स्थाल्यां पचति।

(ङ) कारण दिखाते हुए शुद्ध करो :—

दण्डेन मम शिरः ताडितवान्। अहम् धर्माय उत्सुकः। प्रचारस्य साधुः पाटलिपुत्रात् पञ्चानां क्रोशानां वर्तते। मम गते त्वं सर्वं करिष्यसि। दन्ताय गजं हन्ति। माता पुत्रं स्निह्यति। मम कथनं न विश्वसिति। पश्यता गृध्रेण रावणः सीता जहार। मृगाय शरान् त्वं क्षिपसि। स न्यायस्य निपुणः। अहम् व्याकरणम् अधीती।

पाठ ८

षष्ठी–सम्बन्ध

कारक प्रकरण के प्रारम्भ में ही यह बतलाया जा चुका है कि षष्ठी 'सम्बन्ध' कारक नहीं है। यह (सम्बन्ध) केवल एक संज्ञा का दूसरी संज्ञा के साथ सम्बन्ध प्रकट करता है इसी लिये इसका नाम भी सम्बन्ध पड़ गया। जैसे :—नृपस्य कुमारः = राजा का पुत्र। यहाँ 'नृपस्य' की षष्ठी विभक्ति केवल 'नृप' और 'कुमार' इन दोनों संज्ञाओं के बीच का जन्यजनकभाव रूप (पिता-पुत्र भाव) सम्बन्ध मात्र प्रकट करती है और कुछ नहीं। इसी लिये कारक के बाद यहाँ इसका प्रकरण रखा गया है। अब नीचे किन-किन अवस्थाओं में षष्ठी एक संज्ञा के साथ दूसरी संज्ञा का सम्बन्ध प्रकट करती है यह बतलाया जाता है।

(१) उपर्युक्त कारकों से बोधित सम्बन्धविशेषों के अतिरिक्त किसी भी सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा :—मम पुत्रः = (पिता-पुत्र सम्बन्ध) मेरा लड़का। वृक्षस्य पत्रम् = (अवयव और अवयविभाव सम्बन्ध) पेड़ का पत्ता। रामस्य पुस्तकम् = (स्व–स्वामिभाव सम्बन्ध) राम की पुस्तक। गङ्गायाः तटम् = (संयोग सम्बन्ध) आदि।

(क) बहुत स्थलों में सबन्ध की जगह षष्ठी तत्पुरुष समास हो जाता है और एक साथ समस्त पद का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—मम पुस्तकम् अथवा मत्पुस्तकम् , दशरथस्य पुत्रः अथवा दशरथपुत्रः आदि ।

(ख) यह ध्यान रखना चाहिये कि जहां विशेषण तथा सामानाधिकरण्य का अर्थ प्रकट करना होता है वहां संस्कृत में सम्बन्ध (षष्ठी) का प्रयोग करने से काम नहीं चलता । वहां समस्त पद ही का प्रयोग होता है अथवा तद्धित प्रत्यय से बने हुए विशेषणपद का, जैसे :—विशेषण-विशेष्यभाव सम्बन्ध—रजतमुद्रा अथवा राजती मुद्रा, हेमपात्रम् अथवा हैमं पात्रम्, मृद्भाण्डम् अथवा मृण्मयं भाण्डम् । इन स्थलों में रजतस्य मुद्रा, हेम्नः पात्रम् , मृदः भाण्डम् ये प्रयोग कदापि नहीं होते, ये प्रयोग अशुद्ध हो जायेंगे । इन प्रयोगों के समस्त पदों में विशेषण–विशेष्यभाव सम्बन्ध है । जैसे :—रजत–विशेषण मुद्रा-विशेष्य, हेम–विशेषण पात्र-विशेष्य, मृद्–विशेषण और भाण्ड विशेष्य । सामानाधिकरण्य सम्बन्धः—काशी नगरी, मुम्बा पुरी, आश्विने मासे अथवा आश्विनमासे । इन स्थलों में काश्याः नगरी, मुम्बायाः पुरी, आश्विनस्य मासे ऐसे प्रयोग कभी नहीं होते । इन प्रयोगों के पदों में परस्पर सामानाधिकरण्य सम्बन्ध है ।

(२) कृत् प्रत्ययों के योग में कर्त्ता और कर्म में षष्ठी होती है । जैसे कर्त्ता में षष्ठीः–छात्रस्य पठनम्=छात्र का अध्ययन। घटिकायाः गतिः= घड़ी की चाल। मम पिपासा=मेरी प्यास । कर्म में षष्ठीः—तण्डुलस्य पाकः = चावल का पाक । सुखस्य भोगः = सुख का भोग ।

(३) जहां सकर्मक धातु से कृत् प्रत्यय हो तथा कर्त्ता, कर्म दोनों के वर्त्तमान रहने के कारण दोनों में षष्ठी विभक्ति की प्राप्ति हो वहां कर्त्ता में नहीं; किन्तु कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है; जैसे :—धनस्य लुण्ठनं लुण्ठकेन = लुटेरे का धन लूटना । पयसः पानम् बालेन = लड़के का दूध पीना । वस्त्रस्य दानं धनिना = धनी का वस्त्र देना ।

(४) कभी-कभी कर्त्ता में भी विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है; जैसे:— विचित्रा जगतः कृतिः हरेः–हरिणा वा । शब्दानाम् अनुशासन-माचार्येण, आचार्यस्य वा ।

(५) कभी-कभी कर्म आदि कारकों के स्थान में भी षष्ठी विभक्ति हो जाती है। उसे 'विवक्षया षष्ठी' अर्थात् वक्ता की इच्छा से की हुई षष्ठी कहते हैं। मोदकानां तृप्तः, सतां मतम् , मातुः स्मरति, भजे शम्भोश्चरणयोः आदि।

(६) दूर के अर्थवाले और अन्तिक (निकट) के अर्थवाले शब्दों के योग में षष्ठी और पञ्चमी दोनों विभक्ति होती है। जैसेः—दूरं गृहस्य गृहात् वा = घर से दूर। अन्तिकं विद्यालयस्य विद्यालयाद् वा = विद्यालय के समीप।

(७) शतृ, शानच्, क्वसु, कानच् , स्यतृ, स्यमान, उ, उक, क्त्वा, ल्यप् , तुम् , ण्वुल् , क्त, क्तवतु, खलर्थ (सु, दुः और ईषत् उपपद में जो सब कृत्प्रत्यय होते हैं) और तृन् इन प्रत्ययों से बने शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति नहीं होती है। जैसे, शतृ :—पुस्तकं पठन् = पुस्तक पढ़ता हुआ। उः—जलं पिपासुः = पानी पीने की इच्छा वाला। तुम्ः—ग्रामं गन्तुम् = गांव जाने के लिए। क्त्वाः—कौतुकं दृष्ट्वा = तमाशा देख कर। ल्यप्ः—पितरं प्रणम्य = पिता को प्रणाम कर। क्तः—मया पुस्तकं पठितम् = मैंने किताब पढ़ी। क्तवतु :—स ग्रामं गतवान् = वह गांव को गया। किन्तु शतृप्रत्ययान्त द्विष् (द्वेष करना) धातु के कर्म में द्वितीया और षष्ठी दोनों होती हैं। जैसे :—दुष्टं दुष्टस्य वा द्विषन् = दुष्ट से द्वेष करते हुये।

(८) जहां वर्तमान काल में क्त प्रत्यय हो उसके योग में कर्त्ता में षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे :—विदुषां पूजितः विद्वानों से पूजित। लोकानां मतः = लोगों से सम्मानित। पण्डितानां विदितः = पण्डितों से विदित आदि।

(९) अधिकरण कारक के अर्थ में जहाँ क्त प्रत्यय हो उसके योग में कर्त्ता में षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे :—इदम् एषामासितम् = यहाँ ये बैठते थे। इदमेषां शयितम् = यहां ये सोते थे।

(१०) जहां भाववाच्य में क्त प्रत्यय हुआ हो वहाँ कर्त्ता में तृतीया

और षष्ठी दोनों विभक्ति होती हैं। जैसे :—बालकस्य, बालकेन वा हसितम् =लड़का हंसा। मम, मया वा स्थितम्=मैं ठहरा। तव, त्वया वा स्नातम् =तू नहाया।

(११) तव्य, अनीय, ण्यत्, यत्, क्यप्, इन कृत्य प्रत्ययों के योग में कर्त्ता में तृतीया और षष्ठी विभक्ति होती हैं। जैसे:-रामेण, रामस्य वा पुस्तकं पाठ्यम्=राम को पुस्तक पढ़नी चाहिये। मया, मम वा काशी गन्तव्या =मुझे काशी जाना चाहिये। त्वया, तव वा दर्शनीय उत्सवः=तुझे उत्सव देखना चाहिये। जनेन जनस्य वा धनं लभ्यम्= आदमी को धन पाना चाहिये।

(१२) तुल्यार्थवाची शब्दों के योग में तृतीया और षष्ठी दोनों विभक्ति होती हैं। जैसे :—कृष्णेन, कृष्णस्य वा तुल्यः =कृष्ण के समान। प्राणैः, प्राणानां वा समः=प्राणों के समान। रामेण, रामस्य वा सदृशः = राम के समान। परन्तु 'तुला' और 'उपमा' के योग में केवल षष्ठी होती है, तृतीया नहीं होती, जैसे :—तुला, उपमा वा रामस्य नास्ति।

(१३) स्मरण करना अर्थवाले धातु, दय् (दया करना) ईश् (शासन करना) के कर्म में द्वितीया और षष्ठी दोनों विभक्ति होती हैं। जैसे :—माता पुत्रस्य, पुत्रं वा स्मरति=माता पुत्र को याद करती है। बलवान् निर्बलस्य, निर्बलं वा दयते=बलवान निर्बल पर दया करता है। शिक्षकः शिष्यस्य, शिष्यं वा ईष्टे = अध्यापक शिष्य पर शासन करता है।

(१४) हिंसा (मारना) अर्थ का बोध हो तो जास, नि और प्र पूर्वक हन्, नाट, क्राथ्, पिष् धातु के कर्म में षष्ठी होती है। जैसे :—रामः राक्षसस्य उज्जासयति, निहन्ति, निप्रहन्ति, प्रणिहन्ति, प्रहन्ति, उन्नाटयति, क्राथयति, पिनष्टि वा = राम राक्षस को मारता है।

(१५) दिशावाची अतस्, आत्, अस्, अस्तात्, रि, रिष्टात्, प्रत्ययान्त शब्दों के योग में जिसको लक्षित करके दिशा बतायी जाय उसमें षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे:—गृहस्य उत्तरतः, उत्तरात्, पुरः पुरस्तात्, उपरि, उपरिष्टात्=घर के उत्तर, आगे, ऊपर आदि।

(१६) एनप् प्रत्ययान्त शब्दों के योग में षष्ठी और द्वितीया होती हैं, जैसे :—दक्षिणेन विद्यालयस्य विद्यालयं वा क्षेत्रम् = स्कूल के दक्षिण मैदान है।

(१७) आशीर्वाद देने के अर्थ में आयुष्य, भद्र, मद्र, कुशल, सुख, अर्थ और हित शब्दों के योग में जिसके प्रति आशीर्वाद आदि किये जायँ उसमें षष्ठी और चतुर्थी विभक्ति होती हैं। जैसेः—तव, तुभ्यं वा आयुष्यं भूयात् = तू चिरञ्जीवी हो। कृष्णस्य, कृष्णाय वा कुशलं, हितं, मद्रं, भद्रं वा भूयात् = कृष्ण का कुशल आदि होवे।

(१८) तृप्ति (सन्तुष्टि) अर्थ वाले धातुओं के योग में तृतीया और षष्ठी दोनों होती हैं। जैसेः—भोगैः, भोगानां वा न तृप्यन्ति जनाः = लोग भोग से तृप्त नहीं होते।

(१९) हेतु शब्द के प्रयोग में प्रयोजन या कारण बतलाने वाला जो शब्द है उसमें तथा हेतु शब्द दोनों में षष्ठी विभक्ति हो जाती है। जैसेः— धनस्य हेतोः तत्र गच्छति = धन के कारण वहाँ जाता है। यदि प्रयोजन या कारण का बोधक शब्द सर्वनाम हो तो उसके तथा हेतु शब्द दोनों के आगे षष्ठी और तृतीया दोनों विभक्ति होती है। जैसे :—कस्य हेतोः, केन हेतुना वा स गच्छति ? = किस लिये वह जाता है ?

(२०) 'बार' या 'मरतबा' अर्थ वाले कृत्वसुच् और सुच् प्रत्ययों से बने हुए जैसे, द्विः, त्रिः, पञ्चकृत्वः, सप्तकृत्वः आदि क्रियाविशेषण अव्ययों के योग में कालवाचक शब्द के बाद षष्ठी और पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसेः—द्विरह्नो भोजनम्=दिन में दो बार भोजन। पञ्चकृत्वः दिवसस्य स्नामि = दिन में पाँच बार नहाता हूँ। शतकृत्वः मासस्य आगच्छति= महीने में सौ बार आता है।

(२१) कृते–(लिये, वास्ते) 'समक्षम्'–सामने, मध्ये (बीच) पार, अन्त, अवसान, समाप्ति आदि शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे :—तव कृते=तेरे लिये। धर्मस्य कृते = धर्म के लिये। ईश्वरस्य समक्षम् = ईश्वर के सामने। मार्गस्य मध्ये=राह के बीच में। समुद्रस्य

पारम् = समुद्र का पार। दुःखस्य अन्ते= दुःख के अन्त में। कार्यस्य अवसाने, समाप्तौ = कार्य की समाप्ति होने पर।

(२२) 'सौदा का लेन देन करना' या 'जुआ में लगा देना' इन अर्थों का बोध कराने वाले 'व्यवहृ' और 'पण्' धातु के योग में जिस वस्तु के द्वारा व्यवहार किया जाय या जिस वस्तु की बाजी लगायी जाय उसमें षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे:—सहस्रस्य व्यवहरति, पणते वा=हजारों का लेन देन करता है या बाजी लगाता है। परन्तु 'पण्' के योग में द्वितीया का भी व्यवहार मिलता है। जैसे :—पणस्व कृष्णां पाञ्चालीम् = द्रौपदी की बाजी लगा दो।

(२३) जब 'दिव्' धातु भी इसी अर्थ में आता है तब, इसके कर्म में भी षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे :—शतस्य दीव्यति=सौ की बाजी लगाता है। परन्तु उपसर्ग पूर्वक रहने पर षष्ठी या द्वितीया कोई भी विभक्ति हो सकती है। जैसे :—शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति।

कारक के सम्बन्ध में कुछ सर्वसाधारण बातें

(क) कारक प्रकरण में जहां जिस कारक का प्रयोग बतलाया गया है वहां बोलने वाले की इच्छा से दूसरा कारक भी होता है। जैसे :— दरिद्राय दानं दीयते, दरिद्रे दीयते दानम्। असत्यवादिषु विश्वासो नैव कर्त्तव्यः, असत्यवादिनाम् विश्वासो नैव कर्त्तव्यः। गृहं गच्छामि, गृहाय गच्छामि, गृहे गच्छामि। गोपः गां दुग्धं दोग्धि, गोपः गोः दुग्धं दोग्धि। नृपात् वस्त्रं याचते, नृपं वस्त्रं याचते। पुत्राय क्रुध्यति, पुत्रे क्रुध्यति आदि।

(ख) क्रिया गम्यमान :—ऊह्य (Under Stood) रहने पर भी उस क्रिया के योग में होनेवाली कारकविभक्ति हो जाती है। जैसे :—कुतो भवान्? नद्याः = आप कहां से आये? नदी किनारे से। यहाँ 'आगतः' क्रिया गम्यमान (ऊह्य) है किन्तु उसी ऊह्य क्रिया का अपादान मान कर 'कुतः' और 'नद्याः' में पञ्चमी विभक्ति हो गई।

(ग) कारक प्रकरण के पढ़ने से अच्छी तरह मालूम हो गया होगा कि संस्कृत में अनेकों ऐसे अव्यय हैं जिनके योग में भिन्न-भिन्न विभक्तियाँ होती हैं। इन्हीं अव्यय विशेष के योग में हुई विभक्तियों को 'उपपद विभक्ति' कहते हैं। गृहं परितः, गणेशाय नमः, त्वामन्तरेण, ज्ञानादृते आदि इसके उदाहरण हैं। क्रिया के साथ सीधा सम्बन्ध विशेष रखने के कारण संज्ञा या सर्वनाम में जो विशेष-विशेष विभक्तियाँ होती हैं, उन्हें 'कारक विभक्ति' कहते हैं। ग्रामं गच्छति, दण्डेन ताडयति, मुक्तये भजति, ग्रामादायाति इसके उदाहरण हैं। अब यह बात समझ में आ गयी होगी कि उपपद विभक्ति और कारक विभक्ति दोनों परस्पर भिन्न हैं। कुछ ऐसे स्थल आते हैं जहां दोनों प्रकार की विभक्तियों की प्राप्ति रहती है। ऐसे स्थलों में उपपद विभक्ति नहीं होती किन्तु कारक विभक्ति ही प्रयोग में आती है; जैसे :—मुनित्रयं नमस्कृत्य=मुनित्रय को नमस्कार करके। यहां 'मुनित्रय' में 'नमस्' इस अव्यय के योग में 'चतुर्थी' विभक्ति प्राप्त है तथा 'नमस्कृत्य' इसके योग में 'मुनित्रय' को कर्म होने के कारण द्वितीया विभक्ति भी प्राप्त है किन्तु उपपद विभक्ति (चतुर्थी) को बाध कर कारक विभक्ति (द्वितीया) ही होती है। इस प्रकार के अन्य उदाहरणों में भी यही प्रकार समझना चाहिये।

(घ) क्रिया के होने की दशा में जिन कारकों का विधान है, क्रिया के निषेध की दशा में भी वे ही कारक होते हैं। जैसे :—सः पुस्तकं पठति= वह पुस्तक पढ़ता है। यह क्रिया के होने की अवस्था है। सः पुस्तकं न पठति=वह पुस्तक नहीं पढ़ता है। यह क्रिया के निषेध की अवस्था है। इन दोनों दशाओं में 'पठति' के कर्म में 'द्वितीया' विभक्ति ही होती है।

अभ्यास

(क) षष्ठी को सम्बन्ध क्यों कहते हैं ? सम्बन्ध कारक क्यों नहीं होता ? स्पष्ट करो।

(ख) नीचे की क्रियाओं में प्रत्येक से कर्त्ता, कर्म जोड़कर वाक्य बनाओः— द्वेष्टि, पूजितः, शयितम्, पठनीयम्, दयन्ते, निहन्ति।

(ग) नीचे के वाक्यों में षष्ठी विभक्ति होने के कारण बताओ :—

विद्यालयस्य भृत्यः। शिशोः शयनम्। विषस्य पानम्। गुरोः प्रार्थना शिष्येण, शिष्यस्य वा। लोकानां मतः। इदं तेषां शयितम्। त्वया, तव वा स्थितम्। दरिद्रस्य, दरिद्रं वा दयस्व। रामः लुण्ठकस्य उज्जासयति। नगरस्य, नगरात् वा दूरम्। कस्य हेतोः।

(घ) कारण बतलाते हुए नीचे के वाक्यों को शुद्ध करो :—

अश्वेन गतिः। आम् बुभुक्षा। कार्यस्य कुर्वन्तः। फलस्य खादित्वा। गृहस्य गतवान्। पुस्तकस्य पठितुम्। पुत्रः मातरं स्मरति। स चौरं पिनष्टि। ग्रामात् दक्षिणात्। गृहेण पुरस्तात्। कृष्णात् तुल्यः कश्चित् नास्ति। पञ्चकृत्वः दिने भुङ्क्ते। ग्रामेण अन्तिकम्। कस्य हेतुना आयातः। शतेन, सहस्रेण वा पणस्व।

अध्याय ८

पाठ ७

क्रिया

वाक्य के प्रधान दो मूल तत्त्वों में एक क्रिया भी है। क्रिया के बिना कोई वाक्य नहीं हो सकता है। क्रिया को प्रत्यक्ष या ऊह्य रूप में वाक्य में अवश्य रहना चाहिये। चाहे कितने भी शब्द, क्रमबद्धरूप में ही क्यों न इकट्ठे कर दिये जायँ, पर जब तक उनके साथ क्रिया प्रत्यक्ष या ऊह्यरूप में नहीं आवेगी तब तक उनसे कोई अभिप्राय सूचित नहीं हो सकता। जब तक कोई पूरा-पूरा अभिप्राय नहीं सूचित होगा, तब तक उसे वाक्य या रचना नहीं कह सकते। अधिक क्या ? क्रिया के बिना लोगों का वाग्व्यवहार ही पङ्गु हो जायेगा। इसलिये क्रिया के विषय में मुख्यरूप से विचार करना रचना शास्त्र का अनिवार्य अङ्ग है। जिस प्रकार लोक की चेतना (जीवनशक्ति) क्रिया से ही परिलक्षित होती है, उसी प्रकार किसी वाक्य, रचना अथवा वाग्व्यवहार की चेतना क्रिया ही है। क्रिया के बिना सब प्राणशून्य हैं। नीचे क्रिया के विषय में विचार किया जाता है :—

क्रिया :—धातु के अर्थ को क्रिया कहते हैं।

धातुः—क्रियावाचक प्रकृति को 'धातु' कहते हैं। जैसे : भू, गम्, पठ्, श्रु, खाद्, दृश् आदि। अर्थात् क्रियाओं के मूल कारण धातु हैं। उन धातुओं से ही अनन्त क्रियाओं का निर्माण होता है। संस्कृत व्याकरण में क्रियाओं के मूल कारण उन धातुओं को रूपों की व्यवस्था के लिये दश गणों में बांट दिया गया है। वे हैं–भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि और चुरादि।

इन मूल धातुओं से भिन्न-भिन्न काल तथा वृत्तियों (अवस्थाओं, अर्थों) के लिये भिन्न-भिन्न अनेक रूप बनते हैं। उनके लिये संस्कृत में पारिभाषिक

ाब्द लकार हैं। ये दश–१० लकार होते हैं। जैसे :—लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ्। इन लकारों से काल (Tense) तथा वृत्तियां (Mood) दोनों का काम चलता है। लिट् लकार के दो भेद हैं :—विधिलिङ् और आशीर्लिङ्। इनमें पांचवाँ लेट्' लकार का प्रयोग केवल वेद में ही होता है। इस पुस्तक में दशम तथा एकादश वर्ग के छात्रों को दृष्टि में रखते हुए उनके संस्कृत पाठ्यक्रम के अनुसार केवल लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् तथा लृट् के विषय में ही विचार किया जाता है।

ऊपर संस्कृत धातुओं के जिन दश गणों की चर्चा की गयी है वे गण दो भागों में बँटे हैं। प्रथम भाग और द्वितीय भाग। प्रथम भाग में भ्वादि, दिवादि, तुदादि और चुरादि ये चार हैं तथा द्वितीय भाग में अदादि, जुहोत्यादि, स्वादि, रुधादि, तनादि और क्र्यादि ये छे हैं।

धातुओं से वाग्व्यवहार के अनुकूल क्रियापद बनाने के लिये धातु के आगे आये हुए लकारों के स्थान में पुरुष तथा वचन के अनुसार भिन्न-भिन्न विभक्तियां होती हैं। ये विभक्तियां 'परस्मैपद' और 'आत्मनेपद' दो प्रकार की होती हैं और 'तिङ्' विभक्ति कहलाती हैं तथा इनके योग से बने शब्द 'तिङन्त क्रियापद' कहलाते हैं। क्त, क्तवतु, तव्य, अनीय आदि प्रत्ययों के योग से बने जो क्रियापद होते हैं उन्हें 'कृदन्तीय क्रियापद' कहते हैं। इनकी चर्चा 'कृदन्त' में होगी। कुछ धातुओं में केवल परस्मैपद की विभक्तियां लगती हैं, कुछ में केवल आत्मनेपद की तथा कुछ में परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों की। केवल परस्मैपद की विभक्तिवाले धातु 'परस्मैपदी' और केवल आत्मनेपद की विभक्तिवाले धातु 'आत्मनेपदी' तथा दोनों पद की विभक्तिवाले धातु 'उभयपदी' कहलाते हैं। कभी-कभी उपसर्ग के योग से अर्थभेद के कारण भी धातु के पद बदल जाते हैं। जैसे, परस्मैपदी :—पठति (पठ + ति), आत्मनेपद :—एधते (एध् + ते), उभयपदी :—यजति, यजते वा (यज् + ति, ते), उपसर्ग योग से अर्थभेद के कारण—जयति महाराजः। राजा शत्रून् पराजयते। यहाँ परस्मैपदी 'जि' धातु 'परा' उपसर्ग के योगके कारण 'हराना' अर्थ में आत्मनेपदी हो गया।

भाववाच्य तथा कर्मवाच्य में सब परस्मैपदी धातु आत्मनेपदी हो जाते हैं
जैसे :—पठ्यते, गम्यते, दृश्यते, भूयते आदि । इनमें सब धातु परस्मैप
हैं; किन्तु कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में हो जाने के कारण ये आत्मनेप
हो गये । वाच्य के विषय में विशेष बातें आगे वाच्य प्रकरण में बतला
जायेंगी ।

तिङ् विभक्तियां

छात्रों की सुविधा के लिये दोनों प्रकार (परस्मैपद और आत्मनेपद
की विभक्तियों की उपर्युक्त आवश्यक लकार (लट्, लोट्, लङ् , विधिलि
लृट्) सम्बन्धी आकृतियां दी जाती हैं :—

परस्मैपद				लट्	आत्मनेपद	
पु०	एक०	द्वि०	ब०	एकव०	द्वि	बहु०
प्र० पु०	ति	तः	अन्ति	ते	इते (आते)	अन्ते (अते)
म० पु०	सि	थः	थ	से	इथे (आथे)	ध्वे
उ० पु०	मि	वः	मः	इ (ए)	वहे	महे

लोट्

प्र० पु०	तु	ताम्	अन्तु	ताम्	इताम् (आताम्)	अन्ताम् (अताम्
म० पु०	हि(०)	तम्	त	स्व	इथाम् (आथाम्)	ध्वम्
उ० पु०	आनि	आव	आम	ऐ	आवहै	आमहै

लङ्

प्र. पु.	त्	ताम्	अन्	त	इताम् (आताम्)	अन्त (अत
म. पु.	:	तम्	त	थाः	इथाम् (आथाम्)	ध्वम्
उ. पु.	अम्	व	म	इ	वहि	महि

विधि लिङ्

प्र. पु.	इत् (यात्)	इताम् (याताम्)	इयुः (युः)	ईत	ईयाताम्	ईरन्
म. पु.	इः (याः)	इतम् (यातम्)	इत (यात)	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्व
उ. पु.	इयम् (याम्)	इव (याव)	इम (याम)	ईय	ईवहि	ईमहि

लृट्

पु.	स्यति	स्यतः	स्यन्ति	स्यते	स्येते	स्यन्ते
पु.	स्यसि	स्यथः	स्यथ	स्यसे	स्येथे	स्येध्वे
पु.	स्यामि	स्यावः	स्यामः	स्ये	स्यावहे	स्यामहे

अभ्यास

क) क्रिया किसे कहते हैं ?
ख) धातु किसे कहते हैं ?
ग) संस्कृत में धातु कितने गणों में बँटे हुए हैं ? उन गणों के नाम लिखो।
घ) तिङन्त क्रिया पद किसे कहते हैं ?
ङ) धातु कितने प्रकार के होते हैं ?
च) किस प्रकार के धातुओं में उभय पद का प्रयोग होता है।
छ) दोनों के पदों के प्रयोग में क्या अन्तर है ? उदाहरण के द्वारा बताओ।

पाठ २

भ्वादि

(१) लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्, चार लकारों में भ्वादिगण के
ातुओं के अन्त में विभक्ति के पूर्व 'अ' जोड़ दिया जाता है। जैसे :—
ठ् + अ + ति = पठति, पठ् + अ + तु = पठतु आदि ।

(२) यदि धातु के अन्त में जोड़े हुए अकार के बाद विभक्ति का अकार
हे तो धातु के अन्त में जोड़े हुये अकार का लोप हो जाता है। जैसे :—
ठ् + अ + अन्ति = पठन्ति, पठ् + अ + अन्तु = पठन्तु आदि ।

(३) उत्तमपुरुष के द्विवचन तथा बहुवचन में 'व' और 'म' विभक्ति
 परे रहने से धातु के अन्त में जोड़े हुए अकार का आकार हो जाता है।

जैसे—पठ् + अ + वः = पठावः, पठ् + अ + मः = पठामः, पठ् + अ +
व = पठाव, पठ् + अ + म = पठाम ।

(४) लोट् लकार के मध्यम पुरुष के एकवचन में 'हि' विभक्ति का
लोप हो जाता है ; जैसे :—पठ् + अ + हि = पठ, पत् + अ + हि = पत
गच्छ् + अ + हि = गच्छ आदि ।

(५) लङ् लकार में धातु के पूर्व 'अ' जोड़ दिया जाता है । जैसे :—
अपठत्, अपतत्, अखादत् आदि ।

(६) यदि धातु के पूर्व में कोई उपसर्ग रहे तो भी यह 'अ' उपस
के बाद और धातु के पहले ही जोड़ा जाता है । जैसेः—प्र + अ -
पतत् + प्रापतत्, आ + अपतत् = आपतत्, आ + अगच्छत् = आग
च्छत्, सम् + अगच्छत = समगच्छत, अनु + अपतत् = अन्व
तत् आदि ।

टिप्पणी—यहाँ २-६ तक के नियम भ्वादि, तुदादि, दिवादि, चुरा
चारों गणों के लिये सामान्य हैं ।

(७) लङ् लकार में धातु के पूर्व में जोड़े हुये अकार के बाद धातु
आदि के इ, ई, ए, का 'ऐ' उ, ऊ, ओ, का 'औ' और 'ऋ' का 'आर्'
जाता है । जैसे :—इष्-ऐच्छत्, ईक्ष-ऐक्षत, एध्-ऐधत, उख्-औख
ऊह्-औहत, ओख्-औखत्, ऋच्छ्-आर्च्छत् आदि ।

(८) लट्, लोट्, लङ्, लिङ् इन चारों लकारों में भ्वादिगणी
धातुओं के अन्त के इ का ए, उ का ओ, ऋ का अर् और ऌ का अल् गु
हो जाता है । जैसे :—जि + अ + ति = जयति, नी + अ + ति = नयी
प्लु + अ + ते = प्लुवते, भू + अ + ति = भवति, द्रु + अ + ति = द्रव
हृ + अ + ति = हरति ।

(९) यदि किसी भ्वादिगणीय धातु के उपधा में (अन्तिम वर्ण
पूर्व में) लघु स्वर अर्थात् ह्रस्व इ, उ, ऋ हों तो, उनका क्रमशः ए, अ
अर् गुण हो जाता है । जैसे :—सिध् + अ + ति = सेधति, नि + सिध्
अ + ति=निषेधति, शुच + अ + ति=शोचति,कृष् + अ + ति = कर्षति

(१०) उपर्युक्त नियमों के अनुकूल भ्वादिगणीय धातुओं के लट् आदि चार लकारों में परस्मैपदी धातु के परे परस्मैपद, आत्मनेपदी धातु के परे आत्मनेपद तथा उभयपदी धातु के परे दोनों प्रकार की विभक्तियाँ जोड़ कर यथेष्ट रूप बना लेना चाहिये।

लृट् (Future tense)

(११) इस लकार में अधिकतर छात्रों के उपयोगी तथा व्यवहार्य धातुओं में धातु और विभक्ति के मध्य में इट् (इ) हो जाता है। इट् होने पर तथा नहीं होने पर भी अ, आ से भिन्न किसी स्वर के बाद तथा कवर्ग अथवा र् के बाद षत्व विधान के अनुसार विभक्ति के 'स्य' का 'ष्य' हो जाता है। जैसे :—पठ् + इ + स्यति=पठिष्यति अट् + इ + स्यति=अटिष्यति आदि।

(१२) ऊपर आठ तथा नौ नम्बर में बताये नियम लृट् लकार में भी ज्यों के त्यों लागू होते हैं अर्थात् लट् आदि विभक्तियों की तरह लृट् में भी धातु के अन्त्य स्वर तथा उपधा के लघु स्वर का गुण हो जाता है। इकार का ए, उकार का ओ, ऋ का अर् और लृ का अल् गुण हो जाता है। जैसे :—जि–जे + स्य + ति=जेष्यति, नी–ने + स्यति=नेष्यति, द्रु—द्रो + इ + स्यति = द्रविष्यति, भू—भो + इ + स्यति = भविष्यति, हृ–हर + इ + स्यति = हरिष्यति, सिध्–सेध् + स्यति = सेत्स्यति, बुध-बोध्+इ+स्यति = बोधिष्यति, वृत्—वर्त्+इ+स्यते = वर्तिष्यते आदि।

(१३) ग्रह धातु के बाद इट् (इ) का दीर्घ हो जाता है; जैसे :—ग्रहीष्यति, ऋकारान्त धातु के बाद विकल्प से 'इ' का दीर्घ हो जाता है; जैसे :—तॄ—तरीष्यति, तरिष्यति, दरिद्रा धातु के बाद 'इ' आने से आकार का लोप हो जाता है; जैसे :—दरिद्रिष्यति, दृश् और सृज् धातु के लृट् लकार में धातु के 'ऋ' का 'र्' हो जाता है; जैसे :–द्रक्ष्यति, स्रक्ष्यति। अस् और ब्रू का क्रमशः भू और वच् हो जाता है। जैसे :—भविष्यति, वक्ष्यति। इसी नियम से सभी गण के धातुओं के लृट् लकार के रूप बनाये जाते हैं। छात्रों को इस पर ध्यान रखना चाहिये।

टिप्पणी :—लृट् लकार में छात्रों के उपयोगी तथा व्यवहार्य अधिक-तर धातुओं में धातु तथा विभक्ति के बीच में इट् (इ) का आगम हो जाता है। तव्य, त, तवत्, तुम्, त्वा आदि प्रत्ययों से कृदन्त पद बनाने में भी प्रायः धातु और प्रत्यय के बीच यह इट् (इ) हो जाता है। जिन धातुओं में इट् होता है वे 'सेट्' धातु कहलाते हैं, जिनमें इट् नहीं होता वे 'अनिट्' कहलाते हैं और जिन धातुओं में विकल्प से इट् लगता है, उन्हें 'वेट्' धातु कहते हैं। किसी धातु से लृट् लकार के प्रयोग करने में नीचे की सेट्, अनिट् की व्यवस्था पर अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

(क) एक से अधिक स्वर वाले सभी धातु सेट् हैं अर्थात् इनमें इट् होता है।

(ख) ऊकारान्त, ॠकारान्त, यु, रु, क्ष्णु, शी, स्नु, नु, क्षु, श्वि, डी, श्रि, वृ (क्र्यादि) और वृ (स्वादि) धातु सेट् हैं अर्थात् इनमें इट् का आगम होता है।

(ग) उपर्युक्त धातुओं से अतिरिक्त जितने एक स्वर वाले स्वरान्त धातु हैं, सब अनिट् हैं अर्थात् उनमें इट् नहीं होता।

(घ) १०२ धातुओं को छोड़कर जितने एक स्वर वाले व्यञ्जनान्त धातु हैं, सब सेट् हैं अर्थात् सब में इट् होता है। निम्नलिखित एक स्वर वाले १०२ व्यञ्जनान्त धातुओं में इट् नहीं होता—

शक्लृ पच्मुचि वच्रिच्विच्। सिच्प्रच्छि त्यज् निजिर् (निज्)भजः।
भञ्ज भुज् भ्रस्ज् मस्जि यज् युज् रुज। रञ्ज विजिर स्वञ्जि सञ्ज सृजः॥
अद् क्षुद् खिद् छिद् तुदि नुदः। पद्य(पद्) भिद् विद्यतिर् (विद्) विनद्।
शद् सदो स्विद्यतिः(स्विद्) स्कन्दि (स्कन्द) हदी क्रुध् क्षुधि बुध्यति॥
बन्धि युधिरुधी राधि। व्यध् शुधः साधिसिध्यती॥
मन्य (मन्) हन् आप् क्षिप् छुपि तप्। तिपस्तृप्यतिदृप्यती॥
लिप् लुप् वप् शप् स्वप् सृपि यम्। रभ् लभ् गम् नम् यमो रमिः(रम्)
क्रुशिर् (क्रुश्) दंशिर् (दंश्) दृशी दृश् मृश्।

रिश् रुश् लिश् विश् स्पृशः (स्पृश्) कृषिः (कृष्) ।
त्विष् तुष् द्विष् दुष् पुष्य पिष् विष् । शिष् शुष् श्लिष्यतयो घसिः ।
वसति (वस्) दह् दिहि दुहो नह् मिह् रुह् लिह् वहि (वह्) स्थता ।
अनुदात्ता (अनिट्) हलन्तेषु धातवो द्व्यधिकं शतम (१०२) ॥

विशेषः—ऊपर गिनाये हुए अनिट् हलन्त धातुओं में केवल गम् और हन् के लृट् में इट् लगाया जाता है। जैसे :—गमिष्यति, हनिष्यति आदि।

परिवर्तनीय धातु

कुछ ऐसे धातु हैं जिनका रूपपरिवर्तन हो जाता है। उन धातुओं के आगे उनका परिवर्तित रूप दे दिया है। इन्हीं में लडादि लकारों में बताये नियमानुसार विभक्तियाँ जोड़ कर रूपों को बना लेना चाहिये।

गम्—गच्छ् (जाना) यम्—यच्छ् (दबाना) पा—पिब् (पीना) घ्रा—जिघ्र् (सूँघना) ध्मा—धम् (फूँकना) स्था—तिष्ठ् (ठहरना) म्ना—मन् (सोचना) दाण्—(दा) यच्छ् (देना) दृश्—पश्य (देखना) ऋ—ऋच्छ् (जाना) शद्—शीय् (नष्ट होना) सद्—सीद् (बैठना, दुःख सहना) दंश्—दश् (डँसना) सञ्ज्—सज् (आसक्त होना) स्वञ्ज्—स्वज् (आलिङ्गन करना) रञ्ज्—रज् (रंगना) मृज्—मार्ज् (धोना) भ्रम्—भ्रम्, भ्राम्य (भ्रमण करना) क्रम्—क्राम्य्, क्राम् (चलना) लस्ज—लज्ज (लजाना) सस्ज्—सज्ज (तैयार होना) लुच्—लुञ्च्-लोच् (नोचना) गुज्—गुञ्ज्, गोज् (गुञ्जार करना) गृज—गर्ज् गृञ्ज् (गर्जना) गुप्—गोपाय् (रक्षा करना) धूप्—धूपाय् (धूप लगाना) गुह्—गूह् (छिपाना) कम्—कामय (चाहना) ष्ठिव्—ष्ठीव् (थूकना) आचम्—आचाम् (आचमन करना) कृप्—कल्प् (योग्य होना) आ० प० ।

विशेष :—लृट् लकार में धातुओं के रूप का परिवर्तन नहीं होता। धातु के मूल रूप में ही लृट् लकार के नियमानुसार विभक्तियाँ जोड़ी जाती हैं। जैसे :—गमिष्यति, यंस्यति, पास्यति, घ्रास्यति आदि।

अभ्यास

(क) भ्वादिगणीय धातुओं में तिङन्तविभक्तियों के जुड़ने पर कौन-कौन परिवर्तन होते हैं।

(ख) धातुओं के साथ उपसर्ग रहने पर लङ् लकार में 'अ' कहां जोड़ा जाता है ?

(ग) सेट् और अनिट् धातुओं से क्या तात्पर्य है ?

(घ) किस प्रकार के धातु सेट् होते हैं ?

(ङ) किस प्रकार के धातु अनिट् होते हैं ?

(च) एक स्वरवाले व्यञ्जनान्त धातुओं के कुछ उदाहरण दो जिनमें 'इट्' होता हो ?

(छ) कुछ ऐसे एक स्वरवाले व्यञ्जनान्त धातुओं को लिखो जिनमें 'इट्' नहीं होता हो ?

(ज) कुछ ऐसी भ्वादिगणीय धातुओं को लिखो जिनके मौलिक रूप में परिवर्तन होता हो ?

पाठ ३

6

तुदादि

भ्वादि गण के धातुओं की तरह तुदादि गण के धातुओं के भी लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् इन चार लकारों में धातुओं के बाद तथा विभक्ति के पूर्व 'अ' जोड़ दिया जाता है। भ्वादि गण की तरह इसमें गुण नहीं होता; परन्तु धातु के अन्त के इ, ई, का इय्, उ, ऊ, का उव्, ऋ, ॠ का क्रमशः रिय् और इर् हो जाता है। जैसे :—तुद + अ + ति = तुदति, सृज् + अ + ति = सृजति, शि + अ + ति = शियति, धु + अ + ति = धुवति, मृ + अ + ति = म्रियते, कॄ + अ + ति = किरति आदि। भ्वादि २–६ तक के नियम इस गण में भी ज्यों के त्यों लगते हैं।

परिवर्तनीय धातु

(२) इस गण के परिवर्तनीय धातुओं के मूल तथा परिवर्तितरूप नीचे दिये जाते हैं। इनके परिवर्तितरूपों में उपर्युक्त नियमानुसार लडादिकी विभक्तियां जोड़ देने से सब रूप बन जायेंगे :—

इष्—इच्छ् (चाहना) कृत्—कृन्त् (काटना) खिद्—खिन्द् (खेद करना) गृ—गिर् (निगलना) त्रुट्—त्रुट्, त्रुट्य् (काटना, तोड़ना) प्रच्छ्—पृच्छ् (पूछना) भ्रस्ज्—भ्रज्ज् (भूँजना) मस्ज्—मज्ज् (नहाना) व्रश्च् वृश्च् (काटना) मुच्—मुञ्च् (त्यागना) लिप्—लिम्प् (लीपना) लुप्—लुम्प् (तोड़ना, गायब होना) विद्—विन्द् (पाना) सिच्—सिञ्च् (सींचना) व्यच्—विच् (ठगना)।

टिप्पणी :—लृट् लकार में ये परिवर्तन नहीं होते। धातुओं के मूल रूप में ही लृट् लकार के नियमानुसार विभक्तियाँ जोड़ देने से उसके सब रूप बन जाते हैं, जैसे:—इष्—एषिष्यति; कृत्—कर्तिष्यति, खिद्—खेत्स्यति, गृ—गरिष्यति, प्रच्छ्—प्रक्ष्यति आदि।

अभ्यास

(क) तुदादिगणीय धातुओं में विभक्ति के पूर्व किन लकारों में 'अ' जोड़ा जाता है ?

(ख) इस गण के धातुओं के किन-किन स्वरों के स्थान में क्या-क्या आदेश होते हैं ?

(ग) कुछ ऐसे तुदादिगणीय धातुओं को लिखो, जिनके मौलिक रूप विभक्तियों के जुड़ने के पूर्व परिवर्तित हो जाते हैं।

विशेष :—नीचे लिखे धातुओं में उपधा के लघु स्वर का गुण नहीं होता :—

स्पृह्–चाहना, मृग्–खोजना, कृप्–कृपा करना, सुख–सुखी बनाना, मृष्–सहना, पुट्–बाँधना, कुण्, गुण्–बात करना, कुह्–ठगना, चकित होना, स्फुट्–विकसित होना आदि ।

(४) अय परे रहते धातु के अन्त्य स्वर इ, ई की 'ऐ' उ, ऊ की 'औ' तथा ऋ, ॠ की 'आर्' वृद्धि हो जाती है । जैसे:—चि + अय = ति = चै + अय + ति = चाययति ।

अर्थ–माँगना, कुत्स्–निन्दा करना, गल्–गलना, तर्ज्–भर्त्सना करना, त्रुट्–तोड़ना, दंश्–डँसना, भर्त्स्–डराना, मद्–प्रसन्न करना, मन्त्र–राय करना, वञ्च्–ठगना ये केवल आत्मनेपद में ही प्रयुक्त होते हैं ।

अभ्यास

(क) चुरादिगणीय धातुओं में विभक्तियों के जुटने के पूर्व क्या जोड़ा जाता है ? उदाहरण देकर समझाओ ।

(ख) इस गण के कुछ ऐसे धातुओं के नाम बताओ जिनके उपधा के अकार की वृद्धि नहीं होती हो ।

(ग) कुछ ऐसे धातुओं के नाम बताओ जिनके उपधा के 'इ' और 'उ' का गुण होता है ।

(घ) कुछ ऐसे धातुओं के नाम बताओ जिनके उपधा के लघु स्वर का गुण नहीं होता है ।

(ङ) कुछ ऐसे धातुओं का उल्लेख करो जिनके अन्त्य स्वर की वृद्धि होती हो ।

पाठ ६

स्वादि 5

(१) इस गण के धातुओं में लट् आदि चार लकारों के पहले धातु के बाद 'नु' जोड़ दिया जाता है।

(२) लट्–ति, सि, मि, लोट्–तु, आनि, आव, आम, ऐ, आवहै, आमहै, लङ्–त् , स् , अम् इन १३ विभक्तियों को पित् विभक्ति कहते हैं। इनके अतिरिक्त शेष विभक्तियाँ अपित् कहलाती हैं। १३ पित् विभक्तियों में 'नु' के 'उ' का 'ओ' हो जाता है। जैसे :—लट्—सुनोति, सुनोषि, सुनोमि। लोट्—सुनोतु, सुनवानि, सुनवाव, सुनवाम, सुनवै, सुनवावहै, सुनवामहै। लङ्—असुनोत् , असुनोः, असुनवम्। आदि।

(३) यदि असंयुक्त वर्ण के बाद 'नु' हो तो, 'व्' 'म्' विभक्ति परे रहते उसके स्थान में विकल्प से 'न्' हो जाता है। जैसेः—सुनुवः, सुन्वः, सुनुमः, सुन्मः। संयुक्तवर्ण से 'नु' के परे रहने पर ऐसा नहीं होता, जैसे :—शक-शक्नुवः, शक्नुमः।

(४) यदि कोई स्वरादि अपित् विभक्ति परे रहे तो संयुक्त वर्ण के बाद आये हुए 'नु' के 'उ' का 'उव्' हो जाता है। जैसेः—आप्–आप्नुवन्ति, शक्–शक्नुवन्ति, आदि। परन्तु 'नु' के पहले संयुक्त वर्ण नहीं रहने से ऐसा नहीं होता। जैसेः—सुन्वन्ति आदि।

(५) यदि 'नु' संयुक्त वर्ण से परे न हो तो लोट् के 'हि' का लोप हो जाता है। जैसेः—क्षिणु, सुनु आदि। संयुक्तवर्ण से परे रहने पर ऐसा नहीं होना। जैसे :—आप्नुहि, शक्नुहि, तक्ष्णुहि आदि। छात्रों के उपयोगी तथा व्यवहार्य जितने स्वादिगणीय धातु हैं सबके रूप इन्हीं नियमों के अनुकूल चलेंगे।

तनादि 8

इस गण के धातुओं में लट् आदि चार लकारों में विभक्तियों के पहले 'उ'

जोड़ दिया जाता है। शेष २ से ५ तक स्वादिगण के नियम इस गण में भी ज्यों के त्यों लागू होते हैं इन्हीं नियमों के अनुसार इस गण के धातुओं में विभक्तियाँ जोड़ कर रूप बना लेना चाहिये। जैसे :—तनोति, तनुतः, तन्वन्ति, तनोषि, तनुथः, तनुथ, तनोमि, तन्वः—तनुवः, तन्मः—तनुमः, आदि। कृधातु का पित्विभक्ति में 'कर्' तथा अपित् विभक्ति में कुर् हो जाता है। विभक्ति के आरम्भ में व्, म्, य् रहने से उ का लोप हो जाता है। जैसे :—कुर्वः, कुर्मः, कुर्यात् आदि।

क्र्यादि 9

(१) इस गण के धातुओं में लट् आदि चार विभक्तियों में धातु के बाद तथा विभक्ति के पहले 'ना' जोड़ दिया जाता है। जैसे :—क्रीणाति, प्रीणाति आदि।

(२) व्यञ्जनादि अपित् लकारों में 'ना' का 'नी' हो जाता है। जैसे :—क्रीणीतः, प्रीणीतः, गृह्णीतः आदि।

(३) स्वरादि अपित् विभक्तियों में 'ना' का 'न्' हो जाता है। जैसे :—क्रीणन्ति, प्रीणन्ति, गृह्णन्ति आदि।

(४) व्यञ्जनान्त धातु में लोट्—हि के स्थान में और 'ना' का 'आन' हो जाता है। जैसे :—गृहाण, पुषाण, मुषाण आदि। परन्तु स्वरान्त का क्रीणीहि आदि।

2 3 7

अदादि, जुहोत्यादि, रुधादि

इन गणों के धातुओं के रूप के लिये कुछ थोड़े से निश्चित नियम नहीं बनाये जा सकते। इन गणों में प्रायः करके भिन्न भिन्न धातुओं के लिये कुछ न कुछ भिन्न भिन्न नियम हैं। इस लिये छात्रों को इन गणों के कुछ चुने हुये उपयोगी तथा व्यवहार्य धातुओं के रूप व्याकरण से ही याद कर लेना चाहिये। प्रत्येक गण के कुछ परमोपयोगी धातु नीचे दिये जाते हैं:—

अदादि

परस्मैपदी

अद्—खाना अस्—होना ख्या—कहना जागृ—जागना भा—मकना मृज्—धोना या-जाना रु—चिल्लाना रुद्—रोना वच्—बोलना ा—वहना विद्—जानना शास्—शासन करना, दण्ड देना श्वस्—वास लेना स्ना—नहाना हन्—मारना स्वप्—सोना ।

आत्मनेपदी

आस्—बैठना, अधि+इ=अधीते—पढ़ना, शी—सोना आ+चक्ष्—कहना ।

उभयपदी

दुह्—दुहना द्विष्—द्वेष करना ब्रू—बोलना लिह्—चाटना स्तु—स्तुति करना ।

ऊपर दिये हुए धातुओं से और गणों की तरह बिना रटे यथेष्ट रूप बना लेने के लिये इस गण के सामान्य नियम के साथ उपरि निर्दिष्ट धातुओं के लिये जो कुछ विशेष नियम हैं छात्रों की सुविधा के लिये नीचे दे दिये जाते हैं :—

(१) लट् आदि चार लकारों में इस गण के धातुओं के परे बिना कुछ जोड़े विभक्तियाँ जोड़ दी जाती हैं। जैसे :—'अद्'—अद् + ति = अत्ति, अद् + तः = अत्तः, अद् + अन्ति = अदन्ति ।

(२) शी धातु के अन्तिम स्वर तथा पित् विभक्ति (देखिये स्वादि प्रकरण नियम १) परे रहने से अन्य धातु के उपधा के लघु स्वर का गुण हो जाता है। जैसेः—शी-अशेत, द्विष्—द्वेष्टि, लिह्—लेढि आदि ।

(३) जिनके आदि में स्वर हो, ऐसी अपित् (देखिए स्वादि प्रकरण नियम १) विभक्तियों के परे रहने से धातु के इ का इय् और उ का उव् हो जाता है। जैसे :—अधि + इ + अते=अधि + इय् + अते = अधीयते। ब्रू + अन्ति = ब्रुवन्ति आदि ।

(४) अद्:—इसके लङ् लकार प्रथम पुरुष एकवचन 'त्' तथा मध्यम-

पुरुष एकवचन 'स्' परे रहने से धातु के आगे 'अ' लग जाता है। जैसेः—
आ + अद् + अ+त् = आदत्, आ + अद् + अ + स् = आदः।

(५) अस्ः—(क) अपित् विभक्तियों के परे रहने से धातु के 'अ' का लोप हो जाता है। जैसे :—अस् + तः = स्तः, अस् + अन्ति = सन्ति, अस् + थः = स्थः, अस् + थ = स्थ, अस् + वः = स्वः, अस् + मः = स्मः आदि।

(ख) सकारादि विभक्ति परे रहते धातु के 'स्' का लोप हो जाता है। जैसे :—अस् + सि = असि।

(ग) लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन में रूप 'एधि' होता है।

(घ) लङ् लकार प्रथम पुरुष एकवचन 'त्' तथा मध्यम पुरुष एकवचन 'स्' में धातु के आगे ईट् 'ई' लग जाता है। जैसेः—आ + अस् + ई+त् = आसीत्, आ + अस् + ई + : = आसीः।

(ङ) विधि लिङ् में 'या' के अपित् होने के कारण सब विभक्तियों में 'अ' का लोप हो जाता है। जैसे :—अस् + या + त् = स्यात् आदि। जागृ, शास्–लट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में 'अन्ति' के 'न्' का लोप हो जाता है तथा लङ् प्रथम पुरुष बहुवचन में 'अन्' का 'उस्' हो जाता है। जैसे :—जागृ + अन्ति = जाग्रति, शास् + अन्ति = शासति, अ + जागृ + अन् = अजागरुः, अ + शास् + अन् = अशासुः आदि।

व्यञ्जनादि अपित् विभक्ति के आने से शास् के आकार का 'इ' हो जाता है। जैसे—शास् + तः = शिष्टः, शास्—थः = शिष्ठः, आदि। लोट्–हि में 'शाधि' रूप होता है। द्विष्—आकारान्त धातु या तथा द्विष् धातु में लङ् की 'अन्' विभक्ति का विकल्प से 'उस्' हो जाता है। जैसेः—अ + या + अन् = अयुः, अयान्, अद्विष् + अन् = अद्विषुः, अद्विषन्।

रुद्, स्वप्, श्वस् :—जिन विभक्तियों के आदि में 'य' से भिन्न कोई व्यञ्जन् हो ऐसी विभक्तियों के परे रहने से इन धातुओं के परे लट् आदि चार लकारों की विभक्तियों में इट् 'इ' लग जाता है। जैसेः–रोदिति, स्वापिति, श्वसिति आदि। लङ् के त् का ईत् अथवा अत् और स् का

स् अथवा अस् हो जाता है। जैसे—अरोदीत्, अरोदत्, अरोदीः, रोदः आदि।

शी :—लट्, लोट्, लङ् प्रथम पुरुष बहुवचन में 'शी' का 'शेर्' हो जाता है और विभक्ति के न का लोप हो जाता है। जैसे :—शेरते, रताम्, अशेरत आदि।

ब्रू :—व्यञ्जनादि पित् विभक्ति आने से धातु के आगे 'ई' हो जाता है। से, ब्रू + ई + ति = ब्रवीति आदि।

हन्—य्, र्, ल्, व्, और कोई सानुनासिक वर्ण के अतिरिक्त यदि ोई व्यञ्जनादि अपित् विभक्ति परे रहे तो 'न्' का लोप होता है। जैसेः— न + तः = हतः, हन् + थः = हथः आदि। स्वरादि अपित् विभक्ति परे हने से हन् के अकार का लोप हो जाता है तथा 'ह्' का 'घ्' हो जाता । जैसे :—हन् + अन्ति = घ्न् + अन्ति = घ्नन्ति आदि।

मृज—पित् विभक्तियों में मृज् के ऋ का आर् हो जाता है जैसे :— मृज + ति = मार्ष्टि आदि।

वच्—इसका प्रयोग प्रथम पुरुष बहुवचन में नहीं होता।

जुहोत्यादि के कुछ स्मरणीय धातु

परस्मैपदी

हु—हवन करना—जुहोति पॄ—पूर्ण करना—पिपर्ति

हा—छोड़ना—जहाति भी—डरना—बिभेति

उभयपदी

दा—देना—ददाति, दत्ते धा—धारण करना—दधाति, धत्ते

भृ—पालन करना—बिभर्ति बिभृते विच्—अलग करना, विवेक करना विवेक्ति, वेविक्ते

रुधादि के कुछ स्मरणीय धातु

परस्मैपदी

भुज्—(पालन करना)—भुनक्ति उन्द्—(भिगाना) उनत्ति

पिष्—(पीसना) पिनष्टि अञ्ज्—(आंजना) अनक्ति
भञ्ज्—(भंग करना) भनक्ति

आत्मनेपदी

इन्ध्—(चमकना) इन्धे भुज् (खाना) भुङ्क्ते
खिद्—(खिन्न होना) खिन्ते विद्—(जानना) विन्ते

उभयपदी

छिद् (काटना) छिनत्ति, छिन्ते युज् (जोड़ना) युनक्ति, युङ्क्ते
भिद् (दो टुकड़ा करना) भिनत्ति,
भिन्ते रिच् (रिक्त करना) रिणक्ति, रिङ्क्ते
रुध्—(रोकना) रुणद्धि, रुन्धे विच्—(अलग करना) विनक्ति, विङ्क्ते

अभ्यास

(क) स्वादिगणीय धातुओं के रूप निर्माण के नियमों का उल्लेख सोद
हरण करो ।
(ख) इस गण के धातुओं के बाद किन-किन लकारों में 'नु' जोड़ा
जाता है ?
(ग) तनादि गण के धातुओं के बाद किन-किन लकारों में 'उ' जोड़ा
जाता है ?
(घ) क्र्यादिगण के धातुओं के बाद किन-किन लकारों में 'ना' जोड़ा
जाता है ?

अध्याय १

पाठ १

(१) लट्—इसका प्रयोग वर्त्तमान समय में होने वाले किसी कार्य, अथवा वर्त्तमान समय में अस्तित्व रखनेवाली किसी वस्तु का बोध कराने के लिए किया जाता है। जैसे :—सः पठति = वह पढ़ता है। रामः कथयति = राम कहता है। आदि।

(क) तात्कालिक वर्त्तमान में भी लट् लकार का प्रयोग होता है। जैसे :—मैं घर जा रहा हूँ = अहं गृहं गच्छामि। कभी-कभी मूल धातु में शतृ (अत्) प्रत्यय करके तथा उसके साथ 'अस्' धातु के रूप लगाकर भी करते हैं। जैसे :—अहं गृहं अच्छन् अस्मि = मैं घर जा रहा हूँ।

(ख) वर्त्तमान काल की क्रिया में जहाँ लट् का प्रयोग किया जाता है वहाँ प्रायः कोई वर्त्तमान-सूचक विशेष क्रियाविशेषण अव्यय ऊह्य या प्रत्यक्ष रहता है, जिसके द्वारा लट् का प्रयोग केवल वर्त्तमान कार्य का बोध कराने के लिये सीमित किया जाता है। जैसे :—सः कथां वाचयति (अधुना) = इस समय वह कथा बाँच रहे हैं। सम्प्रत्यहं विद्यालयं गच्छामि = इस समय मैं स्कूल जाता हूँ। आदि।

(ग) शाश्वत (नित्य) वर्त्तमान क्रिया का बोध कराने के लिये लट् लकार का प्रयोग होता है। जैसे :—सूर्यस्तपति = सूर्य तपते हैं। नास्ति सत्यसमं तपः = सत्य के समान दूसरी तपस्या नहीं है। अस्ति दक्षिणस्यां विन्ध्यो नाम गिरिः = दक्षिण में विन्ध्य नामक पहाड़ है।

(२) वर्त्तमान काल के निकटवर्त्ती भूत या भविष्यत् में भी विकल्प से लट् का प्रयोग होता है। जैसे, समीपवर्ती भूत :—कदा त्वं गृहादागतोऽसि ? = तू घर से कब आया ? अयमागच्छामि = यह मैं आता हूँ अर्थात् मैं अभी आया हूँ। समीपवर्ती भविष्यत् :—कदा करिष्यसि ? = कब करोगे ? एष करोमि = यह मैं करता हूँ अर्थात् अभी करूँगा।

(३) भूत काल की कथाओं तथा घटनाओं के वर्णन करने में ल
लकार का प्रयोग होता है। जैसे :—विष्णुशर्मा कथयति = विष्णुशर्म
कहते हैं अर्थात् विष्णु शर्मा ने कहा।

(४) नित्य या अभ्यस्त क्रिया का बोध कराने के लिये लट् लका
का प्रयोग होता है। जैसे :—गौः तृणं खादति = गाय घास खाती है।

(५) 'स्म'—इस अव्यय के विषय में लट् लकार होता है। य
भूत काल के अर्थ का बोध कराता है। जैसे :—यजति स्म युधिष्ठिरः=
युधिष्ठिर यज्ञ करते थे।

(६) यावत्, पुरा इन दो अव्ययों के योग में भविष्यत् काल के
अर्थ में लट् लकार होता है। जैसे :—अवलम्बस्व चित्रफलक यावदा
गच्छामि = मैं जब तक आऊँ तब तक चित्र रखे रहो। आलोके ते
निपतति पुरा = अवश्य ही तुम्हारी दृष्टि में पड़ेगा।

कदा और कर्हि शब्द के योग में भविष्यत्काल के अर्थ में विकल्प से
लट् का प्रयोग होता है। जैसे :—कदा, कर्हि वा गच्छामि, गमिष्यामि
वा न जाने—नहीं जानता हूँ कब जाता हूँ (जाऊँगा)। प्रश्न करने में
भविष्यत् काल के अर्थ में लट् का प्रयोग होता है। जैसे :—किं करोमि
क गच्छामि ? = क्या करूँ कहाँ जाऊँ ?

किसी प्रश्न के उत्तर देने में 'ननु' इस अव्यय के योग में भूतकाल
के अर्थ में लट् का प्रयोग होता है। जैसे :—पाठमपठः किम् ? ननु
पठामि भोः = पाठ पढ़ लिया क्या ? हाँ पढ़ लिया।

हेतुसूचक या दशासूचक वाक्य से यदि भविष्यत् का अर्थ समझ
जाय तो उसमें लट् लकार का प्रयोग होता है। जैसे :—यः अध्ययन
करोति (करिष्यति वा) स परीक्षामुत्तरति (उत्तरिष्यति वा)—
जो पढ़ेगा वह परीक्षा में उत्तीर्ण होगा।

यावत् (जब तब) तावत् (तब तक), पूर्व इत्यादि शब्दों के साथ आया
हुआ लट् लकार भविष्यत्काल का अर्थ बोध कराता है। जैसे :—यावन्ना
गच्छामि तावदेव पाकं सम्पन्नं कुरु = मेरे आने के पहले ही भोजन
बना लो।

यदि प्रश्न में निन्दा अर्थ समझा जाय तो 'जातु' और 'अपि' अव्यय के योग में सब काल में लट् लकार का प्रयोग होता है। जैसे :—अपि, जातु वा निन्दसि गुरुम् ? गुरु की निन्दा की, करोगे या करते हो ?

यदि निन्दा समझी जाय तो 'कथम्' इस अव्यय के योग में सब काल में लट् और विधि लिङ् का प्रयोग होता है। जैसे :—कथं मां निन्देः, निन्दसि वा=क्यों मेरी निन्दा की, करोगे या करते हो ?।

अभ्यास

(क) यावत्, पुरा, स्म, कदा, कर्हि, जातु, अपि के योग से वाक्य बनाओ ?

(ख) नीचे के वाक्यों को कारण बतलाते हुए शुद्ध करो :—

स कार्यम् अकरोत् स्म। आसीत् हिमालयो नाम पर्वतः। सर्वेषां प्राणाः प्रिया अभवन्। सत्संगतिः किं न करिष्यति। यो धर्मम् अकरोत् स स्वर्गं गास्यति। अपि भवता पठितमेतत्पुस्तकम् ? ननु पठितम् भोः। यावत् त्वं गागमिष्यसि तावदिदं पुस्तकं पठिष्यामि। व्याघ्रः मांसमत्ति स्म। त्वं कथं मां अनिन्दः। स कदा मां भोजनं दास्यति अहं न जानाति। अपि कृष्णमनिन्दस्त्वम्।

पाठ २

लोट् (अनुज्ञा)

(१) नीचे के अर्थों में लोट् और विधिलिङ् का प्रयोग होता है।

(क) विधि (अनुज्ञा) जैसे :—सदा धर्ममाचारतु आचरेत् वा = सदा धर्म करो वा करना चाहिये।

(ख) निमन्त्रण (न्योता) जैसे :—इह भुङ्क्ताम् भुञ्जीत वा भवान्=आप यहां भोजन करें।

(ग) आमन्त्रण (अनुमति) जैसे :—अत्र आगच्छतु, आगच्छेद् वा = यहां आप आ सकते हैं।

(घ) अधीष्ट (विनय) जैसे :—पुत्रमध्यापयेत् , अध्यापयैतु व भवान् = कृपया मेरे लड़के को पढ़ा दिया करें ।

(ङ) संप्रश्न (पूछना) जैसे :—किं भोः काशीं गच्छानि गच्छे वां उत काश्मीरम् = क्या महाशय ! मैं काशी जाऊँ या काश्मीर ?

(च) प्रार्थना—किं भोजनं लभेय लभै वा = क्या मुझे थोड़ भोजन मिलेगा ?

(२) सामर्थ्य का बोध होनेसे तथा आशीर्वाद में लोट् लकार होत है । जैसे, समर्थन :—अहं पर्वतमपि उत्पाटयानि = मैं पहाड़ भी उखा डालूँगा । आशीर्वाद (इसमें मध्यम और प्रथम पुरुष होते हैं) जैसेः— भगवाँस्त्वां सदाऽवतु = भगवान् सदा तुम्हारी रक्षा करें । एवं सर्वगुणो पेतं पुत्रं विद्वांसमाप्नुहि = इस प्रकार सम्पूर्ण गुण विशिष्ट विद्वान् पु प्राप्त करो ।

(क) लोट् लकार का मध्यम पुरुष ही अधिकतर प्रयोग में लाय जाता है । और कर्त्ता लुप्त रहता है । जैसे :—तृष्णां छिन्धि, भ क्षमां, जहि मदं, सत्यं ब्रूहि, अनुयाहि साधुपदवीम् , सत्यं वद, धर्म चर, शृणुत रे पौराः । आदि ।

(ख) आज्ञा का बोध होने से प्रथम पुरुष भी प्रयोग में लाया जात है । जैसे :—स पठतु = वह पढ़े । रामः खेलतु = राम खेले ।

(३) कार्य के बारंबार तथा अतिशय अर्थ का बोध कराना हो त सब काल की सब विभक्ति सब वचनों के लिये लोट् लकार मध्यम पुरु एक वचन या बहुवचन का ही प्रयोग दो बार किया जाता है । जैसे :— याहि याहीति = याति (वह बार बार जाता है ।) यात यातेति=याथ पठ पठेति = पठति ।

(क) यदि एक ही कर्त्ता द्वारा कई कार्योंका होना दिखाया जाय त लोट् लकार का प्रयोग होता है । ऐसे स्थल में प्रयोग दुहराया नहीं जात जैसे :—सक्तून् पिब धानाः खादेत्यभ्यवहरति ।

यदि अत्यन्त नम्रता या आदर के साथ किसी से बोला जा तो कार्य-कारणसम्बन्धी वाक्य के दूसरे वाक्य में लोट् लकार का प्रयो

होता है। जैसे :—अन्यकार्यहानिर्न स्यात्तदा विलम्ब्यताम् किञ्चित्कालमत्र = यदि दूसरे किसी कार्य की हानि न हो तो कृपया यहां कुछ देर ठहरिये ।

आदर अर्थ का बोध होने पर कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में लोट् लकार का प्रयोग होता है । जैसे :—एतदासनमास्यताम् = कृपया इस आसन पर विराजिये ।

तव्य, अनीय आदि प्रत्ययों से भी लोट् के अर्थ का बोध हो जाता है। जैसे :—त्वया अद्यैव आगन्तव्यम् = तू आज ही आना। नैवं त्वया कथनीयम् = तुझे ऐसा नहीं कहना चाहिये आदि ।

अभ्यास

(क) किन किन अर्थों में लोट् का प्रयोग होता है। लोट् लकार के मध्यम पुरुष का प्रयोग किन विशेष अर्थों में होता है ? आदर के अर्थ का बोध कराने के लिये लोट् का कब प्रयोग होता है ?

पाठ ३

विधिलिङ्

(१) विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट संप्रश्न और प्रार्थना अर्थ में लिङ् लकार और लोट् लकार होते हैं। अर्थ तथा उदाहरण लोट् लकार के प्रकरण में दे दिये गये हैं, वहां ही देख लेना चाहिये ।

(क) प्रायः विधिलिङ् अनुमति देने में, पथप्रदर्शन के लिये उपदेश तथा नियमों के विधान करने में, धर्म अथवा कर्त्तव्यता दिखलाने में प्रयुक्त होता है। जैसे :—सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् = सत्य और प्रिय बोलना चाहिये। लालयेत् पञ्च वर्षाणि······पुत्रम् = पांच वर्ष की उम्र तक पुत्र को प्यार करना चाहिये। धनानि जीवितञ्चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् = बुद्धिमान को परोपकार में धन और जीवन का उत्सर्ग कर

देना चाहिये। सहसा किमपि न कुर्यात् = एकाएक कुछ नहीं कर बैठना चाहिये आदि।

(२) इच्छा अर्थवाले धातुओं के योग में विधिलिङ् और लोट् दोनों का प्रयोग होता है। जैसे :—अभिलषति अयञ्जनः इदं फलं गृह्णीयात् गृह्णातु वाऽत्रभवान् = यह आदमी चाहता है कि आप इस फल को ग्रहण करें।

(३) योग्यता (Fitness) का बोध हो तो विधिलिङ् का प्रयोग होता है अथवा तव्य, अनीय, तृच् प्रत्ययान्त पद का व्यवहार किया जाता है। जैसे:—त्वं तस्य जाड्यं हरेः अथवा त्वया तस्य जाड्य हर्तव्यम्, हरणीयम् अथवा त्वं तस्य जाड्यहर्त्ता वा = तू उसकी जडता दूर करने के योग्य है।

(४) सामर्थ्य (Ability) का बोध होने से विधिलिङ् होता है अथवा तव्य, अनीय, तृच् प्रत्यान्त पद का प्रयोग किया जाता है। जैसे:—त्वं धर्ममुद्धरेः उद्धर्त्ता वा अथवा त्वया धर्मः उद्धर्तव्यः उद्धरणीयो वा = तू धर्म का उद्धार कर सकता है।

(५) सम्भावना अर्थ का बोध होने से विधिलिङ् का प्रयोग होता है। जैसे :—स परीक्षामुत्तरेत् = सम्भव है वह परीक्षा पास कर जाय। कृष्णः अद्य अत्र आगच्छेत् = संभव है कृष्ण आज यहां आवे।

(६) सम्भावना वाचक शब्दः—सम्भावयामि, अपि, अपिनाम इत्यादि के योग में भी विधिलिङ् और लृट् का प्रयोग होता है। जैसे—सम्भावयामि यत् तत्र गच्छेत् गमिष्यति वा भवान् = मैं सम्भावना करता हूँ कि आप वहां जायेंगे। अपि उत्तरेत् स इमां परीक्षाम् = क्या सम्भव है कि वह यह परीक्षा पास कर जायगा। अपि नाम त्वमत्र आगच्छेः आगमिष्यसि वा = क्या मैं आशा करूँ कि तू यहां आयगा ? परन्तु यद् का प्रयोग रहने पर केवल विधिलिङ् ही होता है लृट् नहीं, जैसे :—सम्भावयामि यदत्रागच्छेस्त्वम् = समझता हूँ कि तू यहां आयगा।

(७) जातु, यत्, यदा, यदि शब्द के योग में विधिलिङ् का प्रयोग होता है। जैसे :—यदि, जातु, यत्, यदा त्वादृशः धर्मात्प्रमाद्येत् का

कथान्येषाम् = यदि तुम्हारे जैसे धर्म से प्रमाद करें तो औरों की क्या बात।

यदि दो क्रियाओं में परस्पर कार्यकारण भाव हो अर्थात् एक क्रिया दूसरी क्रिया का कारण हो तो दोनों क्रियाओं में विधिलिङ् और लृट् होता है जैसे :—धर्ममाचरेत् आचरिष्यति चेत् सुखं प्राप्नुयात् प्राप्स्यति वा = धर्म करोगे तो सुख पाओगे।

निन्दा अर्थ का बोध होने पर प्रश्नवाचक किम्, कतर, कतम आदि शब्दों के योग में विधिलिङ् अथवा लृट् होता है। जैसे, कः कतरः त्वदतिरिक्तः कतमो वा गुरुमवमन्येत अवमंस्यते वा = तेरे सिवाय और कौन गुरु का अपमान करेगा।

जब आश्चर्य प्रकट करना हो और वाक्य में 'यदि' शब्द का प्रयोग हो तो विधिलिङ् होता है। जैसे :—आश्चर्यं यदि स पुस्तकं दद्यात् = यदि वह पुस्तक दे दे तो आश्चर्य है। परन्तु 'यदि' शब्द का प्रयोग नहीं रहने पर लृट् लकार होता है। जैसे :—आश्चर्यमन्धो नाम कृष्णं द्रक्ष्यति = अन्धा कृष्ण को देख ले यह आश्चर्य है।

वाक्य में 'यद्' शब्द का प्रयोग रहने पर काल, समय, वेला शब्द के योग में विधिलिङ् का प्रयोग होता है। जैसे :—कालः समयो वेला वा यद् भवान स्नायात् = आपके स्नान करने का समय है।

अभ्यास

(क) विधिलिङ् का प्रयोग किन-किन अर्थों में होता है? किन अव्ययों के प्रयोग में विधिलिङ् का प्रयोग होता है? किन शब्दों के योग में विधिलिङ् का प्रयोग होता है?

पाठ ४

लङ् (भूतकाल)

(१) भूतकाल के लिये संस्कृत में तीन लकार हैं। लिट् लकार, लङ् लकार, लुङ् लकार । अनद्यतन परोक्षभूत :—वक्ता के बोलने के २४ घंटा पहले जो हो गया हो तथा वक्ता ने जिसका प्रत्यक्ष नहीं किया हो उसके लिये लिट् लकार का प्रयोग होता है । अनद्यतन भूतः—वक्ता के बोलने के २४ घंटा पहले जो हो गया हो तथा वक्ता ने जिसका साक्षात् किया हो—उसके लिये लङ् लकार का प्रयोग होता है । सामान्य भूत :—सभी प्रकार के भूतकाल के लिये लुङ् लकार का प्रयोग होता है । बहुत सुदूर प्राचीनकाल में उपर्युक्त विभाग के अनुकूल ही भूतकाल के इन लकारों का प्रयोग होता था; परन्तु आजकल इनके प्रयोगों के लिये कोई निश्चित नियम नहीं मानते । किसी प्रकार के भूतकाल के लिये इन तीनों लकारों में से लोग किसी का प्रयोग कर बैठते हैं । अस्तु यहाँ तो मुझे उस विवेचना में पड़ना भी नहीं है । प्रवेशिका वर्ग के लिये निर्धारित संस्कृत सिलेबस के अनुकूल केवल लङ् लकार पर ही विचार करना है । अनद्यतन भूत अर्थात् २४ घंटा पहले जो हो गया है, उसके लिये लङ् लकार का प्रयोग होता है; जैसे :—रामः पुस्तकमपठत् = राम ने किताब पढ़ी ।

(क) हिन्दी के सामान्य, आसन्न तथा पूर्ण भूत के वाक्यों के अनुवाद के लिये लङ्लकार तथा क्त, क्तवत् प्रत्ययान्त पद का प्रयोग होता है । जैसे :—कृष्णः गृहमगच्छत, गतः, गतवान् वा = कृष्ण घर गया, गया है अथवा गया था ।

विशेष—गया था, किया था, खड़ा था, देखा था आदि हिन्दी की पूर्ण भूत की क्रियाओं का अनुवाद प्रधान क्रियावाले धातु में क्त अथवा क्तवत् प्रत्यय कर के तथा उसके साथ अस् धातु के भूतकाल (लङ्) का प्रयोग कर के भी होता है। जैसेः—कृष्णःगतः गतवान् वा आसीत् = कृष्ण गया था । सः चन्द्रं दृष्टवान् आसीत् = उसने चन्द्रमा को देखा था । आदि ।

(ख) लङ् लकार, 'स्म' से युक्त लट् लकार तथा मुख्य धातु में शतृ (अत्) अथवा शानच् (आन) प्रत्यय करके और उसके साथ 'अस्' धातु के भूत काल के प्रयोग के द्वारा हिन्दी की अपूर्ण भूत की क्रियाओं का अनुवाद होता है। जैसे :—ते फलमखादन् वा खादन्ति स्म वा खादन्तः आसन्=वे फल खाते थे वा खा रहे थे।

(ग) गया होगा, खड़ा होगा, लिखा होगा आदि संदिग्ध भूतकाल की क्रियाओं के लिये मुख्य क्रिया में 'क्त' अथवा, क्तवत् प्रत्यय लगाकर तथा अस् और भू धातु के विधिलिङ् का प्रगोग किया जाता है। जैसेः— स तत्र गतः गतवान् वा भवेत्=वह वहाँ गया होगा। सः नदीतटे स्थितः स्थितवान् वा भवेत्=वह नदी किनारे खड़ा होगा। रामः पत्रं लिखितवान् भवेत्=राम ने पत्र लिखा होगा।

विशेष :—हेतुहेतुमद्भूत के लिये विधिलिङ् का प्रयोग बतला दिया गया है। जैसे :—परिश्रमं कुर्याच्चेत् परीक्षामुत्तरेत्=परिश्रम किया होता तो परीक्षोत्तीर्ण होता।

(२) 'स्म' से असंयुक्त केवल 'पुरा' का योग रहे तो लङ् लकार तथा लट् लकार का प्रयोग होता है; जैसे :—गर्जन्तीह पुरा व्याघ्राः अगर्जन् वा=यहाँ पहिले बाघ गरजते थे। स्म, पुरा दोनों के रहने पर केवल वर्त्तमान काल का प्रयोग होगा। जैसे :—यजति स्म पुरा = वह पुराने समय में यज्ञ करता था।

अभ्यास

(क) संस्कृत में भिन्न भिन्न भूतकालिक क्रियाओं की रचना के लिये किन-किन प्रत्ययों तथा लकारों का प्रयोग होता है? संदिग्ध भूत तथा हेतुहेतुमद्भूत के वाक्यों के लिये किस लकार का प्रयोग होता है?

पाठ ५

लृट् (भविष्यत्काल)

(१) भविष्यत्काल में लृट् लकार होता है। जैसे :—अहमद्य गृह गमिष्यामि = मैं आज घर जाऊँगा।

(२) जब किसी होनेवाली क्रिया की अत्यन्त समीपता दिखाई जाती है, तब लट् तथा लृट् दोनोंका प्रयोग होता है। जैसे:—कदा पठिष्यसि ? एष पठामि पठिष्यामि वा = कब पढ़ोगे ? अभी पढ़ूँगा।

(३) कभी-कभी जब किसी से विनम्रतापूर्वक कोई काम करने के लिये कहा जाता है तब लोट् की जगह लृट् लकार का प्रयोग होता है। जैसे :—पश्चात् मां भोजयिष्यसि = पीछे मुझे खिला देना।

(४) बल, अभिप्राय, स्थिर, निश्चय आदि का बोध कराने के लिये 'एव' आदि निश्चयवाचक अव्ययोंके साथ लृट् का प्रयोग किया जाता है। जैसे :—अहम् एतत् पठिष्याम्येव = मैं इसे पढ़ूँगा ही।

(५) विधिलिङ्, तव्य, अनीय, आदि से भी भविष्यत्काल का अनुवाद किया जाता है। जैसे :—त्वं फलं खादेः, वा त्वया फलं खादितव्यम् खादनीयम् = तू फल खाना।

अभ्यास

(क) लृट् का प्रयोग किन-किन अर्थों में होता है ?
(ख) लृट् के साथ लट् का प्रयोग कब होता है ?
(ग) लृट् के अतिरिक्त किस लकार अथवा किन प्रत्ययों से भविष्यत्काल का बोध होता है।

अध्याय १०

पाठ १

कृदन्त-प्रकरण

कृत प्रत्यय :—धातुओं के साथ ति, तः आदि विभक्ति-प्रत्यय लगने पर तिङन्त के रूप निष्पन्न होते हैं और ऐसे विभक्ति-प्रत्यय तिङ् कहे जाते हैं। तिङ् प्रत्यय सदा क्रिया ही में होते हैं किन्तु धातुओं के अन्त में लगाकर जो प्रत्यय संज्ञा, विशेषण और अव्यय के वाचक शब्दों को बनाते हैं वे प्रत्यय कृत् प्रत्यय कहे जाते हैं और उनके योग से बने शब्द कृदन्त कहे जाते हैं। कर्तृवाच्य में कृदन्त शब्द कर्ता के विशेषण होते हैं तथा कर्मवाच्यमें कर्मके विशेषण और भाववाच्य में नपुंसक लिङ्ग में एकवचनान्त प्रयुक्त होते हैं।

यहाँ कृत्य प्रत्ययों के निम्न चार भेद उल्लेख किये जाते हैं :—

(१) तव्य, (२) अनीय, (३) ण्यत्, (४) यत्।

अंगरेजी में जिन भावों को कई शब्दों के द्वारा प्रकट किया जाता है उन्हें संस्कृत में कृत्य प्रत्यय के द्वारा एक ही शब्द से व्यक्त किया जा सकता है। जैसे :—Capable of being Killed इन चार शब्दों की जगह संस्कृत में केवल तव्य प्रत्यय से बना हुआ 'हन्तव्य' पर्याप्त होता है। ये प्रत्यय सकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य में और अकर्मक धातुओं से भाववाच्य में होते हैं। इन प्रत्ययों से बने हुए शब्दों के रूप पुल्लिङ्ग में देव के समान, स्त्रीलिङ्ग में लता के समान और नपुंसक लिङ्ग में फल के समान होते हैं।

चाहिए, उचित, अवश्य, योग्य आदि अर्थों का बोध इन प्रत्ययों के योग से होता है जैसे:—छात्रैः पुस्तकं पठितव्यम्, पठनीयं वा = छात्रों से पुस्तक पढ़ी जानी चाहिए अर्थात् छात्रों को पुस्तक पढ़नी चाहिये। एवं द्रष्टव्यः ग्रामः = देखने योग्य गाँव। दर्शनीयः महात्मा =

देखने योग्य महात्मा। पेयं जलम् = पीने योग्य पानी। पाठ्यः ग्रन्थः = अवश्य पढ़ने योग्य ग्रन्थ। अहरहः सन्ध्या उपास्या = प्रतिदिन संध्या अवश्य करनी चाहिए।

विशेषः—(क) ये उपर्युक्त तव्य आदि प्रत्यय नपुंसक लिङ्ग के एक-वचन में होकर स्वतन्त्र रूप से क्रिया की जगह प्रयुक्त होते हैं अर्थात् किसी भी संज्ञा या सर्वनाम से किसी भी प्रकार सम्बद्ध नहीं होते; जैसे:—अभिज्ञानशाकुन्तलाख्येन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः = अभिज्ञानशाकुन्तलनामक नाटक लेकर हम लोगों को उपस्थित होना चाहिये। तत्र भवता तपोवनं गन्तव्यम् = उन पूजनीयों को तपोवन जाना चाहिये।

(ख) भविष्यत्काल में निश्चयात्मक अर्थ बोध कराने के लिये भी कभी-कभी ये प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं। जैसे :—लुब्धकेन मृगमांसार्थिना गन्तव्यम् = हरिण मांस का लोभी बहेलिया अवश्य जायगा। ततस्तेनापि शब्दः कर्त्तव्यः = तब वह भी अवश्य शोर करेगा।

(ग) कभी-कभी इन प्रत्ययों से केवल भविष्यत् काल का भी बोध होता है। जैसेः—भवतां साहाय्येन अनेनापि सुखेन तत्र गन्तव्यम् = आप लोगों की सहायता से यह भी सुख के साथ वहाँ चला जायगा।

अभ्यास

(क) किस प्रकार के प्रत्ययों को कृत् प्रत्यय कहते हैं?
(ख) कृदन्त शब्द कब कर्त्ता के और कब कर्म के विशेषण होते हैं?
(ग) भाव वाच्य में कृदन्त शब्दों में कौन लिङ्ग तथा वचन होता है?
(घ) किन प्रत्ययों को कृत्य प्रत्यय कहते हैं? उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट करो?
(ङ) कृत्य-प्रत्ययों से निष्पन्न शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में किन शब्दों के समान होते हैं?
(च) कृत्य-प्रत्ययों का प्रयोग किन-किन अर्थों में होता है?

पाठ २

शतृ और शानच्

जब कई व्यापार समानाधिकरण और समकालिक अर्थात् एक ही कर्त्ता के द्वारा एक समय में ही हो रहे हों तो परस्मैपदी धातुओं से शतृ प्रत्यय और आत्मनेपदी धातुओं से शानच प्रत्यय लगाए जाते हैं। अङ्गरेजी की क्रिया में ing लगाकर या हिन्दी में क्रिया के साथ 'ता हुआ' लगाकर जिन अर्थों का बोध होता है; उन अर्थों की प्रतीति संस्कृत में धातुओं के साथ शतृ और शानच् प्रत्यय लगाने से होती है।

शतृ और शानच् उभय प्रत्ययों से निम्नलिखित अर्थों का भास होता है:—

(क) अविच्छिन्नता = गच्छन् बालकः पतति।

(ख) स्वभाव या मनोवृत्ति=भोगं भुञ्जानः जीवः संसारे भ्रमति।

(ग) अवस्था या कोई मापदण्ड = शयानाः भुञ्जते यवनाः।

(घ) योग्यता—हरिं भजन् मुच्यते।

(ङ) क्षमता = इन्द्रियाणि जयन् योगी भवति।

शतृ और शानच् से बने हुए शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं। ये प्रत्यय किसी धातु में जुड़ कर उस धातु द्वारा बोधित वर्तमान काल की क्रिया की प्रतीति कराते हैं। प्रायः शत्रन्त शब्दों के रूप पुंल्लिङ्ग में धावन् के समान, स्त्रीलिङ्ग में नदी के समान और नपुंसकलिङ्ग में जगत् के समान होते हैं। शानच् प्रत्ययान्त शब्दों के रूप पुंल्लिग में देव के समान, स्त्रीलिङ्ग में लता के समान और नपुंसक लिङ्ग में फल के समान होते हैं।

अभ्यास

(क) शतृ प्रत्यय का प्रयोग कब होता है?

(ख) शानच् प्रत्यय का प्रयोग कब होता है?

(ग) शतृ और शानच् के योग से निष्पन्न शब्दों से किन किन अर्थों का भास होता है?

(घ) शत्रन्त और शानजन्त शब्दों में लिङ्ग, विभक्ति और वचन किन के अनुसार होते हैं?

(ङ) शतृ प्रत्ययान्त तथा शानच् प्रत्ययान्त शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में किन २ शब्दों के अनुसार होते हैं?

पाठ ३

क्त और क्तवतु

किसी भी धातु में इन प्रत्ययों के लगाने से भूतकाल की क्रिया के वाचक शब्द विशेषण बनते हैं। फलतः ये भूतकाल का बोध कराते हैं और धातुओं को विशेषण वाचक शब्द में परिणत भी कर देते हैं।

ऐसे विशेषण दो प्रकार के होते हैं :—एक सकर्मक धातुओं से कर्म-वाच्य में होता है और 'क्त' लगाकर बनाया जाता है। दूसरा कर्तृवाच्य में होता है और किसी भी धातु में 'क्तवतु' लगाकर बनाया जाता है। अकर्मक धातुओं में भी 'क्त' प्रत्यय लगता है किन्तु वह विशेषण नहीं होता है और उससे बना हुआ शब्द नपुंसक लिङ्ग में प्रयुक्त होता है।

कुछ अपवाद :—

(क) गत्यर्थक, अकर्मक, श्लिष् (आलिङ्गन करना) शीङ् (सोना) स्था (ठहरना) आस् (बैठना) वस् (रहना) जन् (पैदा होना) रुह् (उपजना) जॄ (जीर्ण होना) के साथ क्त प्रत्यय कर्तृवाच्य में भी होता है।

(ख) मन्, बुध् , पूज् के अर्थ वाले धातुओं में 'क्त' प्रत्यय वर्तमानकाल के अर्थ में भी लगाया जाता है और इसके योग में कर्तृपद षष्ठयन्त हो जाता है।

(ग) कभी-कभी क्त प्रत्यय नपुंसक लिङ्ग की भाववाचक संज्ञा बनाने के लिये प्रयुक्त होता है।

(घ) नपुंसक लिङ्ग में क्त प्रत्ययान्त शब्द कभी-कभी उस क्रिया से बोधित कार्य (Verbal Noun) के अर्थ में भी प्रयुक्त होते हैं।

'क्त' प्रत्यय के योग से बनने वाले शब्दों के रूप पुंलिङ्ग में 'देव' की तरह, स्त्रीलिङ्ग में 'लता' की तरह और नपुंसकलिङ्ग में फल की तरह होते हैं।

'क्त' के योग से बने हुए शब्दों के अन्त में 'वत्' जोड़ देने से 'क्तवतु' प्रत्ययान्त शब्द बनते हैं तथा उनके रूप पुंल्लिङ्ग में 'श्रीमत्' के समान, स्त्रीलिङ्ग में 'नदी' के समान और नपुंसकलिङ्ग में 'जगत्' के समान होते हैं।

अभ्यास

(क) क्त और क्तवतु के योग से किस प्रकार के शब्द बनते हैं ?
(ख) क्त तथा क्तवतु का प्रयोग किस काल में होता है ?
(ग) कर्मवाच्य में 'क्त' के प्रयोग होने से कर्त्ता तथा कर्म में कौन विभक्ति होती है ?
(घ) भाववाच्य में 'क्त' के प्रयोग होने से कौन लिङ्ग तथा वचन होते हैं ?
(ङ) क्तवतु का प्रयोग किस वाच्य में होता है ?
(च) कर्तृवाच्य में किन-किन धातुओं के साथ 'क्त' प्रत्यय का प्रयोग होता है ?
(छ) किन धातुओं के प्रयोग में कर्त्ता में तृतीया के बदले षष्ठी होती है ?
(ज) वर्तमान काल में 'क्त' का प्रयोग कब होता है ?
(झ) क्रियार्थक संज्ञा (Verbal Noun) के रूप में प्रयुक्त होने पर क्तान्त शब्दों में कौन लिङ्ग होता है ?
(ञ) क्त तथा क्तवतु प्रत्ययान्त शब्दों के रूप किन शब्दों के अनुसार होते हैं ?

पाठ ४

क्त्वा और ल्यप्

जब एक ही कर्त्ता कई क्रियाओं का सम्पादन करता है और जब एक क्रिया पहले हो चुकी रहती है और उसके बाद ही दूसरी क्रिया होती है तब पहले सम्पन्न हो जाने वाली क्रिया के वाचक धातु के साथ क्त्वा या ल्यप् प्रत्यय होता है।

क्त्वा प्रत्यय सभी धातुओं में जोड़ा जा सकता है किन्तु ल्यप् प्रत्यय केवल उन्हीं धातुओं में जुड़ता है जिनके पहले उपसर्ग लगा रहता है।

फलतः निष्कर्ष यही होता है कि क्त्वा प्रत्ययान्त या ल्यप् प्रत्ययान्त शब्द किसी पूर्ववर्त्ती या भूतकाल के बोधक होते हैं और इनका भी कर्त्ता वही होता है जो अनन्तरभाविनी प्रधान क्रिया का रहता है। इस लिये एक के बाद दूसरी क्रिया होने पर भी यदि दोनों का कर्त्ता भिन्न रहेगा तो 'क्त्वा' और ल्यप् का प्रयोग नहीं होता।

घटनाओं के वर्णन करते समय क्रिया के रूपों और समुच्चयवाचक अव्ययों के प्रयोग में लाघव लाने के लिये 'क्त्वा' और 'ल्यप्' बहुत काम देते हैं। हिन्दी में धातुओं के उत्तर 'कर' जोड़कर पूर्वकालिक क्रिया का प्रयोग क्त्वा और ल्यप् के अर्थ में किया जाता है।

उदाहरण :—'वहां जाकर या जब वह वहाँ गया तो उसने कुछ नहीं पाया' इसका संस्कृत में अनुवाद—'स तत्र गत्वा न किमपि प्राप्तवान्' यह होगा। इसी प्रकार 'हरि ने मोहन को देखा, बातें कीं, उसकी माता को प्रणाम किया और लौटा' इसका अनुवाद-हरिः मोहनं दृष्ट्वा संभाष्य तस्य मातरं नत्वा प्रत्यागतः। ऐसे स्थलों में अनेक क्त्वान्त और ल्यबन्त शब्दों के प्रयोग में स्वाभाविक क्रम की ओर अवश्य ध्यान रखना होगा। क्त्वा और ल्यप् प्रत्ययों के योग से बनने वाले शब्द अव्यय होते हैं।

अभ्यास

(क) क्त्वा तथा ल्यप् का प्रयोग कब होता है ?
(ख) क्त्वा तथा ल्यप् प्रत्ययों के प्रयोग में क्या मुख्य भेद है ?
(ग) क्त्वान्त और ल्यबन्त शब्दों के रूपों में विकार क्यों नहीं होता है ?
(घ) क्त्वान्त और ल्यबन्त शब्दों के प्रयोग से भाव-प्रकाशन में क्या लाघव होता है। कतिपय उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट करो ?

पाठ ९

तुमुन् प्रत्यय

जब एक क्रिया के लिये कोई दूसरी क्रिया की जाय तब जिस क्रिया के लिये दूसरी क्रिया होती है उस क्रिया के वाचक धातु में तुमुन् प्रत्यय लगता है। यथाः—रामं द्रष्टुं गच्छति = राम को देखने के लिये जाता है। यहां देखना और जाना दो क्रियायें हैं, जाने की क्रिया देखने के निमित्त होती है इसलिये देखना (दृश्) में तुमुन् जोड़कर 'द्रष्टुं' बनाया गया है।

निमित्त अर्थ को छोड़कर निम्नलिखित अवस्थाओं में भी तुमुन् का प्रयोग होता है :—

(क) शक्यार्थक धातुओं के योग में :—भोक्तुम् शक्नोति = खा सकता है।

(ख) ज्ञानार्थक धातुओं के योग में :—गातुं जानाति = गाना जानता है।

(ग) प्रयत्नार्थक धातुओं के योग में :—पठितुं यतते = पढ़ने का यत्न करता है।

(घ) सहार्थक धातुओं के योग में :—ग्रीष्मे बहिर्गन्तुं न सहे = गर्मी में बाहर जाने के लिये समर्थ नहीं होता।

(ङ) प्रार्थना और अभ्यर्थना के अर्थ में 'अर्ह' धातु के साथ तुमुन् का प्रयोग :—इदानीं वक्तुमर्हति भवान् = अब आप बोल सकते हैं।

(च) अस्ति, भवति, विद्यते के योग में भी तुमुन् का प्रयोग होता है :—भोक्तुमन्नमस्ति विद्यते वा = खाने के लिये अन्न है। भोक्तुम अन्नं भवति = खाने भर के लिये अन्न होता है।

(छ) पर्याप्त, समर्थ, योग्य इत्यादि अर्थों के वाचक शब्दों के योग

में भी तुमुन् होता है :—लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः = मस्तक में जो लिखा है उसे कौन मिटा सकता है ?

(ज) इच्छार्थक धातुओं के योग में :—भोक्तुम् इच्छति = खाना चाहता है।

(झ) आरम्भार्थक धातुओं के योग में :—पठितुम् आरभते=पढ़ना आरम्भ करता है।

(ञ) कालवाचक शब्दों के योग में :—भोक्तुं कालः, गन्तुं समयः, प्रस्थातु वेला समागता।

अभ्यास

(क) तुमुन् प्रत्यय का प्रयोग कब होता है ?

(ख) निमित्त अर्थ के अतिरिक्त और किन-किन अर्थों में 'तुमुन्' का प्रयोग होता है ? उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट करो।

अध्याय ११

पाठ १

तद्धित-विवेचन

शब्दों के परे जिन प्रत्ययों के लगाने से फिर शब्द बनते हैं, उनको तद्धित कहते हैं और जो शब्द बनते हैं वे तद्धितान्त शब्द कहाते हैं। तद्धित प्रत्यय बहुत हैं, उनमें से वे प्रत्यय लिखे जाते हैं जो अधिकतर प्रयुक्त होते हैं :—

अपत्य अर्थात् उसकी पुरुष या स्त्री सन्तान अर्थ में :—षण्, ष्यण् षीयण, षायनण्, षिण्, षिकण् और षेयण् प्रत्यय होते हैं। इनमें से ष और ण उड़ जाते हैं।

षण् :—पुत्रस्य अपत्यं पुमान्—पौत्रः। एवं शिवस्य अपत्यं पुमान्—शैवः। वसुदेवस्य अपत्यं पुमान्—वासुदेवः। पृथायाः अपत्यं पुमान्—पार्थः। सुमित्रायाः अपत्यं पुमान्—सौमित्रः। भरद्वाजस्य अपत्यं पुमान्—भारद्वाजः। कश्यपस्य अपत्यं पुमान्—काश्यपः। सरस्वत्याः अपत्यं पुमान्—सारस्वतः। रघोः अपत्यं पुमान्—राघवः। मनोः अपत्यं पुमान्—मानवः।

टिप्पणी :—'णित्' तद्धित प्रत्यय होने पर प्रायः आदि स्वर की वृद्धि होती है और तद्धित प्रत्यय के 'स्वरवर्ण' और 'य' परे रहने से शब्द के अ, आ, इ, ई का लोप हो जाता है और उ, ऊ रहने से गुण हो जाता है, जैसा कि ऊपर के उदाहरणों में स्पष्ट है। पदान्त य् और व् के पूर्व में ऐ और औ का आगम होता है।

ष्यण् :—गर्गस्यापत्यं—गार्ग्यः। चाणकस्यापत्यं-चाणक्यः। दितेरपत्यं—दैत्यः। अदितेरपत्यम्—आदित्यः। माधवस्यापत्यं—माधव्यः।

षीयण् :—स्वसुरपत्यं—स्वस्रीयः।

षायनण् :-बदरस्यापत्यं—बादरायणः। एवं नरस्य-नारायणः। दक्षस्य—दाक्षायणः। अश्वलस्य—आश्वलायनः। नडस्य-नाडायनः।

षिण् :—दशरथस्यापत्यं—दाशरथिः। एवं सुमित्रा—सौमित्रिः द्रोण—द्रौणिः। शूर—शौरिः।

षिकण् :—रेवत्याः अपत्यं—रैवतिकः। अश्वपाली—आश्वपालिकः

षेयण् :—गंगायाः अपत्यं—गांगेयः। विनता—वैनतेयः। राधा—राधेयः। भगिनी—भागिनेयः। कुन्ती—कौन्तेयः।

ऊपर वाले प्रत्यय अपत्य के अर्थ के अतिरिक्त अनेक विभिन्न-विभिन्न अर्थों में होते हैं। जैसे :—

(क) उसका भाव अथवा कर्म अर्थ में :—शिशोः भावः शैशवम्, गुरु—गौरवम्। लघु—लाघवम्, शुचि—शौचम, ऋजु—आर्जवम्, कुमार—कौमारम (षण्)।

चोर का भाव अथवा कर्म.—चौर्यम्, अलस का भावः—आलस्यं, वणिक् कर्म :—वाणिज्यं (ष्यण्)।

(ख) ये उसके देवता हैं इस अर्थ में :—शिवोऽस्य देवता शैवः। विष्णु इसके देवता हैं :—वैष्णवः। सूर्य इसके देवता हैं :—सौरः। सरस्वती इसकी देवता हैं :—सारस्वतः। बुद्ध इसके देवता हैं :—बौद्धः। जिन इसके देवता हैं :—जैनः (षण्)। अग्नि उसके देवता हैं :—आग्नेयः। (षेयण्)। प्रजापति उसके देवता हैं :—प्राजापत्यः (ष्यण्)।

(ग) 'समूह' अर्थ में :—बकों का समूह :—बाकम्। शुकों का समूह :—शौकम्। मयूरों का समूह :—मायूरम्। कपोतों (कबूतरों) का समूह :—कापोतम्। काकों (कौओं) का समूह :—काकम्। वृकों (हुड़ारों) का समूह :—वार्कम्। भिक्षाओं का समूह :—भैक्षम्।

(घ) उससे रँगा गया के अर्थ में ; काषाय रंग से रँगा हुआ :—काषायम्। हरा रंग से रंगा हुआ :—हारितम्।

(ङ) यह उसका है के अर्थ में :—चन्द्र उसका है—चान्द्रः। सूर्य उसका है :—सौरः। देव उसका है :—दैवः (षण्) साम्राज्य उसका है :—साम्राज्यम् (ष्यण्)। भ्रमर उसका है :—भ्रामरम्।

(च) उसके ईश्वर के अर्थ में :—पृथ्वी उसका ईश्वर है :—पार्थिवः। (वि) समूचे संसार के ईश्वर हैं :—सार्वभौमः।

(छ) वहाँ हुआ है के भाव में :—मथुरा में हुआ है—माथुरः। मगध में हुआ है :—मागधः। समुद्र में हुआ :—सामुद्रम्। हेमन्त में हुआ :—हैमन्तम् (षण्)। नगर में हुआ :—नागरिकः, वर्षा—वार्षिकः (षिकण्)। प्राची में हुआ :—प्राच्यम्, आदि—आद्यम् (ष्यण्)। वसन्त में हुआ :—वासन्तम्। अमावस्या में हुआ :—आमावस्यम् (षण्)।

(ज) उसने कहा है के अर्थ में :—ऋषि ने कहा :—आर्षम् (षण्)। मनु ने कहा :—मानवम्। वाल्मीकि ने कहा:—वाल्मीकीयम् (षीयण्)।

(झ) उसका विकार या उससे बना के अर्थ में :—सुवर्ण का बना—सौवर्णः। तेल का बना :—तैलम्। मिट्टी का बना :—मार्त्तिकम्। मूंग का बना :—मौद्गः।

(ञ) प्राणिवाचक और ओषधिवाचक शब्दों के बाद विकार तथा अवयव के अर्थ में :—मयूर का विकार :—मायूरः। मर्कट (बन्दर) का विकार :—मार्कटः।

(ट) नक्षत्र से युक्त काल के अर्थ में :—चित्रा से युक्त मास :—चैत्रः। विशाखा से युक्त मास:—वैशाखः। ज्येष्ठा से युक्त मास :—ज्येष्ठः। कृत्तिका से युक्त मास :—कार्तिकः आदि।

(ठ) उसने किया है के अर्थ में :—कायेन कृतम् :—कायिकम्। वचन से किया हुआ :—वाचिकम्। मन से किया हुआ :—मानसिकम्। साहस से किया हुआ :—साहसिकम्। अङ्ग से किया हुआ :—आङ्गिकम्—(षिकण्)।

(ड) उसको पढ़ता है या जानता है के अर्थ में :—व्याकरण पढ़ता है या जानता है :—वैयाकरणः (षण)। तर्क पढ़ता है अथवा जानता है :—तार्किकः। इतिहास पढ़ता है अथवा जानता है :—ऐतिहासिकः। पुराण पढ़ता है अथवा जानता है :—पौराणिकः। वेद पढ़ता है अथवा जानता है :—वैदिकः (षिकण्)।

(ढ) उसमें प्रवीण है के अर्थ में :—सभा में प्रवीण :—सभ्यः। ब्राह्मण में प्रवीण :–ब्राह्मण्यः (ष्यण्)। समाज में प्रवीण :–सामाजिकः। संग्रह में प्रवीण :—सांग्राहिकः (षिकण्)। अतिथि में प्रवीण :—आतिथेयः (षेयण्)।

(ण) उसके योग्य है के अर्थ में :—दण्ड के योग्य :—दण्ड्यः। वध के योग्य :—वध्यः। भेदन करने के योग्य :—भेद्यः (ष्यण्)।

(त) उसकी बेचने की चीज है के अर्थ में :—लवण को बेचने वाला :—लावणिकः। ताम्बूल (पान) को बेचने वाला :–ताम्बूलिकः। तेल को बेचने वाला—तैलिकः (षिकण्)।

(थ) यह उसकी उम्र है के अर्थ में :—इसकी दो वर्ष उम्र है :—द्विवार्षिकः। दो वर्ष का :—द्विवर्षीयः। पांच वर्ष का :—पंचवार्षः, पञ्चवर्षीयः, पञ्चवार्षिकः। ये क्रमशः षण्, षीयण् और षिकण् प्रत्ययों से बनते हैं। इस तरह द्विवर्षीणः, पञ्चवर्षीणः भी होता है।

(द) उससे अलग नहीं है के अर्थ में :—धर्म से अलग नहीं है :—धर्म्यम्, न्याय से अलग नहीं है :—न्याय्यम्, पथ्यम् (ष्यण्)। वैधं (षण्), शास्त्रीयं (षीयण्)।

(ध) उससे जीता है के अर्थ में :—वेतन से जीता है :—वैतनिकः जालिकः, नाविकः, व्यावहारिकः (षिकण्)।

(न) किसी को उद्देश्य करके लिखा गया ग्रन्थ के अर्थ में :–भगवान् के उद्देश्य से लिखा गया ग्रन्थ :–भागवतम् (षण्)। राम के उद्देश्य से लिखा गया ग्रन्थ :—रामायणम् (षायनण्)। किरातार्जुन के उद्देश्य से लिखा गया ग्रन्थ :—किरातार्जुनीयम् (षीयण्)।

(प) वहाँ उसका निवास स्थान है के अर्थ में :—उसका निवास स्थान मिथिला है :—मैथिलः, मागधः, वैदेहः (षण्)। इसी तरह राजा के अर्थ में भी होता है, मगधस्य राजा :—मागधः।

(फ) अपने के अर्थ में :—अपने बन्धु :—बान्धवः, रक्ष एव राक्षसः,

प्रज्ञ एव प्राज्ञः (षण्)। करुणा एव कारुण्यं, सैन्यं, सौख्यं, सामीप्यम् (ष्यण्)।

(ब) अन्यान्य अर्थों में भी यथासंभव ये प्रत्यय होते हैं। जैसे :—धर्म का आचरण करता है :—धार्मिकः। वश में हुआ :—वश्यः। द्वार पर नियुक्त किया हुआ :—दौवारिकः। रथ से चलता है :—रथिकः। वय (अवस्था) में समान :—वयस्यः। निमित्त से किया हुआ या दिया हुआ :—नैमित्तिकम् इत्यादि।

(२) भाव अर्थ में 'त्व' और 'तल्' प्रत्यय भी संज्ञाओं के आगे लगते हैं। जैसे :—प्रभोर्भावः प्रभुत्वं प्रभुता, गुरुत्वं गुरुता, लघुत्वं लघुता आदि।

टिप्पणी :—समूहार्थ में ग्राम, जन और बन्धु के परे तल् प्रत्यय होता है। जैसे :—जनानां समूहः जनता, ग्रामता, बन्धुता।

(३) भाववाची संज्ञा बनाने के लिए मृदु, महत, लघु, गुरु आदि शब्दों में इमनिच् प्रत्यय जोड़ा जाता है। इसका शेष 'इमन्' बचता है। जैसे :—पृथु + इमनिच्=प्रथिमन्। मृदु से म्रदिमन्। महत् से महिमन्। लघु से लघिमन्। गुरु से गरिमन्। दृढ से द्रढिमन्। मधुर से मधुरिमन्। शुक्ल से शुक्लिमन्। पीत से पीतिमन्। नील से नीलिमन्। रक्त से रक्तिमन्। अणु से अणिमन्। तनु से तनिमन्। कृश से क्रशिमन्।

टिप्पणी :—अर्थ शब्दान्त, प्रणय, सुख, दुःख, हस्त, कर आदि शब्दों से नित्य इन् होता है। जैसे :—विद्यार्थी, प्रणयी, सुखी, दुःखी, हस्ती, करी आदि।

(४) सादृश्य बोध होने से वति (वत्) होता है। जैसे :—चन्द्रमा के ऐसा मुख—चन्द्रवत् मुखम्। भ्राता के ऐसा—भ्रातृवत्। माता के ऐसा—मातृवत्। पशु के ऐसा—पशुवत्। मूर्ख के ऐसा—मूर्खवत्। (ये अव्यय होते हैं)।

(५) तारकादि शब्दों के परे 'वह हो गया है इसको' इस अर्थ में

(११) प्रकार बोध होने से शब्द के उत्तर धाच् प्रत्यय होता है। जैसे :—एक प्रकार से एकधा, द्विधा, त्रिधा, चतुर्धा, पञ्चधा, षड्धा या षोढा, कतिधा, बहुधा, अनेकधा।

(१२) प्रकार अर्थ में सर्वनाम के परे तृतीया विभक्ति में थाल् प्रत्यय होता है। जैसे :—सर्वैः प्रकारैः (सब प्रकार से) सर्वथा, येन प्रकारेण (जिस प्रकार से) यथा, तद्—तथा, उभय—उभयथा, अन्य—अन्यथा इत्यादि।

टिप्पणी—कथम् और इत्थम् निपातन से सिद्ध होते हैं।

(१३) पञ्चमी और सप्तमी विभक्ति के स्थान में तसिल् प्रत्यय होता है। जैसे :—गृहात् वा गृहे (घर से या घर में) गृहतः। तस्मात् वा तस्मिन् (उस स्थान से या उस स्थान में) ततः, यतः, अतः, कुतः, इतः, अस्मत्तः, सर्वतः, अभ्रतः, पूर्वतः इत्यादि।

(१४) युस्मदस्मद् शब्द भिन्न सर्वनाम और बहु शब्द की सप्तमी विभक्ति में त्रल् होता है। जैसे :—सर्वस्मिन्—सर्वत्र, एकत्र, कुत्र, अत्र, तत्र, बहुत्र इत्यादि। अन्यत्र पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे :—इदम्—इतः (पञ्चमी), इह (सप्तमी)।

(१५) काल बोध होने से सर्व, एक, अन्य, किम्, यद् और तद् शब्द से सप्तमी विभक्ति में विकल्प से दो प्रत्यय होता है। जैसे :—एकदा, सर्वदा (सदा), अन्यदा। किम् आदि के परे 'र्हि' भी होता है—कदा कर्हि, यदा यर्हि, तदा तर्हि-तदानीं और इदम् का 'इदानीम्' होता है।

(१६) अनिश्चय अर्थ बोध होने से विभक्ति उक्त 'किम्' शब्द से परे चित् और चन् प्रत्यय होते हैं। जैसे :—कश्चित् कञ्चित्, किञ्चित्, केचन, कस्मैचित्, कुत्रचित्, कुत्रचन, कदाचित् इत्यादि।

(१७) उत्पत्ति अर्थ बोध होने में काल वाचक अव्यय से परे तनस् (तन) प्रत्यय होता है। जैसे :—अद्यभवम्, अद्यतनं, प्रातस्तनं, सायन्तनं चिरन्तनं, पुरातनं, इदानीन्तनम् इत्यादि।

टिप्पणी :—उत्पन्न अर्थ में त्रल् आदि प्रत्ययान्त शब्दों से त्य प्रत्यय होता है। जैसे—कुत्र भवः कुत्रत्यः, कुतस्त्यः तत्रत्यः, अत्रत्यः।

(१८) दिन बोध होने से पूर्व आदि शब्दों के उत्तर एद्युस् होता है। जैसे :—पूर्वस्मिन्नहनि, पूर्वेद्युः, परेद्युः, अन्येद्युः, अपरेद्युः, उभयेद्युः।

(१९) दिवस बोध होने से विभक्ति सहित पूर्व शब्द के स्थान में 'ह्यः' समान शब्द के स्थान में 'सद्यः' इदम् के स्थान में 'अद्यः' पर के स्थान में 'श्वः' और 'परेद्यविः' आदेश होते हैं।

(२०) अभूततद्भाव (पहले नहीं था अब हुआ है) अर्थ में भू, अस् और कृ धातु के योग में च्वि होता है। जैसे :—अशुक्लः शुक्लो भवति, शुक्लीभवति, शुक्लीस्यात्, अशुक्लं शुक्लं करोतीति शुक्लीकरोति। गंगीकरोति, लघूकरोति, उच्चक्षूभवति, विरहीकरोति, विचेताकरोति इत्यादि।

टिप्पणी—अकारान्त और आकारान्त शब्दों के अन्त्य ह्रस्व स्वर का 'इ' होता है, ह्रस्व स्वरान्त शब्दों का दीर्घ होता है और अरुस्, मनस्, चक्षुस् , रहस् और रजस् शब्द के 'स' का लोप होता है।

(२१) अज्ञात, कुत्सित, अल्प, ह्रस्व, अनुकम्पा (दया) अर्थ में स्वार्थ में कन् होता है। जैसे :—अज्ञात—कस्यायमश्वः अश्वकः, गर्दभकः। कुत्सितः अश्वः—अश्वकः, महिषकः। अल्प—अल्पं तैलं तैलकम् , सलिलकम्। ह्रस्व—ह्रस्वो वृक्षो वृक्षकः, दण्डकः। अनुकम्पा—अनुकम्पितः पुत्रः पुत्रकः, दुर्बलकः आदि।

टिप्पणी—स्त्रीलिंग शब्दों के साथ क प्रत्यय होने से अन्त्य स्वर का ह्रस्व हो जाता है। जैसे :—काली—कालिका, दूती—दूतिका, मालवी—मालविका, यूथी—यूथिका, इत्यादि।

(२२) परिमाण अर्थ में शब्द के उत्तर मात्रच् प्रत्यय होता है। जैसेः—हस्तः प्रमाणमस्य हस्तमात्रं; तालमात्रं, जनुमात्रम् आदि।

(२३) परिणत (एकदम बदल जाना), अधीन और देय अर्थ में साति प्रत्यय होता है। जैसे :—धूलिरूपं करोति—धूलिसात करोति, राजाधीनं करोति—राजसात् करोति, विप्राय देयं—विप्रसात् इत्यादि।

(२४) परिमाण अर्थ में यद्, तद् और एतद् शब्द के उत्तर वतुप् प्रत्यय होता है और द का आ हो जाता है। जैसे :—यत् परिमाणमस्य यावत्, तावत्, एतावत् इत्यादि।

अभ्यास

(क) निम्नलिखित शब्दों के स्थान पर तद्धितान्त शब्दों को लिखो :—
व्याकरण जानने वाले। पिता के समान। सुमित्रा के पुत्र। विष्णु के भक्त। वर्ष भर। लड़कपन। कब। शक्ति का उपासक। धूलि के अधीन। दिति की सन्तान। गङ्गा का पुत्र। मयूरों का समूह। कषाय रंग से रँगा हुआ। सारी भूमि का ईश्वर। जो हेमन्त में हुआ है। मिट्टी का बना हुआ। कृत्तिका से युक्त मास। जो पुराण को जानता है। वध के योग्य। ताम्बूल बेचने वाला। जो द्वार पर नियुक्त है। मगध में रहने वाली नारी। मिथिला में रहने वाला नर। निमित्त से किया हुआ। जनों का समूह। क्षमा जिसमें है वह। मिट्टी का विकार। धूम से व्याप्त। कुत्सित अश्व।

(ख) निम्नलिखित शब्दों के प्रकृति-प्रत्यय बताकर अर्थ लिखो :—
जानुमात्रम्। कुत्रत्यः। अद्यतनम्। कुत्रचित्। तदा। तर्हि। इतः। यथा। चतुर्धा। स्वर्णमयी। विवेकी। भास्वान्। पिपासितः। चन्द्रवत्। रामायणम्। नाविकः। वयस्यः। न्याय्यः।

(ग) निम्नलिखित प्रत्ययों को जोड़कर पाँच-पाँच शब्द बनाओ :—
षण्, षिकण्, इमन्, इतच्, त्रल्, मयट्, मतुप्, विन् और था।

(घ) मतुप के मकार के स्थान में वाकार कब होता है? उदाहरण देकर समझाओ।

अध्याय १२

पाठ १

समास–प्रकरण

समास का अर्थ संक्षेप और व्यास का अर्थ विस्तार होता है। श्रम-लाघव के लिये समास के द्वारा पदसमूह को छोटा कर दिया जाता है। कृदन्त, तद्धितान्त, समास, एकशेष और सन् आदि प्रत्ययान्त धातुरूप ये पांच संस्कृत व्याकरण में 'वृत्ति' कहलाते हैं। चाहे इनमें से कोई भी ले लिया जाय इनमें समुदाय में ही अर्थ बतलाने की शक्ति मानी जाती है, पदों में अलग-अलग नहीं। इस शक्ति का पारिभाषिक नाम 'सामर्थ्य' है और यह दो प्रकार की होती है।

(१) पृथक् पृथक् अर्थ वाले पदों में समुदायशक्ति से एकार्थ की उपस्थिति के द्वारा दूध में मिले हुए पानी के समान विशेष्य-विशेषणभाव के रूप में मिले जुले अर्थ को बतलाने वाली शक्ति का नाम एकार्थीभाव* है।

(२) अपने-अपने अर्थों को बतलाने वाले पदों का 'आकाङ्क्षा' आदि के द्वारा एक पद के अर्थ के साथ सम्बन्ध कायम कराने वाली दूसरी शक्ति का नाम 'व्यपेक्षा'† है। यह दूसरी शक्ति वाक्य में मानी जाती है। इनमें एकार्थीभाव की तरह मिले-जुले अर्थ की उपस्थिति या प्रतीति नहीं होती है, केवल आकांक्षा आदि के कारण एक अर्थ का दूसरे अर्थ के साथ सम्बन्धमात्र स्थापित हो जाता है। इसके बिना किसी भी वाक्य के अर्थ को पूर्ण रूप से नहीं समझा जा सकता है इसलिये यह शक्ति वाक्य में ही

* स्वार्थपर्यवसायिनां पदानां विशिष्टैकार्थोपस्थितिजनकत्वम् एकार्थीभावत्वम्।

† स्वार्थपर्यवसायिनां पदानाम् आकाङ्क्षादिवशात् यः परस्परसम्बन्धः सा व्यपेक्षा।

मानी जाती है। समास के लिए तो उसमें सामर्थ्य का रहना आवश्यक है जिसे ऊपर एकार्थीभाव के नाम से बतलाया गया है।

समास पाँच प्रकार के होते हैं। (१) केवल समास (२) अव्ययीभाव (३) तत्पुरुष (४) बहुव्रीहि (५) द्वन्द्व। तत्पुरुष का ही एक भेद 'कर्मधारय' है और उसी का विशेष 'द्विगु' है।

अव्ययीभाव

(१) पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावः—जिस समास में पूर्व पदार्थ की प्रायः प्रधान रूप से प्रतीति हो उसे अव्ययीभाव समास कहते हैं किन्तु अव्ययीभाव समास वाले 'शाकप्रति' 'उन्मत्तगङ्गम्' आदि पद इस लक्षण में नहीं घटित होते हैं क्योंकि पहले में उत्तर पद और दूसरे में अन्य पद प्रधान है।

(क) अव्ययीभाव समास में समस्त पद नपुंसक होता है। जैसे:—उपकृष्णम्।

(ख) नपुंसक होने से प्रातिपदिक (शब्द) का अन्त्य स्वर ह्रस्व हो जाता है। ए, ऐ का इ और ओ, औ का उ होता है। जैसे:—निर्मक्षिकम्, आरि, आनु, उपगु आदि।

(ग) अव्ययीभाव समास में सुप् का लुक् होता है। जैसे—यथाशक्ति आदि।

(घ) अकारान्त अव्ययीभाव से परे सुप् का लुक् नहीं होता, किन्तु पञ्चमी को छोड़ कर सब विभक्ति के स्थान में अम् (म्) हो जाता है। जैसे:—उपकृष्णम्। पञ्चमी में:—उपकृष्णात् गतो हरिः—कृष्ण के पास से हरि गया।

(ङ) अव्ययीभाव समास में अकारान्त शब्द के पर स्थित तृतीया और सप्तमी में विकल्प से (म्) होता है। जैसे:—उपकृष्णं उपकृष्णेन वा कुरु, उपकृष्णं, उपकृष्णे वा वसति।

(च) अव्ययीभाव समास में सह शब्द के सह का स हो जाता है। जैसेः—सहरि, सचक्रं, सतृणं, साग्नि किन्तु कालबोध होने से नहीं होता। जैसे :—सहपूर्वाह्णम्।

सामीप्य, समृद्धि, व्यृद्धि, अभाव, पश्चात्, योग्यता, वीप्सा (बारम्बार), अनुक्रम, सादृश्य, साकल्य (सम्पूर्णता), अनतिक्रम, पर्यन्त, अत्यय, यौगपद्य (एक काल में) आदि अर्थों में वर्तमान अव्ययों का सुबन्त पद के साथ अव्ययीभाव समास होता है और जिस अर्थ में यह समास होता है उसी अर्थानुसार अव्यय का पूर्वनिपात होता है। जैसे :—कृष्णस्य समीपम्=उपकृष्णम्। व्याकरण में इनके उदाहरणों को विस्तारपूर्वक देखिये।

विशेष प्रयोग

(क) आङ्मर्यादाभिविध्यो :—मर्यादा (सीमा) या अभिविधि (व्याप्ति) बोध होने से सुबन्त पद का 'आ' अव्यय के साथ विकल्प से समास होता है। जैसे :—आवनम् आवनात् वा दृष्टो देवः (वनपर्यन्तं वनमभिव्याप्य इत्यर्थः), आमुक्ति आमुक्तेः वा संसारः (मुक्ति-पर्यन्त संसारबन्धनमस्तीत्यर्थः)।

(ख) आभिमुख्य बोध होने से लक्षणबोधक (जिसके अभिमुख जाता हो तद्वाचक) सुबन्त पद के साथ अभि और प्रति अव्ययों का विकल्प से समास होता है। जैसे :—अग्निम् अभि अभ्यग्नि, अग्निं प्रति प्रत्यग्नि (शलभाः पतन्ति)।

(ग) षष्ठ्यन्त पद के साथ पार और मध्य शब्द का विकल्प से अव्ययीभाव समास और एकार निपातन से होता है। जैसे :—समुद्रस्य पारं पारेसमुद्रम्, गङ्गाया मध्यं मध्येगङ्गम्। षष्ठी तत्पुरुष में गङ्गामध्यम, समुद्रपारम् सही होगा।

(घ) प्रति, परि, सम् और अनु के परे अक्षि शब्द रहने से वह अकारान्त हो जाता है। जैसे :—अक्ष्णोः प्रति=प्रत्यक्षम्, अक्ष्णोः परं=परोक्षम्, अक्ष्णोः समीपं=समक्षम्, अक्ष्णोः पश्चात्= अन्वक्षम्।

(ङ) अव्ययीभाव समास में अन् भागान्त शब्द के अन् के स्थान 'अ' होता है। जैसे :—आत्मानमधिकृत्य वा आत्मनि=अध्यात्म अध्वानं प्रति प्रत्यध्वम् , राज्ञः समीपम् उपराजम् ।

अभ्यास

(क) निम्न प्रयोगों में समस्त पद बताओ :—

मक्षिकाणामभावः। आबालात्। चर्म्मणः समीपम्। यमुना मध्यम्। हरिमधिकृत्य। देवतामनतिक्रम्य। भवस्य अत्ययः। पी नामभावः। पण्डितानां पश्चात्। वृक्षं-वृक्षं प्रति। मक्षिकामपरित्यज कृष्णस्य समीपम्। गङ्गायाः अनु। देवैः सह।

(ख) विग्रह बतलाओ :—

परोक्षम्। सचक्रम्। अनुरूपम्। आसमुद्रम्। सहरि। प्रत्येकम् परोक्षम्।

पाठ २

तत्पुरुष समास

जिस समास में उत्तर पद का अर्थ प्रधान हो, उसे तत्पुरुष कहते हैं इसमें द्वितीयादि विभक्त्यन्त पद पूर्व में आते हैं। जैसे :—राज्ञः पुरुष राजपुरुषः। राज्ञः पुत्री=राजपुत्री।

तत्पुरुष समास में पूर्व पद अर्थानुसार द्वितीया, तृतीया, चतु पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी इनमें से किसी एक विभक्ति का रहता है अ उत्तर (पर) पद प्रथमान्त रहता है। इस प्रकार द्वितीयादि क्रम से होता है तत्पुरुष समास छ प्रकार का होता है। उदाहरण क्रमशः नीचे लिखे जाते हैं

(१) द्वितीया तत्पुरुष :—पूर्व पद द्वितीयान्त हो तो द्विती

तत्पुरुष होता है। जैसे :—कष्टं श्रितः = कष्टश्रितः, विस्मयम् आपन्नः = विस्मयापन्नः, बाधामतीतः = बाधातीतः, अन्नं बुभुक्षुः = अन्नबुभुक्षुः, वेदं विद्वान् = वेदविद्वान्, ग्रामं गमी = ग्रामगमी, गृहं गतः = गृहगतः, शिवमाश्रितः = शिवाश्रितः; शरणं प्राप्तः = शरणप्राप्तः। मुहूर्त्तं सुखं = मुहूर्त्तसुखं, मुहूर्त्तं व्याप्येत्यर्थः। मासं भोग्यः = मासभोग्यः = मासं व्याप्येत्यर्थः। मालामतिक्रान्तः = अतिमाल; वेलामतिक्रान्तः = अतिवेलः।

(२) तृतीया तत्पुरुष :—पूर्वपद तृतीयान्त होने से तृतीया तत्पुरुष होता है। जैसे :—सुखेन युक्तः = सुखयुक्तः, खड्गेन हतः = खड्गहतः, पुत्रेण देयं = पुत्रदेयम्, अग्निना दग्धः = अग्निदग्धः, श्रमेण रहितः = श्रमरहितः, विद्यया हीनः = विद्याहीनः, मदेन शून्यः = मदशून्यः, अङ्गेन विकलः = अङ्गविकलः, पित्रा समः = पितृसमः, मासेन पूर्वः = मासपूर्वः, धान्येन अर्थः = धान्यार्थः।

(३) चतुर्थी तत्पुरुष :—पूर्वपद में चतुर्थी विभक्ति होने से चतुर्थी तत्पुरुष होता है। जैसे :—ज्ञानाय अध्ययनम्—ज्ञानाध्ययनम्, धनाय लोभः = धनलोभः, कुण्डलाय हिरण्यम् = कुण्डलहिरण्यम्, यूपाय दारु = यूपदारु, भूताय बलिः = भूतबलिः (प्राणियों के निमित्त उपहार), गवे हितम् = गोहितम्, भ्रात्रे सुखम् = भ्रातृसुखम्।

(४) पञ्चमी तत्पुरुष :—पूर्वपद पञ्चम्यन्त होने से पञ्चमी तत्पुरुष होता है। जैसे :—चौरात् भयं = चौरभयम्, वृक्षात् पतितः = वृक्षपतितः, व्याघ्रात् भीतः = व्याघ्रभीतः, गृहात् निर्गतः = गृहनिर्गतः, रोगात् मुक्तः = रोगमुक्तः, विदेशात् आगतः = विदेशागतः इत्यादि।

(५) षष्ठी तत्पुरुष :—पूर्वपद षष्ठयन्त होने से षष्ठी तत्पुरुष होता है। जैसे :—राज्ञः पुरुषः = राजपुरुषः, सुवर्णस्य कङ्कणम् = सुवर्णकङ्कणम्, तस्य पुत्रः = तत्पुत्रः, मम हस्तौ = मद्धस्तौ, देवस्य पूजा = देवपूजा, सुखस्य भोगः = सुखभोगः, वृक्षाणां शाखा = वृक्षशाखा इत्यादि।

षष्ठी तत्पुरुष समास में राजा पर्याय और रक्षः पिशाचादि पूर्व
सभा शब्द अकारान्त नपुंसक होता है। जैसेः—प्रभोः सभा = प्रभुस-
भम्, ईश्वरस्य सभा = ईश्वरसभम्, रक्षसां सभा = रक्षःसभम्
परन्तु राजसभा, चन्द्रगुप्तसभा, देवसभा, आदि में नहीं होता।

तत्पुरुष में सेना, सुरा, छाया, शाला और निशा शब्द विकल्प से
अकारान्त नपुंसक होते हैं। जैसे :-ब्राह्मणसेनं वा ब्राह्मणसेना, यवसुरं
वा यवसुरा, वटच्छायम् वा वटच्छाया, गोशालं वा गोशाला।
श्वनिशं वा श्वनिशा।

(६) सप्तमी तत्पुरुषः— पूर्वपद में सप्तमी विभक्ति होने से सप्तमी
तत्पुरुष होता है। जैसे :-रणे निपुणः = रणनिपुणः, कार्ये कुशलः =
कार्यकुशलः, जले मग्नः—जलमग्नः आतपे शुष्कः = आतपशुष्कः।

ऋणबोध होने से कृत्य प्रत्यय से बने हुए पद के साथ सप्तम्यन्त
पद का समास होता है। जैसे :—मासे देयम् = मासदेयम्, वर्षे
परिशोध्यम् = वर्षपरिशोध्यम्।

क्त प्रत्यय निष्पन्न शब्द के साथ दिन और रात्रि के अवयव बोधक
सप्तम्यन्त पद का समास होता है। जैसे :-पूर्वाह्णे कृतम् = पूर्वाह्णकृतम्,
अपररात्रे कृतम् = अपररात्रकृतम्। (क्तेनाहोरात्रावयवाः)

अभ्यास

(क) निम्न प्रयोगों में समस्त पद लिखो :—

गृहात् निर्गतः, वाचि पटुः, तव आश्रितः, पादाभ्यां ताडितः, कविषु
श्रेष्ठः, गवे हितम्, शाखायाम् आसीनः, मशकाय धूमः, जलं पिपासुः,
पुस्तकस्य प्रबन्धस्य पाठः, प्रस्तरस्य खण्डे उपविष्टः, पाटलिपुत्रात् आगतः,
राज्ञां सभा।

पाठ ३

विशेषणं विशेष्येण कर्मधारयः—विशेषण और विशेष्य का जो समास होता है उसे कर्मधारय कहते हैं। इसमें विशेषण पूर्व में रहता है। जैसे :—नीलम् उत्पलं = नीलोत्पलं, मधुरं वचनं = मधुरवचनम्, सुन्दरः पुरुषः = सुन्दरपुरुषः, भूषितः बालकः = भूषितबालकः, प्रियः सखा = प्रियसखः इत्यादि।

(क) कर्मधारय समास में जो शब्द पुंल्लिङ्ग से स्त्रीलिङ्ग बना हो और पूर्वपद में हो तो पुंल्लिङ्ग हो जाता है। जैसे :—मधुरा प्रकृतिः = मधुरप्रकृतिः, सुन्दरी नारी = सुन्दरनारी, पञ्चमी कन्या = पञ्चमकन्या, पाठिका स्त्री = पाठकस्त्री, सती प्रवृत्तिः = सत्प्रवृत्तिः जीर्णा नौका = जीर्ण-नौका इत्यादि।

(ख) विशेष्य रहने पर कर्मधारय और बहुव्रीहि समास में महत् शब्द का महा आदेश हो जाता है। जैसे :—महान् देवः = महादेवः, महती नदी=महानदी, महत्फलं=महाफलम् आदि। बहुव्रीहि में—महत् यशो यस्य सः = महायशाः, महान् आशयो यस्य सः = महाशय इत्यादि।

(ग) किम् शब्द के साथ निन्दा अर्थ में कर्मधारय होता है। जैसे:—किंसखा, किंभृत्यः, किंप्रभुः, निन्दित इत्यर्थः।

(घ) विशेषण का भी विशेषण के साथ समास होता है। जैसे :—नीलश्चासौ लोहितः = नीललोहितः, पीतश्चासौ लोहितः = पीत-लोहितः (वर्णवाचक शब्द में) पूर्वं सुप्तः पश्चात् उत्थितः = सुप्तो-त्थितः, पीतप्रतिबद्धः, यातायातः, दत्तापहृतम् (पूर्वोत्तर काल बोध होने से) कृतञ्च तत् अकृतञ्च = कृताकृतम्, पीतञ्च अपीतञ्च = पीतापीतम् (नञ् सहित और नञ् रहित क्त प्रत्ययान्त के साथ)। इसके अतिरिक्त भी होता है जैसे :—बकः परधार्मिक आदि।

(क) **रूपक कर्मधारयः**—एक पदार्थ को दूसरे एक पदार्थ से

अभिन्न मानकर जो समास होता है उसे रूपक कर्मधारय कहते हैं। इस समास के विग्रह करने में 'एव' का प्रयोग अवश्य होता है। जैसे :—दुःखमेव समुद्रः = दुःखसमुद्रः, रोदनमेव बलं = रोदनबलम्, कमलमेव मुखम् = कमलमुखम्। इन उदाहरणों में 'दुःखं', रोदनं', 'कमलं', इन पदार्थों को 'समुद्रः' 'बलम्' 'मुखम्' मान लिया है। अर्थात् पूर्वोक्त पदार्थों की उपर्युक्त पदार्थों से अभिन्न कल्पना कर ली है।

(ख) उपमान कर्मधारयः—उपमान (जिससे उपमा दी जाय वह) और उपमेय (जिसको उपमा दी जाय वह) के सामान्य (साधरण धर्म) बोधक पद के साथ उपमानवाचक पद का जो समास होता है उसे उपमान कर्मधारय कहते हैं। जैसे :—घन इव श्यामः—घनश्यामः (श्रीकृष्ण), नवनीतमिव कोमलं = नवनीतकोमलम् (चरण आदि), शङ्ख इव पाण्डुरः=शङ्खपाण्डुरः (देह आदि), मृगाः इव चपलाः=मृगचपलाः (बालिका आदि), अनल इव उज्ज्वलः = अनलोज्ज्वलः (पीत अम्बर आदि), अर्णव इव गम्भीरः = अर्णवगम्भीरः (सज्जन) इत्यादि। इन उदाहरणों में घन आदि उपमान, श्रीकृष्ण आदि उपमेय (क्योंकि घनश्याम आदि से श्रीकृष्ण आदि का बोध होता है) और श्यामता आदि साधारण धर्म हैं। क्योंकि यह धर्म उपमान और उपमेय दोनों में है। इसलिये उपमानों और साधारण धर्मबोधक पदों के साथ समास हुआ।

(ग) उपमित कर्मधारयः—सामान्य धर्मबोधक पदों के प्रयोग न होने पर व्याघ्र प्रभृति उपमानवाचक पदों के साथ उपमेयवाचक पदों का जो समास होता है उसका नाम उपमितकर्मधारय है; जैसे :—

(१) उपमानवाचक पद के परे होने पर :–पुरुषः व्याघ्र इव=पुरुषव्याघ्रः, नरशार्दूलः नृसिंहः, वदनसुधाकरः; करकिसलयम्, अधरपल्लवः इत्यादि।

(२) पूर्व में उपमानवाचक शब्द होने पर :—चन्द्र इव मुखं= चन्द्रमुखं, कमलाननं, पद्मपलाशलोचनं, कमलचरणम् इत्यादि। पूर्व पर का कोई नियम नहीं है।

अभ्यास

(क) निम्न स्थलों में समस्तपद लिखो :—

महती कीर्तिः, दिग्वासाः हरः, गच्छन्ती बालिका, महान् राजा, मृद्वी लता, मुखं पद्ममिव, चरणं कमलमिव, तपः एव धनम्, देह एव पिञ्जरम्, श्रीमान् नृपतिः, निकटवर्तिनी नदी, राजा शार्दूल इव ।

(ख) विग्रह बताओः—महाफलम् । नीलगगनम् । पीताम्बरम् । चन्द्रमुखम्। नवनीतकोमलम् । घनश्यामः। सन्नारी। सद्बुद्धिः।

पाठ ४

द्विगु समास

संख्या पूर्व में रहने से जो कर्मधारय समास होता है उसे द्विगु कहते हैं। समास करने पर संख्या पूर्व में रहती है।

द्विगु समास तीन प्रकार का होता है :—(१) समाहार, (२) तद्धितार्थक और (३) उत्तरपद परक ।

(१) समान विभक्तियुक्त पद के साथ संख्या का जो समास होता है वह समाहार द्विगु है। समाहार द्विगु से जो पद बनता है वह नपुंसक और एकवचनान्त होता है। जैसे :—पञ्चानां गवां समाहारः = पञ्चगवम् , पञ्चानां पात्राणां समाहारः=पञ्चपात्रम् , इत्यादि ।

अदन्त उत्तरपद वाले समाहार द्विगु में स्त्रीलिंग होता है और अन्त में ई जुटता है। जैसे :—त्रयाणां लोकानां समाहारः=त्रिलोकी, सप्तानां शतानां समाहारः = सप्तशती, षट्पदी, दशशती, त्रिवेदी इत्यादि । किन्तु भुवनादि शब्दान्त द्विगु स्त्रीलिंग नहीं होता। जैसे :—त्रयाणां

भुवनानां समाहारः त्रिभुवनम्, पञ्चपात्रम्, चतुर्युगम्, चतुर्भद्रम् इत्यादि।

जब द्विगु समास तद्धितार्थ से युक्त होता है तब वह तद्धितार्थ द्विगु होता है। जैसे:—पञ्चभिः गोभिः क्रीतः = पञ्चगुः, पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः = पञ्चकपालः।

जहां द्विगु समास में कोई उत्तर पद वर्तमान रहे और तब समास हो तो वह उत्तरपद द्विगु कहलाता है। जैसे:—पञ्च हस्ताः प्रमाणमस्य = पञ्चहस्तप्रमाणः, द्वाभ्यां मासाभ्यां जातः = द्विमासजातः, पञ्च नावः प्रियाः यस्य = पञ्चनावप्रियः आदि।

अभ्यास

(क) विग्रह करोः—
त्रैमातुरः, चतुर्वेदी, त्रिशब्दानुशासनः, चतुर्दिगीशान्, पञ्चगवधनः, दशसहस्री, चतुष्पदी।

(ख) निम्न वाक्यों में समस्त पद लिखो:—
पञ्चानां नलानां समाहारः। षण्णां पदानां समाहारः। चतुर्णां युगानां समाहारः।

(ग) द्विगु समास के कितने भेद होते हैं? सोदाहरण लक्षण लिखो

पाठ ९

बहुव्रीहि

जिस समास में अन्य पद के अर्थ की प्रधानतः प्रतीति हो उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं।

१ समानाधिकरण, २ तुल्ययोग, ३ व्यधिकरण और ४ व्यतिहार के भेद से बहुव्रीहि चार प्रकार का होता है।

(क) समस्यमान दोनों पदों में समान विभक्ति होने से समानाधिकरण बहुव्रीहि होता है। जैसे :—आरूढः वानरः य स आरूढवानरः (वृक्षः), पराजिताः शत्रवो येन स पराजितशत्रुः (राजा), दत्तं धनं यस्मै स दत्तधनः (दरिद्रः), निर्गतं भयं यस्मात् स निर्भयः (पुरुषः), महान् आशयो यस्य स महाशयः (सज्जनः), विमलाः आपो यस्मिन् तत् विमलापं (सरः) इत्यादि।

समासान्त पद के विशेषण होने से विशेष्य ही के लिङ्ग वचन और विभक्ति होती है। जैसे :—निर्मलं जलं यस्याः सा निर्मलजला (नदी) इसमें जल शब्द नपुंसक होने पर भी नदी का विशेषण होने के कारण स्त्रीलिंग हो गया। और क्रियाविशेषण होने से द्वितीया एकवचन होता है; जैसे :—स निर्भयं वदति।

स्त्रीलिंग शब्द के परे रहने से भाषितपुंस्क स्त्रीलिंग शब्द का पुंवद्भाव होता है। जैसे :—भग्ना शाखा यस्य स भग्नशाखः, स्थिरा मतिः यस्य स स्थिरमतिः, सुरूपा भार्या यस्य स सुरूपभार्यः इत्यादि।

(ख) तृतीयान्त पद के साथ सह शब्द का जो समास होता है वह तुल्ययोग बहुव्रीहि कहलाता है जिसमें विकल्प से सह का 'स' आदेश होता है। जैसे :—बान्धवैः सहितः सबान्धवः, अनुजेन सहितः सानुजः सहानुजो वा, विनयेन सह वर्तमानं सविनयम्, आदि।

गोत्र आदि शब्दों के परे रहने से समान के स्थान में स होता है। जैसे समानं गोत्रं यस्य स सगोत्रः, सरूपः, सपक्षः, सबन्धुः आदि।

(ग) जिसमें भिन्न विभक्ति का पद हो वह व्यधिकरण बहुव्रीहि है। जैसे :—कुशा हस्ते यस्य स कुशहस्तः, पापे मतिः यस्य स पापमतिः, धनुः पाणौ यस्य स धनुष्पाणिः, कुम्भात् जन्म यस्य स कुम्भजन्मा आदि।

बहुव्रीहि समास में संज्ञा बोध होने से नाभि शब्द अकारान्त हो जाता है। जैसे :—पद्मं नाभौ यस्य स पद्मनाभः ऊर्णनाभः आदि।

(घ) परस्पर युद्ध बोध होने से व्यतिहार (समानरूप) तृतीयान्त और सप्तम्यन्त पद में जो समास होता है उसे व्यतिहार बहुव्रीहि कहते हैं। पूर्वपद के अन्त स्वर को दीर्घ और पर पद के अन्त में 'इ' हो जाता है। जैसे :—केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तं केशाकेशि, दण्डैश्च

दण्डैश्च प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तं दण्डादण्डि, मुष्टीमुष्टि, बाहूबाहवि आदि।

बहुव्रीहिसमास के कतिपय विशेष प्रयोग

शोभनं हृदयं यस्य असौ = सुहृत् (मित्र), दुष्टं हृदयम् यस्य असौ= दुर्हृत् (शत्रु), शोभनं प्रातरस्य = सुप्रातः, शोभनं दिवा अस्य=सुदिवः, यातुं कामो यस्य सः = यातुकामः, स्थातुं मनो यस्य सः = स्थातुमनाः, दशानां समीपे ये सन्ति ते=उपदशाः, विंशतेः आसन्नाः = आसन्नविंशाः, त्रिंशतः अदूरे = अदूरत्रिंशाः, चत्वारिंशतः अधिकाः=अधिकचत्वारिंशाः, द्वौ वा त्रयो वा = द्वित्राः, त्रयो वा चत्वारो वा = त्रिचतुराः, पञ्च वा षट् वा = पञ्चषाः, चत्वारः अस्राः अस्य = चतुरस्रम् (चौकोन), द्वयोर्दिशोः आपो यस्य तत् = द्वीपम् , अन्तर्गताः आपः यस्य तत् = अन्तरीपम्, समानः पतिर्यस्याः सा = सपत्नी, शुनः पदानि इव पदानि यस्य सः = श्वापदः (घातक पशु), क्षीरमुदकं यस्य सः = क्षीरोदः, दक्षिणस्याः पूर्वस्याश्च दिशोऽन्तरालं या दिक् सा = दक्षिणपूर्वा, पूर्वोत्तरा, दक्षिण-पश्चिमा, उत्तरपश्चिमा, उदके वासः यस्य सः = उदवासः, अपगतः शोको यस्मात् सः = अपशोकः, अनुगतः अर्थः यस्य सः=अन्वर्थः, अवि-द्यमानः पुत्रो यस्य सः = अपुत्रः, उन्नमितं मुखं येन सः = उन्मुखः, अधः कृतं मुखं येन सः = अधोमुखः, यथाभूतः अर्थो यस्य सः=यथार्थः, नास्ति अन्तो यस्य सः=अनन्तः, उत्कण्ठितं मनो यस्य सः = उन्मनाः, नष्टं धनं यस्य सः = निर्धनः, विचलितं मनो यस्य सः = विमनाः, उन्नता नासिका यस्य सः = उन्नसः, सुष्ठु दन्ताः यस्याः सा = सुदती ।

अभ्यास

(क) समस्त पद लिखो :—चक्रं पाणौ यस्य सः। शशी शेखरे यस्य सः। भग्नः मनोरथः यस्याः सा। स्थिरा मतिः यस्य तम्। दत्तं धनं यस्मै सः। भग्ना शाखा येषां ते।

(ख) विग्रह बताओ :—निर्मलजला। निर्लज्जः। वीतरागः। छिन्नबन्धनः। सबन्धुः। सपत्नः। घटजन्मा। दण्डादण्डि।

(ग) बहुव्रीहि समास के कितने भेद होते हैं ? सोदाहरण लक्षण लिखो।

पाठ ९

द्वन्द्व समास

चार्थे द्वन्द्वः—च (और) के अर्थ में वर्तमान अनेक सुबन्तों का जो समास होता है इसे द्वन्द्व समास कहते हैं। विग्रह करने के समय प्रत्येक शब्द के साथ च का प्रयोग होता है और समास होने पर उसका लोप होता है। जैसे :—रामश्च लक्ष्मणश्च = रामलक्ष्मणौ, शशश्च कुशश्च पलाशश्च = शशकुशपलाशाः आदि।

द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में पर पद का ही लिंग होता है। जैसे, वृक्षश्च लता च = वृक्षलते आदि।

द्वन्द्व समास तीन प्रकार का है–१. इतरेतर, २. समाहार ३. एकशेष।

(क) जिस समास में प्रत्येक पद के वचनानुसार समस्त पद के वचन निर्णीत हों और अन्तिम पद का लिंग हो वह इतरेतर द्वन्द्व है। जैसे, दिनञ्च यामिनी च = दिनयामिन्यौ, कन्दश्च मूलश्च फलञ्च = कन्दमूलफलानि आदि।

(ख) जिस समास में दो वा बहुत पदों का समाहार (एक जगह ठहरना) बोध हो वा प्रत्येक पद का अर्थ समष्टिभाव (सम्मिलित रूप) से प्रकाशित हो वहाँ समाहार द्वन्द्व होता है। समाहार द्वन्द्व में समस्त पद एकवचनान्त नपुंसकलिंग होते हैं। जैसे :—हस्तौ च पादौ च = हस्तपादम्, इत्यादि।

प्राणी के अंग, तूर्य (वाद्य) के अंग और सेना के अंगवाचक शब्दों में समाहार द्वन्द्व ही होता है। जैसे :—प्राणी के अंग–पाणी च पादौ च तेषां समाहारः = पाणिपादम्, करचरणम्, शिरोग्रीवम् आदि। तूर्य के अंग—भेरी च पटहश्च अनयोः समाहारः = भेरीपटहम्, शङ्खदुन्दुभि इत्यादि। सेना के अंग :—हस्तिनश्च अश्वाश्च एतेषां समाहारः = हस्त्यश्वम्, धनुःशरम् इत्यादि।

लिंगभेद होने से नदीवाचक, देशवाचक और नगरवाचक शब्दों में समाहार द्वन्द्व होता है। जैसे :—नदीवाचक—गंगा च शोणश्च =

गंगाशोणम, यमुनाब्रह्मपुत्रम्, ब्रह्मपुत्रचन्द्रभागम् आदि। देशवाचकः— कुरुश्च कुरुक्षेत्रश्च = कुरुकुरुक्षेत्रम्, कुरुजाङ्गलम् आदि। नगरवाचकः— मथुरा च पाटलिपुत्रश्च = मथुरापाटलिपुत्रम्, काशीप्रयागम् आदि।

जिनमें परस्पर नित्य विरोध होता हो उनमें समाहार द्वन्द्व होता है। जैसे := अहयश्च नकुलाश्च = अहिनकुलम्, गोव्याघ्रम्, काकोलूकम्, मार्ज्जारमूषिकम् इत्यादि। स्वाभाविक विरोध न होने से नहीं होता। जैसे :—देवाश्च असुराश्च = देवासुराः। इसमें स्वाभाविक विरोध नहीं है।

द्वन्द्व समास के कतिपय विशेष प्रयोग—द्यौश्च पृथिवी च = द्यावापृथिव्यौ, दिवस्पृथिव्यौ, द्यौश्च भूमिश्च = द्यावाभूमी, माता च पिता च=मातापितरौ, कुशश्च लवश्च = कुशलवौ, स्त्री च पुमान् च=स्त्रीपुंसौ, जाया च पतिश्च = जायापती दम्पती वा जम्पती (पतिपत्नी), वाक् च मनश्च = वाङ्मनसम्, ऋक् च साम च=ऋक्सामे, नक्तं च दिवा च = नक्तन्दिवम् (रात दिन), रात्रौ च दिवा च = रात्रिन्दिवम्, अक्षिणी च भ्रुवौ च = अक्षिभ्रुवम्, अहश्च रात्रिश्च = अहोरात्रः, अहश्च दिवा च= अहर्दिवम्, दाराश्च गावश्च=दारगवम्, ऋक् च यजुश्च=ऋग्यजुषम्, धेनुश्च अनड्वांश्च = धेन्वनडुहौ, अहश्च निशा च = अहर्निशम्।

(ग) एक विभक्ति होने से समास करने पर समानाकार के दो वा बहुत पदों में से एक ही रह जाता है। ऐसे समास को एकशेष द्वन्द्व कहते हैं जैसे :—वृक्षश्च वृक्षश्च—वृक्षौ, स च सा च=तौ, देवश्च देवश्च देवश्च= देवाः, फलञ्च फलञ्च = फले, लता च लता च लता च = लताः, आदि।

स्त्रीवाचक पद के साथ समास होने से पुरुषवाचक पद रह जाता है। जैसे :—ब्राह्मणश्च ब्राह्मणी च=ब्राह्मणौ, हंसी च हंसश्च=हंसौ, युवतिश्च युवा च = युवानौ आदि। समान शब्द न होने से नहीं होता। जैसे :— हंसश्च सारसी च=हंससारस्यौ, इनमें हंस सारस विभिन्न रूप हैं; इसलिये एकशेष नहीं हुआ।

स्वसृ शब्द के साथ भ्रातृ शब्द का और दुहितृ शब्द के साथ पुत्र

ब्द का समास होने से भ्रातृ और पुत्र शब्द रह जाते हैं। जैसे:—भ्राता
च स्वसा (बहन) च—भ्रातरौ, पुत्रश्च दुहिता च—पुत्रौ।

मातृ शब्द के साथ पितृ शब्द का और श्वश्रू शब्द के साथ श्वशुर शब्द का समास होने से पिता और श्वशुर शब्द रह जाते हैं। जैसे :—माता च पिता च=पितरौ मातापितरौ वा। श्वश्रूश्च श्वशुरश्च=श्वशुरौ।

नपुंसकलिंग के साथ पुंल्लिङ्ग और स्त्रीलिंग का समास हो तो नपुंसकलिंग ही रहता है और एकवचन होता है। जैसे :—शुक्लश्च शुक्ला च शुक्लञ्च; शुक्लानि शुक्लं वा। नपुंसक ही होने से एकवचन नहीं होता। जैसे :—मधुरं च मधुरं च = मधुराणि।

अभ्यास

(क) समस्त पद लिखो :—देवश्च देवश्च। कथा च कथा च कथा च। भ्राता च स्वसा च। माता च पिता च। मधुरं च मधुरं च मधुरं च। कृष्णश्च शिवश्च। रामश्च लक्ष्मणश्च सीता च। दिनञ्च रात्रिश्च। हस्तौ च पादौ च। हस्तिनश्च अश्वाश्च तेषां समाहारः।

(ख) विग्रह बताओ :—शशकुशपलाशाः। कन्दमूलफलानि। पाणिपादम्। गङ्गाशोणम्। दम्पती। श्वशुरौ।

(ग) द्वन्द्व समास के कितने भेद होते हैं? सोदाहरण लक्षण लिखो।

पाठ ७

विशेष समास

(क) नित्य समास :—अर्थ शब्द के साथ चतुर्थ्यन्त पद का नित्य समास होता है। समास वाक्य में अर्थ शब्द का उल्लेख न करके इदम् शब्द का उल्लेख करते हैं। जैसे :—देवाय इदम् = देवार्थम्, दानाय इदम् = दानार्थम्, धनार्थम्, भिक्षार्थम् इत्यादि।

(ख) नञ् समास :—सुबन्त पद के साथ नञ् अव्यय का जो समास होता है वह नञ् समास है। व्यञ्जन परे रहने से 'नञ्' का 'अ' हो जाता है और स्वर परे रहने से 'अन्' हो जाता है। जैसे :—न प्रियः = अप्रियः,

न सुखम् = असुखम्, न दर्शनम्—अदर्शनम्, न उष्णम् = अनुष्णम्, न उपकारः = अनुपकारः, न अश्वः = अनश्वः—इत्यादि।

(ग) प्रादि समासः—सुबन्त के साथ प्रादि उपसर्गयुक्त कृदन्त पद का तथा 'कु' अव्यय का जो समास होता है वह प्रादि है। जैसे :—उत्क्रान्तो वेलाम् = उद्वेलः, कुत्सितः पुरुषः = कुपुरुषः।

तत्पुरुष समास में 'कु' का 'कत्' होता है। जैसेः—कुत्सितम् अन्नम् = कदन्नम्, कुत्सितः आचारः = कदाचारः आदि। ईषत् अर्थ में 'कु' का 'का' हो जाता है। जैसे :—ईषत् मधुरम् = कामधुरम्, ईषत् लवणम् = कालवणम्। पथिन् और अक्षि शब्द परे रहने से 'कु' का 'का' हो जाता है। जैसेः—कुत्सितः पन्थाः = कापथः, कुत्सिते अक्षिणी यस्य सः = काक्षः। पुरुष शब्द परे रहने से विकल्प से होता है। जैसेः—कुत्सितः पुरुषः = कुपुरुषः, कापुरुषो वा।

उष्ण शब्द परे रहने से 'कु' को 'का' 'कत्' और 'कव' आदेश होते हैं। जैसे—कुत्सितमुष्णं = कोष्णम्, कदुष्णम्, कवोष्णम् वा।

(घ) उपपद समासः—धातुओं के सहित उपपद (जिन सुबन्त पदों के परबर्ती धातुओं से कृत् प्रत्यय होते हैं वे पद) का जो समास होता है उसे उपपद समास कहते हैं। जैसे :—कुम्भं करोति इति—कुम्भकारः, तमः अपहन्ति = तमोपहः। इन दोनों पदों में 'कुम्भम्' और 'तमः' उपपद के साथ कृ और हन् धातु का समास करने पर 'कुम्भ-कृ' और 'तमः-अपहन्' इस प्रकार होने के बाद 'अण्' और 'अ' प्रत्यय करके उक्त रूप बने हुए हैं। इसी प्रकार आत्मम्भरिः, धनापहारी, दुःखभाक्, जलजम्, भुजङ्गमः, विहगः आदि पद बनते हैं।

(ङ) मध्यमपदलोपी समासः—मध्यमपदलोपी समास कर्मधारय और बहुव्रीहि में होता है। जैसे :—कर्मधारय में—शाकप्रियः पार्थिवः = शाकपार्थिवः, सिंहचिह्नितम् आसनम् = सिंहासनम्, देवपूजको ब्राह्मणः = देवब्राह्मणः, पञ्चाधिका दश = पञ्चदश, विन्ध्यनामा गिरिः = विन्ध्यगिरिः, छायाप्रधानः तरुः = छायातरुः आदि। कोई-कोई मध्यमपदलोपी कर्मधारय को शाकपार्थिवादि समास भी कहते हैं। बहुव्रीहि में :—चन्द्र

इव आननं यस्याः सा=चन्द्रानना, अभुक्तानि पर्णानि यया सा—अपर्णा (पार्वती), कण्ठे स्थितः कालो यस्य सः = कण्ठेकालः, शास्त्रज्ञानमेव धनं यस्य सः=शास्त्रज्ञानधनः, चन्द्रसहिता चूडा यस्य सः=चन्द्रचूडः, विगतः अर्थो यस्मात् सः = व्यर्थः, अनुगतः अर्थो यस्मिन् सः = अन्वर्थः, इत्यादि।

(१) अलुक् समास :—समास करने पर जहां पूर्वपद की विभक्ति का लोप नहीं होता वहाँ अलुक् समास होता है। कहाँ लोप होता है कहाँ नहीं होता, यह शिष्ट प्रयोगों से समझना चाहिये। नीचे लिखे स्थानों में विभक्तियाँ लुप्त नहीं होतीं :—

(क) तृतीया तत्पुरुष में :—पुंसानुजः, सहसाकृतम्, ओजसाकृतम्, मनसाकृतम्, अम्भसाकृतम्, तमसाकृतम्, मनसादत्ता, आत्मनापञ्चमः, आत्मनादशमः, हस्तिनापुरम् आदि।

(ख) चतुर्थी तत्पुरुष में :—आत्मनेपदम्, परस्मैपदम्।

(ग) पञ्चमी तत्पुरुष में :—स्तोकान्मुक्तः, कृच्छ्रान्निष्क्रान्तः, अल्पान्मुक्तः, अन्तिकादागतः, समीपादागतः, दूरादागतः।

(घ) षष्ठी तत्पुरुष में :—भ्रातुष्पुत्रः, दासस्यतनयः वाचोयुक्तिः, पश्यतोहरः, देवानाम्प्रियः, शुनःशेपः, शुनोलाङ्गूलम्, दास्याःपुत्रः, दिवोदासः, होतुःपुत्रः, होतुरन्तेवासी, पितुःपुत्रः, पितुरन्तेवासी, वाचस्पतिः, चौरस्यकुलम्, विशाम्पतिः।

(ङ) सप्तमी तत्पुरुष में :—युधिष्ठिरः, गेहेशूरः, शरदिजः, कण्ठेकालः, अन्तेवासी, कर्णेजपः आदि।

अभ्यास

(क) समस्त पद लिखो :—देशाय इदम्। न इच्छा। न शोभनम्। कुत्सितम् अन्नम्। शिलायां शेते इति। देवपूजकः ब्राह्मणः। छायाप्रधानः तरुः।

(ख) विग्रह बनाओ :—धनार्थम्। अनुत्सवः। कुपुरुषः। कदुष्णम्। जलजम्। भुजङ्गमः। सिंहासनम्।

(ग) अलुक् समास के पांच उदाहरण दो ?

अध्याय १३

पाठ १

वाच्य–विवेचन

क्रिया दो प्रकार की होती है। एक सकर्मक दूसरी अकर्मक। जिस क्रिया के व्यापार और फल अलग–अलग रहें, वह सकर्मक और जिस क्रिया के व्यापार और फल दोनों एक में रहें, वह अकर्मक है। जैसे :— बालकः पुस्तकं पठति. इस वाक्य में 'पठति' क्रिया का व्यापार 'बालकः' में है और पढ़ने का फल (पढ़ा जाना) पुस्तक में है इसलिये 'पठ्' धातु सकर्मक हुआ। शिशुः शेते, इस वाक्य में शयन की क्रिया और शयन–रूपी फल दोनों लड़के ही में हैं, इसलिये शीङ् धातु अकर्मक हुआ।

संस्कृत में प्रायः गमन, भोजन, देखना, पढ़ना, पूजना, बांधना, पाना, छोड़ना, जानना, चिन्तन करना आदि अर्थवाले धातु सकर्मक होते हैं।

लजाना, विद्यमान रहना, ठहरना, जागना, बढ़ना, क्षय होना, डरना, जीना, मरना, नाचना, सोना, रोना, वसना, स्पर्द्धा करना, कांपना, खेलना, रुचना, चमकना, हंसना, मुदित होना, प्रसन्न होना आदि अर्थ वाले धातु अकर्मक होते हैं।

इसके अतिरिक्त कितने ऐसे धातु हैं जिनके दो कर्म होते हैं, एक गौण और एक प्रधान। ऐसे धातु द्विकर्मक धातु कहलाते हैं। इनकी विशेष चर्चा कर्मकारक के अकथित कर्मवाले प्रकरण में देखना चाहिये।

धातुओं के इन्हीं सकर्मक–अकर्मक भेद के कारण संस्कृत में मुख्यतः तीन प्रकार के वाच्य होते हैं। कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य। कर्मकर्तृवाच्य नाम का एक चौथा वाच्य भी होता है। वाच्य अर्थ को कहते हैं। वाच्य के स्थान में प्रधान शब्द का भी प्रयोग होता है। जैसे :—कर्तृप्रधान, कर्मप्रधान, भावप्रधान आदि।

सकर्मक धातुओं से कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य होते हैं और अकर्मक धातुओं से कर्तृवाच्य और भाववाच्य होते हैं।

कर्तृवाच्य

कर्तृवाच्य के कर्त्ताकारक में प्रथमा विभक्ति तथा कर्मकारक (यदि हो) में द्वितीया विभक्ति होती है तथा क्रिया कर्त्ता के अनुकूल होती है; अर्थात् कर्ता के जो वचन और पुरुष होते हैं; वे ही वचन और पुरुष क्रिया में भी होते हैं। जैसे :—बालकः जलं पिबति = लड़का पानी पीता है। अहं चन्द्रं पश्यामि—मैं चन्द्रमा को देखता हूँ। ऊपर के प्रथम वाक्य में कर्ता 'बालकः' प्रथमा विभक्ति प्रथम पुरुष एक वचन है इस लिये क्रिया 'पिबति' प्रथम पुरुष एकवचन हुई तथा 'जलं' यह कर्म द्वितीया विभक्ति में। इसी तरह द्वितीय वाक्य में कर्ता 'अहम्' उत्तम पुरुष एकवचन है इस लिये क्रिया 'पश्यामि' उत्तम पुरुष एकवचन हुई तथा कर्म 'चन्द्रं' में द्वितीया विभक्ति हुई।

विशेष :—कृदन्तीय क्त, क्तवतु प्रत्ययों से भी कर्तृवाच्य होता है। क्त, क्तवतु प्रत्ययान्त कर्तृवाच्य की क्रियायें केवल कर्ता के लिङ्ग-वचन का ही अनुसरण करती हैं, पुरुष का नहीं। सब पुरुषों में उनका एक ही तरह का रूप होता है। जैसे :—स स्थितः, त्वं स्थितः, अहं स्थितः। सा ग्रामं गतवती। इस सम्बन्ध की विशेष बातें कृदन्त प्रकरण में मिलेंगी।

कर्मवाच्य

जहाँ सकर्मक धातुओं से कर्म में प्रत्यय होता है अर्थात् क्रिया के पुरुष और वचन कर्म के पुरुष और वचन के अनुकूल होते हैं उसे कर्मवाच्य कहते हैं। कर्मवाच्य के कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है और कर्मकारक में प्रथमा विभक्ति होती है। जैसे :—त्वं ग्रन्थम् पठसि (कर्तृवाच्य) त्वया ग्रन्थः पठ्यते (कर्मवाच्य) तू ग्रन्थ पढ़ता है या तुझसे ग्रन्थ पढ़ा जाता है। यहां कर्तृवाच्य के कर्त्ता 'त्वम्' की जगह पर 'त्वया' हो गया और 'ग्रन्थम्' द्वितीया एकवचन की जगह पर 'ग्रन्थः' प्रथमा एकवचन हो गया तदनुकल क्रिया प्रथम पुरुष एकवचन 'पठ्यते' हो गई। अहं त्वां पश्यामि (कर्तृवाच्य) मया त्वं दृश्यसे (कर्मवा०) मैं तुझे देखता हूँ या मुझसे तू देखा जाता है। स मां पश्यति (कर्तृवाच्य)

तेन अहं दृश्ये (कर्मवा०) = वह मुझे देखता है या उससे मैं देखा जाता हूँ। वयम् तान् पश्यामः (कर्तृवाच्य) अस्माभिः ते दृश्यन्ते (कर्मवा०)= हम उन्हें देखते हैं या वे हमसे देखे जाते हैं आदि ।

विशेष :—कृत् प्रत्ययान्त कर्मवाच्य में भी क्रिया केवल लिङ्ग और कारक में ही कर्म का अनुसरण करती है, पुरुष में नहीं। जैसे :—अहं त्वां दृष्टवान् (कर्तृवा०) मया त्वं दृष्टः (कर्मवाच्य)= मैंने तुझे देखा या मुझसे तू देखा गया। त्वम् मां दृष्टवान् (कर्तृवाच्य) त्वया अहं दृष्टः (कर्मवाच्य) तूने मुझे देखा या तुझसे मैं देखा गया। ते अस्मान् दृष्टवन्तः (कर्तृवाच्य) तैः वयं दृष्टाः (कर्मवाच्य) उन्होंने हमें देखा या उनसे हम देखे गये। स ग्रन्थं पठितवान् (कर्तृवाच्य) तेन ग्रन्थः पठितः (कर्मवाच्य) उसने ग्रन्थ पढ़ा या उससे ग्रन्थ पढ़ा गया ।

भाववाच्य

जहां क्रिया के अर्थ में प्रत्यय होता है उसे भाववाच्य कहते हैं । अकर्मक धातुओं से भाववाच्य होता है। भाववाच्य के कर्ताकारक में तृतीया विभक्ति होती है ; कर्म नहीं रहता और क्रिया सदा प्रथम पुरुष एकवचन होती है। जैसे :—त्वं भवसि (कर्तृवाच्य) त्वया भूयते (भाववाच्य) अहं भवामि (कर्तृवाच्य) मया भूयते (भाववाच्य) सः भवति (कर्तृवाच्य) तेन भूयते (भाववाच्य) अन्ये भवन्ति (कर्तृवाच्य) अन्यैः भूयते (भाववाच्य) इत्यादि। इन वाक्यों में कर्ता सब पुरुष के और बहुवचन भी हैं पर क्रिया सर्वत्र 'भूयते' अन्य पुरुष एकवचन ही की है।

विशेषः—(क) कृत् प्रत्ययान्त भाववाच्य में क्रिया सदा नपुंसक एकवचन होती हैं। जैसे :—तेन त्वया मया सर्वैर्वा स्थितम् = वह तू मैं और सब ठहरे । अस्माभिः शयितव्यम् = हम सोवें या हमें सोना चाहिये ।

(ख) जब सकर्मक धातु में कर्म का प्रयोग नहीं रहता ऐसी अवस्था में वह भी भाववाच्य हो जाता है। जैसे :—अहं गच्छामि (कर्तृवाच्य) मया गम्यते (भाववाच्य) अहं गतः (कर्तृवाच्य) मया गतम् (भाववाच्य) ।

कर्मकर्तृवाच्य

जहाँ कर्म स्वयं इतने सहज से सिद्ध हो जाय कि कर्त्ता के प्रयत्न की कोई आवश्यकता न प्रतीत हो, वहाँ कर्म कर्त्ता की तरह हो जाता है। ऐसी दशा में कर्मकर्तृवाच्य होता है। कर्मकर्तृवाच्य में कर्म ही कर्त्ता हो जाता है और उसमें प्रथमा विभक्ति होती है तथा क्रिया कर्मवाच्य के समान होती है। ऐसे स्थलों में कर्त्ता का प्रयोजन नहीं पड़ता, इसलिये वह अविवक्षित रहता है। जैसे :—तण्डुलः (स्वयमेव) पच्यते = चावल (स्वयं, अपने आप) पकता है। काष्ठानि भिद्यन्ते = लकड़ियाँ (अपने आप) फटती हैं।

कर्मवाच्य, भाववाच्य और कर्मकर्तृवाच्य में धातुओं में सदा आत्मनेपद होता है तथा लट्, लोट्, लङ्, विधि लिङ् में धातु के आगे 'य' लग जाता है। जैसे :—पठ्—पठ्यते, गम्—गम्यते, दृश्—दृश्यते। 'य' लगने पर धातुओं में जो कुछ परिवर्तन होता है उनके विषय में कुछ नियम नीचे दिये जाते हैं।

(क) धातुओं के आगे 'य' लगने पर ह्रस्व 'इ' और 'उ' का दीर्घ, 'ऋ' का 'रि', संयुक्त वर्णयुक्त 'ऋ' का 'अर्' और 'ॠ' का 'ईर्' या पवर्ग से संयुक्त होने पर 'ऊर्' हो जाता है। क्रमशः उदाहरण दिये जाते हैं :—जि—जीयते, श्रु—श्रूयते, कृ—क्रियते, स्मृ—स्मर्यते, कॄ—कीर्यते, पॄ—पूर्यते आदि।

(ख) 'य' लगने पर दा (देना) धा (धारण करना), मा (मानना), स्था (ठहरना), गै (गा—गाना), सो (सा—नाश करना), पा (सा—पीना) और हा (छोड़ना) धातुओं के 'आ' का 'ई' हो जाता है; जैसे :—दीयते, धीयते, स्थीयते, गीयते, सीयते, पीयते, हीयते आदि।

(ग) 'य' के लगने पर वह् (बहना, ढोना), वच् (बोलना), वद् (बोलना), वप् (बोना), वस् (बसना) और स्वप् (सोना) धातुओं के 'व' का 'उ' हो जाता है। जैसे :—वह्—उह्यते, वच्—उच्यते, वद्—उद्यते, वप्—उप्यते, वस्—उष्यते, स्वप्—सुप्यते, आदि।

(घ) 'य' लगने पर ग्रह् का गृह, प्रच्छ् का पृच्छ्, व्यध् का विध्, शास् का शिष्, ह्वे का हू, शी का शय्, जन का जा, खन् का खन् या खा, तथा ऋ (जाना) का अर् हो जाता है। जैसे :—गृह्यते, पृच्छ्यते, विध्यते, शिष्यते, शय्यते, जायते, खन्यते या खायते, अर्यते आदि।

(ङ) किसी धातु के अन्तिम व्यञ्जन के ठीक पूर्व में यदि 'न्' हो तो 'य' लगने पर उसका लोप हो जाता है। जैसे :—बन्ध्-बध्यते, ग्रन्थ्-ग्रथ्यते आदि।

(च) 'य' परे रहने से णिजन्त धातु के 'इ' का लोप हो जाता है। जैसे :—पाठि-पाठ्यते, स्थापि-स्थाप्यते, कारि-कार्यते इत्यादि।

वाच्यपरिवर्तन

कर्तृवाच्य के वाक्य को कर्मवाच्य या भाववाच्य तथा कर्मवाच्य या भाववाच्य के वाक्य को कर्तृवाच्य में कर देना ही वाच्य परिवर्तन है। जैसे :—बालकः व्याघ्रं पश्यति (कर्तृवाच्य) बालकेन व्याघ्रः दृश्यते (कर्मवाच्य), अश्वः धावति (कर्तृवाच्य) अश्वेन धाव्यते (भाववाच्य), यह कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य और भाववाच्य में परिवर्तन हुआ। इन्हीं वाक्यों को उलट देने से कर्मवाच्य और भाववाच्य के वाक्य कर्तृवाच्य के हो जायेंगे। वाच्य परिवर्तन करने में समापिका क्रिया, उसके कर्त्ता, कर्त्ता के विशेषण, कर्म और कर्म के विशेषण ये ही सब बदलते है। जैसे :—चञ्चलः बालकः सुन्दरं चन्द्रं पश्यति (कर्तृवाचक), चञ्चलेन बालकेन सुन्दरः चन्द्रः दृश्यते।

किसी वाक्य का अनुवाद किसी वाच्य से हो सकता है; परन्तु नीचे की बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिये :—

(क) कर्ता और कर्म के विशेषण में वही विभक्ति और वचन होंगे जो कर्ता और कर्म में होंगे। जैसे :—सुशील लड़का अपना पाठ पढ़ता है—सुशीलः बालकः स्वकीयं पाठं पठति (कर्तृवा०) सुशीलेन छात्रेण स्वकीयः पाठः पठ्यते (कर्मवाच्य)।

(ख) सदा एकवचन नपुंसक लिङ्ग रहनेवाले शब्द किसी भी वाच्य में

एक वचन ही रहते हैं, केवल वाच्यानुसार उनकी विभक्ति बदल जाती है। जैसे:—गुणियों में गुण पूजा के स्थान होते हैं–गुणाः पूजास्थानं गुणिषु (कर्तृवा०) या गुणैः पूजास्थानेन (भूयते) गुणिषु (भाववाच्य)।

(ग) किसी वाक्य का चाहे किसी भी वाच्य में अनुवाद क्यों न किया जाय, किन्तु उस वाक्य की क्रिया के काल और लकार वे ही रहते हैं। जैसे, वह देखता है:—स पश्यति (कर्तृवा० लट्), तेन दृश्यते (कर्मवाच्य लट्)। उसने देखा:—सः अपश्यत् (कर्तृवाच्य लङ्), तेन अदृश्यत (कर्मवाच्य लङ्)। वह देखेगा:—सः द्रक्ष्यति (कर्तृवा० लृट्), तेन द्रक्ष्यते (कर्मवा० लृट्)।

(घ) यदि किसी वाक्य में समापिका और असमापिका दोनों प्रकार की क्रियाओं का एक ही कर्म हो तो, उसका कर्मवाच्य के द्वारा अनुवाद करने में समापिका क्रिया के साथ कर्म का सम्बन्ध होगा। जैसे:—वह ग्रन्थ देखकर पढ़ता है:—सः ग्रन्थं दृष्ट्वा पठति (कर्तृवा०), तेन ग्रन्थः दृष्ट्वा पठ्यते।

विशेष:—कृत्प्रत्ययान्त क्रियापद विशेषण की तरह प्रयुक्त होते हैं; इसलिये उनके द्वारा किसी वाक्य का अनुवाद करने में वाच्यानुसार कर्ता और कर्म में जो लिङ्ग, वचन और कारक हों, उन्हें ही उनमें रखना चाहिये। जैसे:—उस (स्त्री) ने कहा:—सा कथितवती। उसने चांद देखा:—तेन चन्द्रो दृष्टः। मुझे ग्रन्थ पढ़ना चाहिये:—मया ग्रन्थः पठितव्यः आदि।

अभ्यास

(क) सकर्मक तथा अकर्मक क्रिया के लक्षण तथा उदाहरण दो?

(ख) किस २ अर्थ वाले धातु सकर्मक होते हैं और किस २ अर्थ वाले अकर्मक, इसकी एक तालिका दो?

(क) वाच्य कितने हैं? उनके प्रकार, लक्षण तथा उदाहरण दो?

अध्याय १४

पाठ १

स्त्रीप्रत्यय प्रकरण

(१) जिन २ प्रत्ययों के लगाने से पुंल्लिङ्ग शब्द स्त्रीलिङ्ग हो जाता है उनको स्त्रीप्रत्यय कहते हैं। इस प्रकरण में जो जो कार्य होते हैं उसको स्त्रीलिङ्ग में समझना चाहिये ।

(२) अजादिगण पठित अकारान्त शब्दों के उत्तर स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिये टाप् प्रत्यय होता है। ट् और प् की इत्संज्ञा होती है; केवल आ रहता है यथा :—अज—अजा, मेष--मेषा, मेढ—मेढा, कोकिल—कोकिला, बाल—बाला, वत्स—वत्सा, कृश—कृशा, प्रथम—प्रथमा, द्वितीय—द्वितीया, तृतीय—तृतीया, ज्येष्ठ—ज्येष्ठा, मध्यम—मध्यमा, मनोहर—मनोहरा इत्यादि ।

(३) टाप् प्रत्यय होने से प्रत्यय के ककार से पूर्व अकार के स्थान में इकार होता है। यथा:—कारक—कारिका, पाचक—पाचिका, पाठक—पाठिका, नायक—नायिका, गायक–गायिका इत्यादि। अष्टका आदि शब्दों में ककार के पूर्व अकार के स्थान में इकार नहीं होता है। यथा:—अष्टका, अलका, उपत्यका, अधित्यका, इष्टका, कन्यका, द्वारका, कुरका, तारका इत्यादि।

(४) जातिवाचक अकारान्त पुंलिङ्ग शब्दों के उत्तर स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिये ङीप् (ई) होता है। ई परे रहने से शब्द के अन्तस्थित अकार का लोप होता है। यथा:—ब्राह्मण–ब्राह्मणी, सिंह–सिंही, गोप–गोपी, शूद्र–शूद्री, (शूद्र जातीय स्त्री शूद्रा) किन्तु पालक आदि शब्दों के उत्तर ई नहीं होता है। यथा:—पालक–पालिका, अश्वपालक–अश्वपालिका, गोपालिका इत्यादि ।

(५) जिसकी उपधा में य् हो उसको उत्तर ङीष् (ई) नहीं होता, यथा:—वैश्य–वैश्या, क्षत्रिय–क्षत्रिया वा क्षत्रियाणी। किन्तु गवय, हय, मुकय,

मनुष्य, मत्स्य इत्यादि में ङीष् होता है। ङीष् होने से मनुष्य और मत्स्य शब्दों के अन्तस्थित य का लोप होता है। यथाः—मनुषी, मत्सी, गवयी, हयी, मुकयी इत्यादि।

(६) प्रथम अवस्था वाचक अकारान्त शब्दों के उत्तर स्त्रीलिङ्ग में ङीष् (ई) होता है। यथा :—किशोर—किशोरी, कुमार—कुमारी, वधूट—वधूटी इत्यादि।

(७) अकारान्त विशेषण वाचक शब्दों के उत्तर स्त्रीलिङ्ग में ङीष् विकल्प से होता है। ङीष् के ङ् और ष् का लोप होता है। ई रहता है। यथा :—लघु—लघ्वी—लघुः, मृदु (कोमल)—मृद्वी—मृदुः, साधु—साध्वी—साधुः, स्वादु—स्वाद्वी–स्वादु। किन्तु जिसके उपधा में संयुक्त वर्ण हो उसके उत्तर, ई नहीं होता, यथा :—पाण्डु–पाण्डुः।

(८) जो प्रातिपदिक उकार, ऋकार, और लृकार इत्संज्ञक प्रत्यय से बने हों उन प्रातिपदिकों के उत्तर स्त्रीलिङ्ग में ङीष् होता है। यथा :—उकार इत्संज्ञक—बुद्धिमत्–बुद्धिमती, पुत्रवत्–पुत्रवती, श्रेयसी, ऋकार इत्संज्ञक उ० कृ+शतृ, श् ऋ की इत्संज्ञा होती है, अद् रहता है, कृ+अत्= कुर्वत्—कुर्वती। कृ+स्यतृ=करिष्यत्—करिष्यन्ती, किन्तु विद्वस्—विदुषी, सखि–सखी, श्वशुर–श्वश्रूः।

(९) जिन अङ्ग वाचक शब्दों के उपधा में संयुक्त वर्ण न हों और बहुव्रीहि समास से बने हों उन अकारान्त अङ्ग वाचक शब्दों के उत्तर स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से ङीष् होता है। यथा :—चन्द्रमुख—चन्द्रमुखा वा चन्द्रमुखी, सुकेश—सुकेशा–सुकेशी। किन्तु अङ्ग, गात्र, नेत्र इत्यादि अङ्गवाचक शब्दों में संयुक्त वर्ण रहने पर भी ई और आ होता है। यथा :–कृशाङ्गी–कृशाङ्गा, बिम्बोष्ठी–बिम्बोष्ठा, गोकर्णी–कोकर्णा, सुकण्ठी–सुकण्ठा, सुगात्री–सुगात्रा, तन्वङ्गी–तन्वङ्गा। अपवाद—प्राङ्मुखी–प्रत्यङ्मुखी इत्यादि।

(१०) क्रोडा आदि शब्द और नासिका और उदर के सिवाय दो स्वर से अधिक स्वर युक्त शब्दों के उत्तर स्त्रीलिङ्ग में आ होता है। यथा :—कल्याणक्रोडा, तीक्ष्णखुरा, दीर्घशफा, चारुशिखा, मृगनयना, चट्टुलनयना, चारुदशना, सुजघना, लोलरसना। अपवाद–सुनासिकी, मन्दोदरी इत्यादि।

(११) बहुव्रीहि समास में ऊधस् शब्द के उत्तर ङीप् और ऊधस् के ध के अ और स् के स्थान में न होता है। यथा :—घट इव ऊधः यस्याः सा घटोध्नी, पीनम् ऊधः यस्याः सा पीनोध्नी इत्यादि ।

(१२) संज्ञा (नाम) बोध होने पर नख और मुख शब्द के उत्तर आ होता है। यथा :—शूर्पणखा, गौरमुखा इत्यादि ।

(१३) ऋकारान्त और नकारान्त शब्दों के उत्तर स्त्रीलिङ्ग के लिये ङीप् होता है। यथा :—दातृ-दात्री, कर्तृ-तर्त्री, परन्तु दुहितृ, मातृ, स्वसृ और ननान्दृ शब्द के उत्तर ङीप् (ई) नहीं होता है, क्योंकि ये सब शब्द स्वयं स्त्रीलिङ्ग हैं। नकारान्त (उ०) स्वामिन्-स्वामिनी, गुणिन्-गुणिनी, दण्डिन्-दण्डिनी, राजन्-राज्ञी ।

(१४) यज्ञ के फल भागी होने पर स्त्रीलिङ्ग में पति के इकार के स्थान में नकार और ङीप् होने से पत्नी होता है। सपत्नी, वीरपत्नी, एकपत्नी, पतिवत्नी इत्यादि निपातन से सिद्ध होता है किन्तु गृहपति का स्त्रीलिङ्ग गृहपतिः और गृहपत्नी दोनों होते हैं।

(१५) जो २ शब्द ट् और ण् की इत्संज्ञा करने से बने हों और जिन जिन शब्दों के अन्त में मय, मत्, वत्, एय, मात्र, दघ्न, द्वयस्, दृश, कर, चर और अत् रहे उनके स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिये अन्त में ईप् प्रत्यय लगाते हैं। यथाः—अण् उ० वैष्णव-वैष्णवी, औत्स-औत्सी, कुम्भकार-कुम्भकारी, मय उ० जलमय-जलमयी, मत् उ० बुद्धिमत्-बुद्धिमती, वत् उ० बलवत्-बलवती, एय उ० वैनतेय-वैनतेयी, भागिनेय-भागिनेयी, दघ्न उ० ऊरुदघ्न-ऊरुदघ्नी, मात्र उ० कण्ठमात्र-कण्ठमात्री, द्वयस् उ० ऊरुद्वयस्-ऊरुद्वयसी, दृश् उ० कीदृश कीदृशी, यादृश-यादृशी, कर उ० अर्थंकर=अर्थंकरी, चर उ० खचर-खचरी, कुरुचर-कुरुचरी, कृ + टप्रत्यय से कर और चर बना है और महती राज्ञी में कर्मधारय करने से महाराज्ञी होता है। परन्तु महाराजन् टच् प्रत्यय से महान् राजा-महाराजः, बना है। इसलिये ईष् प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिग में महाराजी होता है।

(१६) क्तिन् प्रत्यय भिन्न इकारान्त कृत् प्रत्यय से बने प्रातिपदिक के

उत्तर स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से ङीप् होता है। यथा :—राजिः राजी, श्रेणिः श्रेणी, रजनिः रजनी इत्यादि। क्तिन् प्रत्यय से बने हुए शब्द स्वयं स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा :—मन् + क्तिन् = मतिः, बुध् + क्तिन्=बुद्धिः, गम + क्तिन्= गतिः इत्यादि।

(१७) षित् प्रत्ययान्त और गौर आदि गण में पठित शब्दों के उत्तर स्त्रीलिङ्ग में ङीष् होता है। षित् = उ० मृगाक्ष–मृगाक्षी, सुन्दराक्ष–सुन्दराक्षी। गौर उ० गौर—गौरी; सुन्दर—सुन्दरी, नर्त्तक–नर्त्तकी, मण्डली, मङ्गली इत्यादि।

(१८) इन्द्र वरुण, भव, शर्व, रुद्र और मृड शब्द के उत्तर स्त्रीलिङ्ग में आनुक् (आन्) और ङीष् होता है। यथा :—इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी। भवस्य स्त्री–भवानी,। वरुणानी, रुद्राणी, शर्वाणी। मृडानी। किन्तु हिम और अरण्य शब्द के उत्तर महत्त्व अर्थ में आन् और ङीष् प्रत्यय होता है। हिम—हिमानी (बहुत पाला) अरण्य–अरण्यानी (बड़ा वन) यव शब्द से दुष्ट अर्थ में और यवन् से लिपि अर्थ में आनीष् (आनी) होता है। यथा :—दुष्टः यवः यवानी। यवनानां लिपिः यवनानी।

(१९) मातुल और उपाध्याय शब्द के उत्तर विकल्प से आनीष और ई होता है। यथाः—मातुलस्य स्त्री–मातुलानी, मातुली। उपाध्यायस्य स्त्री उपाध्यायी उपाध्यायनी, जो स्त्री स्वयं पढ़ाती है वहाँ उपाध्यायी और उपाध्याया, यहां ङीष् और आ दोनों होते हैं।

(२०) अर्य और क्षत्रिय शब्द के उत्तर स्वार्थ में आ और आनीष् होता है। यथा :—अर्य-अर्या अर्याणी, स्वामिनी वा वैश्या। क्षत्रिय-क्षत्रिया, क्षत्रियाणी, क्षत्रिय जातीय स्त्री। परन्तु अर्य की स्त्री अर्यी, क्षत्रिय की स्त्री क्षत्रियी।

(२१) भार्या अर्थ में पाणिगृहीत शब्द के उत्तर ङीष् होता है। यथा :—पाणिगृहीती (भार्या)। अन्य अर्थ में आ होता है। यथा :—पाणिः गृहीतः यस्याः सा–पाणिगृहीता।

(२२) मनु शब्द के उत्तर स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से अन्त्य स्वर के स्थान में ऐ और ङीप् होता है। यथा :— मनोः स्त्री मनायी वा मनावी पक्षे मनुः।

(२३) उकारान्त शब्द के उत्तर स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से ऊङ् होता है। यथा :—तनु-तनूः वा तनुः।

(२४) जिस शब्द के पूर्व में उपमावाचक शब्द हो और पर शब्द में ऊरु शब्द हो उसके उत्तर स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् होता है। यथा :— करभौ इव ऊरू यस्याः सा = करभोरूः, एवं रम्भोरूः, वामोरूः आदि।

(२५) युवन् शब्द के उत्तर स्त्रीलिङ्ग में 'ति' प्रत्यय तथा 'न' का लोप होता है। यथा :— युवन् से युवतिः। युधातु से शतृ और ङीप् करने से युवती रूप होता है।

अभ्यास

(क) निम्न लिखित शब्दों से स्त्रीलिङ्ग बनाओः-वत्स, अश्व, नायक, पालक मत्स्य, मनुष्य, लघु, गुरु, पुत्रवत्, दातृ, नेतृ, दण्डिन्, राजन्, श्वन्, महाराज, अरण्य, यवन, श्वशुर, क्षत्रिय।

(ख) भेद बताओः— शूद्री और शूद्रा। उपाध्याया, उपाध्यायी और उपाध्यायानी। आचार्या और आचार्याणी। यवनी और यवनानी। क्षत्रिया और क्षत्रियी।

अध्याय १५

पाठ १

सन्धि-प्रकरण

'सन्धि' शब्द का अर्थ मेल अथवा मिलना है, परन्तु यहाँ दो अक्षरों को मिलाने वाला कार्य सन्धि शब्द से अभिप्रेत है। प्रकृति-प्रत्यय अथवा दो पदों के परस्पर मिलाने में पूर्व शब्द के अन्त्य वर्ण, पर शब्द के आदि वर्ण अथवा दोनों (पूर्व-पर वर्णों) के स्थान में जो विकार उत्पन्न होते हैं वे सन्धि कार्य कहे जाते हैं। वह विकार आदेश, आगम, द्वित्व और लोप इनमें से कोई एक होता है। सन्धि तीन प्रकार की सम्भव हो सकती है।

१. पद-मध्य मात्र में होने वाली,

२. पदान्त में की जाने वाली,

३. पद-मध्य तथा पदान्त दोनों स्थानों में की जाने वाली सन्धि।

इनको हम क्रमशः अन्तस्सन्धि, बहिस्सन्धि और उभयसन्धि नाम से व्यपदिष्ट करेंगे। इनमें से अन्तस्सन्धि का विषय बहुत न्यून है। बहिस्सन्धि और उभयसन्धि का ही अधिकांश प्रयोग होता है। इन दोनों सन्धियों के भी वर्ण क्रम के अनुसार 'स्वरसन्धि', 'व्यञ्जनसन्धि' और 'उभयसन्धि' नामक तीन विभाग होते हैं।

सन्धि की व्यवस्था

'सन्धिरेकपदे नित्या, नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे, वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते॥'

एक पद में, धातु और उपसर्ग की तथा समास में नित्य (निश्चित रूपेण) सन्धि होती है, किन्तु वाक्य में विवक्षा की अपेक्षा रखती है अर्थात् वाक्य में वक्ता की इच्छा पर सन्धि होती है।

उदाहरणः—

१. एक पद में :—ने + अनम् = नयनम्। भो + अति = भवति।

२. धातु और उपसर्ग में :—अधि + आगच्छति = अध्यागच्छति ।

३. समास में :—राज्ञ + अश्वः = राजाश्वः ।

४. वाक्य में :—द्वाविंशे एव वर्षे इन्दुमती अधिजगाम स्वर्गम् ।

स्वर–सन्धि

जहाँ केवल स्वर मात्र में विकार होता है, उसे 'स्वर–सन्धि' कहते हैं। स्वरसन्धि में उभय सन्धि ही अधिक व्यवहृत होती है। बहिस्सन्धि का प्रयोग कम है।

उभय–स्वर–सन्धि को 'सवर्ण–(समान)–स्वरसन्धि–' और 'असवर्ण (असमान) स्वरसन्धि भागों में विभक्त किया जा सकता है।

सवर्ण (समान) स्वर सन्धि

अ	इ
१—मुर + अरिः = मुरारिः ।	१—रवि + इन्द्रः = रवीन्द्रः ।
२—गुण + आढ्यः = गुणाढ्यः ।	२—अधि + ईशः = अधीशः ।
३—महा + अर्णवः = महार्णवः ।	३—कुमारी + इति=कुमारीति ।
४—रमा + आलयः=रमालयः ।	४—नदी + ईशः = नदीशः ।

उ	ऋ
१—यदु + उद्वाहः = यदूद्वाहः ।	१—पातृ + ऋषभः = पातॄषभः ।
२—वायु + ऊढः = वायूढः ।	२—पितृ + ऋणम् = पितॄणम् ।
३—वधू + उद्वाहः = वधूद्वाहः ।	३—होतृ + ऋकारः=होतॄकारः ।
४—स्वभू + ऊनः = स्वभूनः ।	४—नृ + ऋषिः = नॄषिः ।

ऊपर लिखित शब्दों में हम देखते हैं कि जो अक्षर पूर्व है वही पर है। और उन दोनों के स्थान पर उसी वर्ण का दीर्घ अक्षर प्रयुक्त हुआ है। अतः—

नियम :—यदि अक् (अ इ उ ऋ लृ) वर्ण से आगे वही वर्ण हो, जो प्रथम हो तो उन दोनों के स्थान पर उसी वर्ण का दीर्घ अक्षर हो जाता है।

असमान स्वर-सन्धि

(१)—रमा + ईशः = रमेशः । गंगा + उदकम् = गंगोदकम् ।

कुल + उचितम् = कुलोचितम् । महा + ऋषिः=महर्षिः । प्लुत + लृकारः= प्लुतल्कारः ।

इन उदाहरणों में अवर्ण से आगे इ, उ, ऋ, लृ वर्ण हैं; और 'अ' तथा उसके परवर्ती 'इ' आदि के स्थान में क्रमशः ए, ओ, अर् , अल् परिवर्तन हुए हैं, अतः—

नियम :—यदि अवर्णसे आगे इ, उ, ऋ, लृ इन वर्णों में से कोई वर्ण हो तो पूर्व पर वर्णों के स्थान में क्रमशः ए, ओ, अर्, अल् आदेश होते हैं। अर्थात् अ + इ=ए । अ + उ=ओ । अ + ऋ = अर् । अ + लृ = अल् ।

(२)—तस्य + एव = तस्यैव । महा + ओजः = महौजः । नृप + ऐश्वर्यम् = नृपैश्वर्यम् । घन + औत्सुक्यम् = घनौत्सुक्यम्, इन उदाहरणों में हम देखते हैं कि अवर्ण से आगे ए, ओ, ऐ, औ वर्ण हैं और उनके स्थान पर क्रमशः ऐ, औ, ऐ, औ परिवर्त्तन हुए हैं। अतः—

नियम :—यदि अवर्ण से आगे ए, ऐ, और ओ, औ हों तो पूर्व-पर दोनों वर्णों के स्थान में क्रमशः ऐ तथा औ आदेश होते हैं। अर्थात्–अ = ए, ऐ = ऐ । अ + ओ, औ = औ ।

(३) दधि + अर्थं = दध्यर्थम् । सुधी + ऊहितं = सुध्यूहितम् । मधु + अर्थं = मध्वर्थम् । वधू + आननं = वध्वाननम् । पितृ + अर्थं = पित्रर्थम् । कृ + आकृतिः = क्राकृतिः । गम्लृ + अर्थं = गम्लर्थम् । लृ + आपत्तिः = लापत्तिः । प्रथम उदाहरण में दधि शब्द के अन्त में इकार है और उससे परे 'अ' है। और प्रथम वर्ण इ के स्थान में 'य्' परिवर्त्तन देखा जाता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में उ, ऋ, लृ पूर्ववर्ण हैं; तथा उनके स्थान में क्रमशः व् , र् , ल् परिवर्त्तन देखे जाते हैं; इसलिये—

नियम :—यदि इक् वर्ण (इ, उ, ऋ, लृ) से आगे कोई असवर्ण स्वर हो तो प्रथम वर्ण 'इ' आदि के स्थान में क्रमशः य् ,व् , र् , ल् आदेश होते हैं। यह ध्यान में रखना चाहिये कि परवर्ण के स्थान में कोई परिवर्त्तन नहीं होता, वह केवल निमित्त मात्र होता है।

नोट :—उपर्युक्त सन्धियों में यह स्मरण रखना चाहिये कि आदि वर्ण ह्रस्व तथा दीर्घ दोनों ही प्रकार के लिये जाते हैं, अतः ये सन्धियाँ ह्रस्व दीर्घ वर्णों में समान रूप से प्रवृत्त होती हैं।

(४) हरे + ए = हरये। गुरो + ए = गुरवे। नै + अकः = नायकः। पौ + अकः = पावकः। उपरि लिखित उदाहरणों में देखा जाता है कि प्रथम शब्द के अन्त में क्रमशः ए, ओ, ऐ तथा औ वर्ण हैं और उनके आगे क्रमशः ए, ए, अ, अ वर्ण हैं, और पूर्व शब्दान्त्य वर्णों के स्थान में क्रमशः अय्, अव्, आय्, आव्, आदेश हुए हैं। इस प्रकार—

नियम :—यदि एच् (ए, ओ, ऐ, औ) वर्ण से परे कोई भी स्वर हो तो 'ए' के स्थान में 'अय्'; 'ओ' के स्थान में 'अव्'; 'ऐ' के स्थान में 'आय्' और 'औ' के स्थान में 'आव्' आदेश होता है।

नोट :—उपरि लिखित समस्त सन्धियां पद-मध्य तथा पद के अन्त में समान रूप से प्रवृत्त होती हैं। अतः ये 'उभय सन्धि' कहलाती हैं।

(५) नियम ४ का अपवाद—हरे + अव = हरेऽव। विष्णो + अव = विष्णोऽव।

इन उदाहरणों में पूर्व शब्द के अन्त में 'ए' तथा 'ओ' वर्ण हैं और आगे 'अ' वर्ण है, अतः नियम ४ के अनुसार ए तथा ओ के स्थान में क्रमशः 'अय्' तथा 'अव्' आदेश होना चाहिए था, परन्तु ऐसा नहीं हुआ इसलिये :—

नियम :—*यदि पद के अन्त में आये हुए ए तथा ओ वर्ण से आगे ह्रस्व 'अकार' परे हों तो ह्रस्व 'अकार' अपने से पूर्व वर्ण में मिल जाता है। आजकल उसकी पहिचान के लिये 'ऽ' चिह्न लगाये जाते हैं, परन्तु यह केवल चिह्न मात्र है, कोई वर्ण नहीं है।

(६) अग्नी + अत्र = अग्नी अत्र। वायू + इति = वायू इति। गङ्गे + अमू = गङ्गे अमू।

इन उदाहरणों में पदान्त में इ, उ तथा ए वर्ण हैं और उनसे आगे

* एङः पदान्तादति ६। १। १०९

वर वर्ण हैं अतः क्रमशः नियम संख्या ३ और ४ के अनुसार सन्धि होनी ाहिये, परन्तु होती नहीं। क्योंकि—

नियम :—*यदि किसी शब्द का द्विवचनान्त रूप 'इ' 'उ' अथवा ए में समाप्त होता हो तो ऐसे शब्द की सन्धि नहीं की जाती। यहां ग्नी, वायू और गङ्गे शब्द क्रमशः अग्नि, वायु और गङ्गा शब्द के थमा विभक्ति के द्विवचनान्त रूप हैं।

पाठ २

हल् (व्यञ्जन) सन्धि

दो व्यञ्जनों के परस्पर मिलने को व्यञ्जन सन्धि अथवा हल्–सन्धि कहते हैं। इस सन्धि के भी स्वर–सन्धि के समान 'बहिस्सन्धि' 'अन्तस्सन्धि' तथा 'उभयसन्धि' नामक तीन भेद होते हैं।

बहिस्सन्धि

जब किसी पूर्व पद के अन्तिम वर्ण के स्थान में अथवा पर पद के आदि वर्ण के स्थान में कोई विकार होता है, तब उसे 'बहिस्सन्धि कहते हैं।

(१) वाक् + पत्र = वागत्र। गो + धुक् = गोधुग्। अच् + अन्त = अजन्तः, मित्रध्रुट् + गच्छति = मित्रध्रुड्गच्छति। ककुभ् + रम्या = ककुब्रम्या। द्विष् + राजते = द्विड्राजते। दिक् + आदि = दिगादि।

हम इन उदाहरणों में देखते हैं कि प्रथम पद 'वाक्' आदि के अन्तिम व्यञ्जनों के स्थान में उसी वर्ग के तृतीय अक्षर 'ग्' आदि हुए हैं। द्वितीय पद का आदि वर्ण कोई स्वर अथवा मृदुव्यञ्जन है। इसलिये—

नियम :—†यदि किसी शब्द के अन्त में कोई झल् (वर्गों के द्वितीय,

---

* ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्, १।१।११ प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ६।१।१२५

† झलां जशोऽन्ते ८।२।३९।

तृतीय तथा चतुर्थ अक्षर) वर्ण हो और उसके आगे कोई स्वर अथवा मृदु व्यञ्जन हो तो पूर्वपद के अन्तिम व्यञ्जन के स्थान में उसी वर्ग का तृतीय अक्षर होता है। परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिये कि यदि झल् वर्ण के आगे कोई अक्षर न हो तो यह परिवर्त्तन विकल्प से होता है जैसे वाक्–ग्। अच्—ज् इत्यादि।

(२) प्रत्यङ् + आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा। सुगण् + ईशः = सुगण्णीशः लिखन् + आस्ते = लिखन्नास्ते।

उपरि लिखित उदाहरणों में पूर्व पद के अन्त में क्रमशः 'ङ्' 'ण्' 'न्' वर्ण हैं और उनके आगे 'आ' 'ई' आदि स्वर वर्ण हैं; तथा सिद्ध रूपों में एक एक 'ङ्' 'ण' 'न' अक्षर बढ़ गया है। अतः—

नियम :—*यदि किसी शब्द के अन्त में 'ङ' 'ण' 'न' इनमें कोई वर्ण हो और उसके आगे कोई स्वर हो तो प्रथम वर्ण 'ङकार' आदि को द्वित्व हो जाता है। परन्तु यदि शब्दान्त्य 'ङकार' आदि वर्णों के पूर्व अक्षर ह्रस्व वर्ण न हों तो यह परिवर्त्तन नहीं होता। जैसे प्राङ् + आस्ते = प्राङास्ते। भवान् + आस्ते = भवानास्ते। अर्थात् द्वित्व किये जानेवाले ङकार आदि वर्ण के पूर्व ह्रस्व होना आवश्यक है।

(३) पदान्ते—सम्पद् + कामः = सम्पत्कामः। विराड् + पुरुषः = विराट्पुरुषः। तद् + चित्रं = तज् + चित्रं = तच्चित्रम्। तद् + टीका = तड् + टीका = तट्टीका। ककुभ् + कोणः = ककुप् कोणः। भिषग् + संगः = भिषक् संगः।

अपदान्ते—भेद् + तुं = भेत्तुम्। लभ् + स्यते = लप्स्यते। धग् + स्यति = धक्ष्यति।

इन उदाहरणों में हम देखते हैं, कि प्रथम शब्दों के अन्त में 'दकार' आदि झल् वर्ण हैं और उनसे आगे 'क्' आदि कठोर (वर्गों के प्रथम द्वितीय वर्ण तथा श ष स वर्ण हैं, तथा 'द्' आदि वर्णों के स्थान में उसी वर्ग के प्रथमाक्षर 'त्' आदि परिवर्तित हुए हैं। इसलिये—

* ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम् ८।३।३२

नियम :—*यदि झल् वर्ण से आगे कोई कठोर वर्ण परे हो तो प्रथम
ल् वर्ण के स्थान में उसी वर्ग का प्रथमाक्षर होता है। यह सन्धि पद
य में तथा पदान्त में, दोनों स्थानों में समान रूप से प्रवृत्त होती है,
ः यह उभय सन्धि के अन्तर्गत है। तथापि इसका प्रथम नियम के
थ विशेष सम्बन्ध होने के कारण इसको यहाँ लिखा गया है। यह
म नियम का विपरीत नियम है।

(४) वाग् + माधुर्यं = वाङ्माधुर्यं, वाग्माधुर्यम्। चित् + मयं = चिन्म-
। अप् + मयं = अम्मयम्।

उपरि लिखित शब्दों में पूर्वपद के अन्त में झल् वर्णों में से कोई वर्ण
या उसके आगे 'म्' आदि अनुनासिक (वर्गों के पञ्चम वर्ण) अक्षर तथा
थम झल् वर्ण के स्थान में उसी वर्ग का पंचमाक्षर देखा जाता है, अतः–

नियम :—†यदि प्रथम पद के अन्त में 'यर' (हकार के अतिरिक्त
मस्त व्यञ्जन) में से कोई वर्ण हो और उसके आगे किसी वर्ग का
ञ्चमाक्षर परे हो तो उस 'यर्' वर्ण के स्थान में उसी वर्ग का पञ्चमाक्षर
ता है। परन्तु यह नियम विकल्प से प्रवृत्त होता है, अर्थात् उपर्युक्त
रिवर्तन किया जाय अथवा न किया जाय, दोनों ही ठीक हैं।

(५) इदम् + वनम् = इदंवनम्। सायम् + संध्या = सायंसंध्या। किम् +
सति = किंहसति। सम् + रक्तम् = संरक्तम्।

उपर्युक्त उदाहरणों में 'इदम्' आदि मकारान्त पद हैं, और उस
कार से परे व्यञ्जन वर्ण हैं। उस मकार के स्थान में अनुस्वार देखा
ता है, अतः—

नियम :—() यदि पदान्त मकार से परे कोई हल् वर्ण हो तो मकार
स्थान में अनुस्वार हो जाता है। यदि पदान्त मकार से आगे कोई
वर वर्ण हो तो उस मकार को परवर्ती अच् में मिला देते हैं। जैसे—

इदम् + अरण्यम् = इदमरण्यम्। मुखम् + इति = मुखमिति।

---

* खरि च ८।४।५३। † यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८।४।४५

() मोऽनुस्वारः ८।३।२३।

(६) तन् + लक्ष्यम् = तल्लक्ष्यम् । चित् + लयः=चिल्लयः । तस्मिन् + लयः = तस्मिँल्लयः ।

उपर्युक्त शब्दों में 'द्' 'त्' 'न्' वर्णों से आगे 'ल्' वर्ण है, और 'द्' आदि वर्णों के स्थान में 'ल' दिखाई देता है अतः—

नियम :—* यदि तवर्ग (त् , थ् , द् , ध् , न्) से ल वर्ण परे हो तो तवर्ग के स्थान में ल् हो जाता है। यह ध्यान में रखना चाहिये कि 'न्' अनुनासिक वर्ण है अतः उसके स्थान में 'ल्ँ' होता है और शेष चार वर्णों के स्थान में 'ल्' होता है।

अन्तस्सन्धि

(७) मुन् + चति=मुंचति=मुञ्चति । शन् + कते = शंकते = शङ्कते । शम् + युः = शंयुः = शय्ँयुः ।

उपर्युक्त शब्दों के द्वितीय रूप में अनुस्वार से आगे क्रमशः 'च' 'क' 'य' वर्णों के परे होने पर तृतीय रूप में अनुस्वार का क्रमशः ञ् , ङ् और यँ् परिवर्तित रूप देखा जाता है। इसलिये:—

नियम :—†यदि अनुस्वार से आगे कोई 'यय्' (ऊष्माक्षर-रहित व्यञ्जन) वर्ण हो तो उस अनुस्वार के स्थान में पर वर्ण के वर्ग का पञ्चमाक्षर होता है। परन्तु 'य्' 'व्' 'ल्' परे होने पर अनुनासिक 'य्ँ' 'व्ँ' 'ल्ँ' होते हैं। प्रथम उदाहरण-'मुञ्चति' में अनुस्वार से आगे 'च' है और यह वर्ण 'चवर्ग' का प्रथमाक्षर है। अतः अनुस्वार के स्थान में 'चवर्ग' का पञ्चमाक्षर ञ् हुआ है। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये।

यदि अनुस्वार किसी पद के अन्त में आया हो तो उसके स्थान में यह परिवर्त्तन विकल्प() से होता है। जैसे :—

त्वं + करोषि = त्वङ्करोषि, त्वं करोषि ।

त्वं + याचसे = त्वय्ँयाचसे, त्वं याचसे ।

त्वं + पचसि = त्वम्पचसि, त्वं पचसि ।

सं + वत्सरः = सव्ँवत्सरः, संवत्सरः ।

---

* तोर्लि ८।४।६० † अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ८।४।५८ () वा पदान्तस्य ८।४

पुं + लिङ्गः = पुल्लिँङ्ग, पुंल्लिङ्गः ।

(८) पयान् + सि = पयांसि । धनून् + षि = धनूंषि । आक्रम् + स्यते= आक्रंस्यते । अधिजिगाम् + सति = अधिजिगांसति ।

उपर्युक्त उदाहरणों में प्रथम 'पयांसि' एक पद (प्रथमा बहुवचन) है, इसके मध्य में 'न्' वर्ण है, उस 'न्' के आगे 'स्' झल् वर्ण है । उस नकार को अनुस्वार हुआ है । इसी प्रकार 'आक्रंस्यते' यह भी एक पद (लृट् , प्रथम पुरुष, एकवचन) है । उसके मध्य में 'म्' वर्ण है जिसको अनुस्वार हुआ है । अतः—

नियमः—*यदि पद-मध्य में 'न्' अथवा 'म्' वर्ण हो और उनके आगे कोई झल् वर्ण हो तो उनके स्थान में अनुस्वार हो जाता है ।

उभय सन्धि

पीछे लिखा जा चुका है कि जिन सन्धियों में पद-मध्य अथवा पदान्त का विचार नहीं किया जाता—किन्तु दोनों स्थानों में समान रूप से प्रवृत्त होती हैं—वे उभयसन्धि कहाती हैं ।

(९) पयस् + शीतं = पयश्शीतम् । राजन् + जय = राजञ्जय ।
तपस् + चिनोति = तपश्चिनोति । वृक्षस् + छिद्यते = वृक्षश्छिद्यते ।
सत् + चित् = सच्चित् । तत् + ज्ञानं = तज्ज्ञानम् ।
परिषद् + जनः = परिषज्जनः । यज् + नः = यज्ञः ।

यहाँ प्रथम उदाहरण में 'पयस्' शब्द के सकार से आगे 'श्' वर्ण है और उस 'स्' वर्ण को 'श्' वर्ण हुआ है । इसी प्रकार 'सत् + चित्' इत्यादि शब्दों में तवर्ग के स्थान में चवर्ग का कोई अक्षर हुआ है । अतः—

नियम :—†यदि सकार और तवर्ग के समीप में (पूर्व अथवा पर) 'श्' अथवा चवर्ग तवर्ग कोई वर्ण हो तो 'स्' के स्थान में 'श्' और तवर्ग के स्थान में क्रमशः चवर्ग होता है ।

विशेष स्मरणीयः—यहां सकार और तवर्ग स्थानी और 'श्' तथा चवर्ग आदेश हैं । इनमें क्रम विवक्षित है परन्तु निमित्त वर्ण (समीप वाले

* नश्चापदान्तस्य झलि ८।३।२४ † स्तोः श्चुना श्चुः ८।४।४०

वर्ण) में क्रम विवक्षित नहीं है। अर्थात् 'श्' तथा चवर्ग में से किसी भी वर्ण के समीपस्थ होने पर उपर्युक्त आदेश होते हैं।

(१०) महस् + षण्डः = महष्षण्डः। रामस् + टीकते = रामष्टीकते। उत् + टङ्कनं=उट्टङ्कनम्। महान् + ढौकते=महाण्ढौकते। पिष् + तं=पिष्टम्। तत् + डिण्डिमं = तड्डिण्डिमम्।

नियम :—*यदि 'स्' और तवर्ग के समीप 'ष्' कार अथवा टवर्ग में से कोई वर्ण हो तो सकार और तवर्ग को क्रमशः षकार और टवर्ग होता है। इस नियम के विषय में नियम ९ के समान सब बातें समझनी चाहिये

(११) अपवादः—षट् + सन्तः=षट्सन्तः। षट् + तरवः=षट्तरवः सम्राड् + दयते = सम्राड्दयते।

हम इन उदाहरणों में देखते हैं कि 'स्', 'त्', 'द्', वर्णों के 'ष्' 'ट्' 'ड्' वर्ण समीप होने पर भी नियम सं० १० लागू नहीं हुआ। इसलिये—

नियम :—†यदि पदान्त टवर्ग से परे सकार और तवर्ग हो तो उसके स्थान में शकार और टवर्ग आदेश नहीं होते।

(१२) प्राक् + शेते=प्राक्छेते, प्राक् शेते, कश्चित् + शेते=कश्चिच्छेते, कश्चिच्शेते। अप् + शब्दः = अप्छब्दः, अप्शब्दः। द्विट् + शस्त्रं = द्विट्छस्त्रं, द्विट्शस्त्रम्। तद् + श्लोकः = तच्छ्लोकः = तच्श्लोकः। तद् + श्मश्रु = तच्छ्मश्रु = तच्श्मश्रु।

नियम :—‡यदि झय् (वर्गों के पंचमाक्षर तथा ऊष्माक्षर रहित व्यंजन) वर्ण से परे शकार हो और उससे आगे स्वर, अन्तःस्थ अथवा वर्गों के पंचमाक्षर में से कोई वर्ण हो तो उस 'श्' को 'छ्' विकल्प से होता है।

(१३) तुग्विधि—§तुग्विधि (तुग्सन्धि) का सारांश यह है कि यदि वाक्य के मध्य में छकार आवे तो उस छकार को द्वित्व हो जाता है

---

*ष्टुना ष्टुः ८।४।४१ † न पदान्ताट्टोरनाम् ८।४।४२ ‡ शश्छोटि ८।४।६३
§ छे च ६।१।७३ आङ्माङोश्च ६।१।७४ दीर्घात् ६।१।७५ पदान्ताद्वा ६।१।७६
छत्वममीति वाच्यम् (वा०)

और प्रथम छकार को 'खरि च' सूत्र (हलसन्धि नियम सं० २) से 'च्' हो जाता है। परि + छिन्नः = परिच्छिन्नः। तरु + छाया = तरुच्छाया। आ + छादनम् = आच्छादनम्। वि + छेदः = विच्छेदः।

परन्तु यदि वाक्य के आदि में छकार हो तो उसे द्वित्व नहीं होता। जैसे :—'छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रैः'। तात्पर्य यह है कि वाक्य के आदि में ही केवल छकार का श्रवण होता है, अन्यत्र सर्वत्र 'छ्' को द्वित्व होकर प्रथम छकार को चकार हो जाता है।

इस प्रकरण की मुख्य-मुख्य सन्धियाँ निम्न कारिकाओं में संगृहीत की जाती हैं। छात्रों को उन्हें याद कर लेना चाहिये।

झलांजशोऽन्ते झशि च, खर्येषां सबदा चरः,
स्तोः श्चुना श्चुः, ष्टुना ष्टुश्च द्वयमप्यन्तमध्ययोः ॥ १ ॥
झयि पूर्वं तस्य घोषो, झयः शोऽमिच्छतां व्रजेत्।
तोर्लिलो, हलि मो बिन्दुः पञ्चमे पञ्चमो यरः,
झल्यनन्ते नमोर्बिन्दु-बिन्दोर्यय्यनुनासिकः ॥ २ ॥
अवाक्यादिस्थसंयोगे द्विर्वाच्यो वर्ण आदिमः।
रहादौ पु परद्वित्वं द्विर्वाच्यश्छोप्यनादिमः ॥ ३ ॥

पाठ ३

विसर्ग सन्धि प्रकरण

यद्यपि इस सन्धि का नाम विसर्ग सन्धि है तथापि यह 'स्' तथा 'र्' वर्ण पर आश्रित है। पदान्त सकार * 'र्' वर्ण में परिवर्तित होता है, उस 'र्' वर्ण का परिवर्तन कहीं विसर्ग = ':' रूप में होता है और कहीं वह अपने असली रूप में रहता है। विसर्ग भी कहीं-कहीं फिर 'स्' आदि रूपों में परिवर्तित हो जाता है। परन्तु छात्रों की सुगमता के लिये विसर्ग को ही मुख्य मानकर इस सन्धि के नियमों का निर्देश करेंगे।

---

* ससजुषो रुः ८।२।६६

(१) पुनर् = पुनः । उच्चैस् = उच्चैर् = उच्चैः ।
पितुर् = पितुः । अन्तर् = अन्तः ।
दोस् = दोर् = दोः । प्रातर् = प्रातः ।

नियम :—*यदि विसर्ग के आगे कोई वर्ण न हो तो विसर्ग का कोई परिवर्त्तन नहीं होता (अर्थात् उक्त दशा में रेफ को विसर्ग हो जाता है और उस विसर्ग का फिर कोई परिवर्तन नहीं करते)।

गोविन्दः + अहम् = गोविन्दोऽहम् । रामः + अत्र = रामोऽत्र । [अ + विसर्गः + अ† = ओऽ।] अश्वः + धावति = अश्वो धावति । बाल + जल्पति = बालो जल्पति [अ + विसर्गः + मृदुव्यञ्जनम् = ओ ।] ‡ यदि विसर्ग से पूर्व और विसर्ग के पश्चात् वर्गों के तीसरे, चौथे, पांचवे तथा य, र, ल, व, ह, में से कोई वर्ण हो तो विसर्ग को 'ओ' हो जाता है ।

§सूर्यः + उदेति = सूर्य उदेति । जनः + इच्छति = जन इच्छति। नृपः+ ऐश्वर्यम् = नृप ऐश्वर्यम् । वैद्यः + औषधम् = वैद्य औषधम् । वृद्धः + ऋषिः = वृद्ध ऋषिः । छात्रः + एषः = छात्र एषः । इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि यहां विसर्ग का लोप हुआ है। अतः जहां विसर्ग से पूर्व अ, और विसर्ग के बाद अकार भिन्न कोई स्वर हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है ।

|| रामः + पश्यति = रामः पश्यति । रामः + करोति = रामः करोति । इत्यादि उदाहरणों में विसर्गों का कोई परिवर्तन नहीं हुआ । अतः जिन वाक्यों में विसर्ग के पूर्व 'अ' तथा विसर्ग के बाद क, ख और प, फ में से कोई वर्ण हो तो विसर्ग को विसर्ग ही रहता है ।

¶मृगः + चरित = मृगश्चरति । नरः + तरति = नरस्तरति । पुरुषः + छत्रम् = पुरुषश्छत्रम् । रामः + टीकते = रामष्टीकते। विसर्ग को यदि विसर्ग

*खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५ विरामोऽवसानम् १।४।११०
† अतो रोरप्लुतादप्लुते ६।१।३। ‡ हशि च ६।१।११४
§ भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि ८।३।१७ लोपः शाकल्यस्य ८।३।१९
|| कुप्वोः ≍क ≍पौ च ८।३।३८ ¶ विसर्जनीयस्य सः ८।३।३४

से पूर्व अ तथा विसर्ग से परे च, छ में से कोई वर्ण हो, तो विसर्ग को 'श्' और विसर्ग के बाद ट्, ठ में से कोई हो तो 'ष्' अथा त, थ में से कोई हो तो 'स्' होता है।

*कुमारः + सरति = कुमारःसरति, कुमारस्सरति। बालः + शालां= बालः शालां, बालश्शालाम्। छात्रः + षट् पुष्पाणि = छात्रः षट् पुष्पाणि, छात्रष्षट् पुष्पाणि। यदि विसर्ग से पूर्व अ तथा उ के बाद स, श अथवा ष में से कोई वर्ण हो तो क्रमशः विसर्ग के स्थान में विकल्प से 'स्, श्' तथा 'ष्' होता है। अन्यत्र जहाँ ये आदेश नहीं होते वहाँ कोई विसर्ग के स्थान में परिवर्तन नहीं होता।

†सः + एषः + कुमारः = स एष कुमारः। सः + एषः + हस्तः=स एष हस्तः। सः + एषः + उष्ट्रः = स एष उष्ट्रः। सः + अहम् = सोऽहम्। एषः + अहम् = एषोऽहम्।

यदि 'सः' अथवा 'एषः' शब्द के आगे कोई व्यञ्जन अथवा 'अ' भिन्न स्वर परे हो तो इनके विसर्ग का लोप हो जाता है परन्तु यदि इनसे अकार परे हो तो विसर्ग को 'ओ' हो जाता है।

(२) कुमाराः + अत्र तिष्ठन्ति = कुमारा अत्र तिष्ठन्ति। मृगाः + उपविशन्ति = मृगा उपविशन्ति। बालाः + इच्छन्ति = बाला इच्छन्ति। नृपाः + एवं प्रजाः + रक्षन्ति=नृपा एवं प्रजा रक्षन्ति। जनाः + गच्छन्ति = जना गच्छन्ति। [आ + विसर्गः + स्वर=विसर्गस्य लोपः] [आ + विसर्गः + मृदुव्यञ्जनम् = विसर्गस्य लोपः]

अश्वाः + कर्षन्ति = अश्वाः कर्षन्ति। नराः + पालयन्ति = नराः पालयन्ति [आ + विसर्गः + क्, ख्, अथवा प्, फ्=कोई विकार नहीं होता]।

मत्स्याः + तरन्ति = मत्स्यास्तरन्ति। बलीवर्दाः + चरन्ति = बलीवर्दाश्चरन्ति। लेखकाः + टीकन्ते = लेखकाष्टीकन्ते [आ + विसर्ग + त्, थ् = स्। आ + विसर्गः + च्, छ् = श्। आ + विसर्गः + ट्, ठ् = ष।]

* खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५ विसर्जनीयस्य सः ८।३।३४ वा शरि ८।३।३६। स्तोः श्चुना श्चु ८।४।४०

† एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ् समासे हलि ६।१।१३२ भोभगोअघो० अतोरोरप्लुतात्०

(३) मुनिः + भजति = मुनिर्भजति । धेनुः + यच्छति = धेनुर्यच्छति । कवेः + बुद्धिः = कवेर्बुद्धिः । गुरोः + गृहम्=गुरोर्गृहम् । सप्तभिः + अपूर्वैः= सप्तभिरपूर्वैः । वस्त्रैः + आवृतम् = वस्त्रैरावृतम् । पितुः + इच्छा = पितुरिच्छा । नृपतेः + उद्यानम् = नृपतेरुद्यानम् । ['अ' अथवा 'आ' को छोड़कर कोई स्वर + विसर्ग + मृदुव्यञ्जन अथवा स्वर = विसर्ग के स्थान में रेफ होता है] ।

(४) धेनुः + चरति = धेनुश्चरति । रविः + तपति = रविस्तपति । कवेः + टीका = कवेष्टीका । नृपतेः + छत्रम् = नृपतेश्छत्रम् । [कोई स्वर + विसर्ग + च्, छ् = श् । कोई स्वर + विसर्ग + त्, थ् = स् । कोई स्वर + विसर्ग + ट्, ठ् = ष्] ।

वायुः + प्रीणाति = वायुः प्रीणाति । तरोः + फलम् = तरोः फलम् । ऋषेः + कार्यम् = ऋषेः कार्यम् । कपिः + खनति = कपिः खनति [कोई स्वर + विसर्ग + क्–ख् + प्–फ् = कोई परिवर्तन नहीं होता] ।

संक्षेप में हम इस सन्धि को निम्न प्रकार से समझ सकते हैं:—

१. (अ) यदि विसर्ग से पूर्व कोई स्वर हो और उसके बाद 'क्, ख्' अथवा 'प् फ्' में से कोई भी वर्ण हो तो विसर्ग को कोई परिवर्तन नहीं होता ।

(आ) यदि 'च्, छ्' परे हों तो विसर्ग को 'श्' होता है ।

(इ) यदि 'ट्, ठ्' परे हों तो विसर्ग को 'ष्' होता है ।

(ई) यदि 'त्,' 'थ्' परे हों तो विसर्ग को 'स्' होता है ।

२. (अ) यदि विसर्ग से पूर्व 'अ' हो और उसके बाद कोई स्वर अथवा मृदुव्यञ्जन हो तो विसर्ग को 'ओ' होता है ।

(आ) यदि विसर्ग से पूर्व 'अ' अथवा 'आ' और उसके उत्तर अकार भिन्न, कोई स्वर अथवा मृदुव्यञ्जन हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है ।

३. यदि विसर्ग से पूर्व 'अ' 'आ' के अतिरिक्त कोई स्वर हो और उसके बाद कोई स्वर अथवा मृदुव्यञ्जन हो तो विसर्ग को 'र्' होता है । अर्थात् र् को विसर्ग नहीं होता वह अपने असली रूप में ही रहता है ।

(५) स्वर् + राज्यम् = स्व–राज्यम्=स्वाराज्यम् । निर् + रागः = नि–रागः = नीरागः । दुर् + रक्तं = दु–रक्तम् = दूरक्तम् । वपुस् + रम्यम्= वपुर् रम्यं, वपुरम्यं, वपूरम्यम् ।

इन उदाहरणों में दो रेफ पास पास आये हैं परन्तु सिद्ध रूपों में प्रथम रेफ दिखलाई नहीं पड़ता है और उससे पूर्ववर्ति स्वर अपने दीर्घ रूप में दिखलाई पड़ता है । अत :—

नियम :—*यदि रेफ से परे रेफ हो तो पूर्व रेफ का लोप हो जाता है और लुप्त रेफ से पूर्व स्वर को दीर्घ हो जाता है ।

संग्रहकारिकाः—

विसर्गो रस्यावसाने झलां चर्त्वं च वा तथा ।
पदान्ते यस्य रुत्वं स्यादिसादावशि तच्छ्रुतिः ॥
असि रोरति हश्युत्वम् , आसासो राति चेचि यः ।
लघुप्रयत्नो वा योऽयम् , आसिलोपोऽतिहश्यपि ॥
रोरिलोपे पूर्वदीर्घो, रो विसर्गः कपोः खफोः ।
तत्र ᳵकᳶपौ च वा स्यातां, शविसर्गौ तथा शरि ॥
विसर्गस्य सकारः स्यात् कुपुभिन्ने परे खरि ।
श्चुष्टू चास्य श्चुष्टुयोगे, तस्मात् स्तावेव स श्रुतिः ॥

* रो रि ८।३।१४ ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ६।३।१११

परिशिष्ट

णिजन्त [प्रेरणार्थक क्रिया]

जब कोई किसी से कोई कार्य करने को कहता है तब कहने-वाला प्रयोजक और जिससे काम करने को कहा जाता है वह प्रयोज्य कहलाता है। इसी अवस्था में जो प्रयोजक की क्रिया होती है, वह णिजन्त कहलाती है। यथाः—कृष्णः ओदनं पचति, शिवः कृष्णेन ओदनं पाचयति—कृष्ण भात पकाता है, शिव कृष्ण से भात पकवाता है। इसमें अणिजन्त अवस्था में 'पकाना' क्रिया का कर्त्ता 'कृष्ण' था और णिजन्त अवस्था में 'पकवाना' क्रिया का कर्त्ता 'शिव' है। इसलिए णिजन्त में 'शिव' को 'प्रयोजक कर्त्ता' 'कृष्ण' को 'प्रयोज्य कर्त्ता' और 'पाचि' को णिजन्त धातु कहते हैं।

धातुओं के आगे णिच् प्रत्यय करने से णिजन्त धातु बनते हैं। णिच् प्रत्यय करने से अकर्मक धातुएँ सकर्मक हो जाती हैं। जैसे–बालकः शेते, माता बालकं शाययति–लड़का सोता है, माता लड़के को सुलाती है इसमें 'शेते' क्रिया अकर्मक है, पर णिजन्त में सकर्मक हो गयी है।

क्रिया की अणिजन्त अवस्था का जो कर्त्ता वह णिजन्त अवस्था में प्रयोज्य कर्त्ता होता है, उसमें विशेषतः तृतीया ही विभक्ति होती है। जैसे :—गोपालः हरिं त्यजति, रामः गोपालेन हरिं त्याजयति—गोपाल हरि को छोड़ता है, राम गोपाल से हरि को छोड़वाता है। किन्तु, निम्नलिखित धातुओं के प्रयोग में प्रयोज्य कर्त्ता में तृतीया न होकर द्वितीया विभक्ति होती है :—

बुद्धि-भोजन-शब्दार्थ-गत्यर्थाऽकर्मधातुषु।
अण्यन्तेष्वेषु यः कर्ता भवेण्ण्यन्तेषु कर्म तत्॥

गमनार्थक (जाना आदि अर्थ के बोधक), आहारार्थक (भोजनार्थक), बोधार्थक (समझना आदि अर्थ के बोधक), शब्दार्थक (शब्दकर्मक) और अकर्मक धातुओं के प्रयोग में प्रयोज्य-कर्त्ता अर्थात् अणिजन्त अवस्था के कर्त्ता में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे :—

अणिजन्त :—

गमनार्थक :—प्रभुः ग्रामं गच्छति—प्रभु गाँव जाता है।
आहारार्थक :—शिशुरन्नं भुङ्क्ते—लड़का अन्न खाता है।
बोधार्थक :—शिष्यो धर्मं बुध्यते—चेला धर्म समझता है।
शब्दार्थक :—छात्रः वेदमधीते—विद्यार्थी वेद पढ़ता है।
अकर्मक :—शिशुः शेते—लड़का सोता है।

णिजन्त—

रामः प्रभुं ग्रामं गमयति—राम प्रभु को गाँव पर भेज रहा है।
राधा शिशुमन्नं भोजयति—राधा बच्चे को अन्न खिलाती है।
आचार्यः शिष्यं धर्मं बोधयति—आचार्य चेले को धर्म समझा रहा है।
गुरुः छात्रं वेदमध्यापयति—गुरु विद्यार्थी को वेद पढ़ाता है।
जननी शिशुं शाययति—माता पुत्र को सुलाती है।

टिप्पणी—गमनार्थ में—प्रवेशन (पैठना) आरोहण (चढ़ना) तरण (तैरना) मोचन (छोड़ना) प्रापण (पहुँचाना) प्राप्ति (मिलाना) आदि भी लिये जाते हैं। इसीसे 'रामं गृहमध्यं प्रवेशय—राम को घर में पैठावो। 'मां काशीं प्रापय'—मुझे काशी पहुँचाओ आदि पद सिद्ध होते हैं। आहारार्थ में—अशन, भोजन, अभ्यवहार, प्रत्यवसान (खाना) और पानार्थ आदि का भी ग्रहण होता है। इसी से 'स रामं जलं पाययति'–वह राम को जल पिलाता है, इत्यादि प्रयोग सिद्ध होते हैं। बोधार्थ में-ग्रहणार्थ (लेना) दर्शनार्थ (देखना) श्रवणार्थ (सुनना) आदि का भी

ग्रहण है। इसी से 'यक्षः त्वां गीतं श्रावयति'—यक्ष तुझे गीत सुनाता है, इत्यादि प्रयोग होते हैं। ग्रहणार्थ में द्वितीया तथा तृतीया दोनों के प्रयोग देखने में आते हैं। जैसे—तस्याः दारिकायाः यथार्हेण कर्मणा मां पाणिम् अग्राहयेताम्—(उन्होंने) उस कन्या का पाणिग्रहण, विधि के साथ मुझसे कराया। विदितार्थस्तु पार्थिवः त्वया दुहितुः पाणिं ग्राहयिष्यति—वृत्तान्त जानकर राजा अपनी कन्या का पाणिग्रहण तुमसे करायगा। शब्दार्थ में—अध्ययन, पठन, वाचन और श्रवण आदि भी गिने जाते हैं इसीसे 'पण्डितः त्वां शास्त्रं श्रावतति'—पण्डित तुझको शास्त्र सुनाते हैं आदि सिद्ध होते हैं।

नी और वह धातु के गमनार्थ होने पर भी प्रयोज्य कर्त्ता में द्वितीया न होकर तृतीया होती है। जैसे :—भृत्यो भारं नयति वहति वा—नौकर बोझा ले जाता है :—भृत्येन भारं नाययति वाहयति वा—मालिक नौकर से बोझा लिवा ले जाता है।

वह धातु का यदि सारथि कर्त्ता हो तो तृतीया न होकर द्वितीया होती है। जैसे—अश्वा रथं वहन्ति—घोड़े रथ खींचते हैं। सारथिः अश्वान् रथं वाहयति—सारथि घोड़ों से रथ खिंचवाता है।

अद् और खाद् के (आहारार्थक होने पर भी) प्रयोज्य कर्त्ता में द्वितीया न होकर तृतीया होती है। जैसे :—ब्राह्मणः मिष्टान्नं खादति अत्ति वा=ब्राह्मण मिठाई खाता है। यजमानः ब्राह्मणेन मिष्टान्नं खादयति आदयति वा=यजमान ब्राह्मण को मिठाई खिलाता है।

भक्ष धातु से जब हिंसा का बोध नहीं होता, तब उसके प्रयोज्य कर्त्ता में द्वितीया न होकर तृतीया होती है और हिंसा का बोध होने से द्वितीया ही होती है। जैसे, अहिंसा में:—रामः अन्नं भक्षयति=राम अन्न खा रहा है; पिता रामेण अन्नं भक्षयति = पिता

बेटे (राम) को अन्न खिला रहा है। हिंसा में :—मार्जारः मूषिकं भक्षयति = बिड़ाल चूहा खाता है; स मार्जारं मूषिकं भक्षयति = वह बिड़ाल को चूहा खिलाता है।

जल्प, भाष्, वि-लप, आ-लप, आदि धातु शब्दकर्मक न होने पर भी इनके प्रयोज्य कर्त्ता में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे :- शिष्यः धर्मं जल्पति, भाषते, आलपति वा = शिष्य धर्म कहता है; गुरुः शिष्यं धर्मं जल्पयति, भाषयति, आलापयति वा—गुरु शिष्य से धर्म कहवाता है।

स्मृ (स्मरण करना) घ्रा (सूँघना) आदि धातुओं के प्रयोज्य कर्त्ता में द्वितीया विभक्ति नहीं होती। जैसे :—हरिः मातरं स्मरति, सौरभं जिघ्रति = हरि माता को स्मरण करता है, सुगन्धि सूँघता है, श्यामः हरिणा मातरं स्मारयति, सौरभं घ्रापयति वा— श्याम हरि को माता का स्मरण कराता है, सुगन्धि सुँघाता है।

णिजन्त दृश धातु के प्रयोज्य कर्त्ता में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे :—भक्ताः हरिं पश्यन्ति = भक्त हरि को देखते हैं; गुरुः भक्तान् हरिं दर्शयति—गुरु भक्तों को भगवान् दिखाते हैं।

णिजन्त में हृ और कृ धातु के प्रयोज्य कर्त्ता में विकल्प से द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे:—दासः कटं करोति, हरति वा = नौकर चटाई बनाता है या ले जाता है। स्वामी भृत्यं भृत्येन वा कटं कारयति, हारयति वा = मालिक नौकर से चटाई बनवाता है या लिवा ले जाता है।

अभिपूर्वक वादि धातु (चुरादि) और दृश धातु का जब णिजन्त में आत्मनेपद में प्रयोग हो तो प्रयोज्य कर्त्ता में विकल्प से द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे :—कृष्णः रामेण रामं वा गुरुम् अभिवादयते = कृष्ण राम से गुरु को प्रणाम कराता है। जननी शिशुना शिशुं वा चन्द्रं दर्शयते = माता बच्चे को चन्द्रमा दिखाती है।

व्यवहारोपयोगी कतिपय णिजन्त धातु

अस् (होना) भावयति,	अस् (फेंकना) आसयति,
इ (जाना) गमयति,	अधि + इ (पढ़ना) अध्यापयति
प्रति + इ (समझना, जानना) प्रत्याययति,	ऋ (जाना) अर्पयति,
कृ (करना) कारयति,	क्री (खरीदना) क्रापयति,
ख्या (कहना) ख्यापयति,	गम् (जाना) गमयति,
गै (गाना) गापयति,	ग्रह (लेना) ग्राहयति,
घ्रा (सूँघना) घ्रापयति,	चि (चुनना) चापयति
जन् (पैदा होना) जनयति,	जागृ (जागना) जागरयति,
जि (जीतना) जापयति,	ज्ञा (जानना) ज्ञपयति, ज्ञापयति,
दा (देना) दापयति,	दृश् (देखना) दर्शयति
	पच् (पकाना) पाचयति,
पा (पीना) पाययति,	पा (पालन करना) पालयति,
पू (पवित्र करना) पावयति,	प्री (प्रसन्न करना) प्रीणयति प्रायति,
प्लु (डूबना) प्लावयति,	बुध् (जानना) बोधयति,
ब्रू (बोलना) वाचयति,	भी (डरना) भाययति, भापयति, भीषयते,
भुज (खाना) भोजयति,	भू (होना) भावयति,
मुह् (मुग्ध वा मूर्छित होना) मोहयति,	
या (जाना) यापयति,	युज् (जोड़ना) योजयति,
रुह् (जनमना) रोपयति, रोहयति	रम् (खेलना) रमयति,
विश् (पैठना) वेशयति,	शम् (शान्ति करना) शमयति,
श्रु (सुनना) श्रावयति,	स्था (ठहरना) स्थापयति,
स्ना (नहाना) स्नापयति, स्नपयति,	

स्मृ (स्मरण करना) स्मारयति, हन् (मारना) घातयति,
हा (छोड़ना) हापयति ह्ृ (ले जाना) हारयति,
ह्री (लजाना) ह्रेपयति, ह्वे (बुलाना) ह्वाययति ।

अभ्यास

(१) किन धातुओं के प्रयोग में प्रयोज्य कर्त्ता में द्वितीया होती है? उदाहरण दो ।
(२) प्रयोज्य कर्त्ता किसे कहते हैं ?
(३) प्रयोजक कर्त्ता से क्या तात्पर्य है ?
(४) शुद्ध करो :—

आचार्यश्छात्रैः वेदं पाठयति । चैत्रः मैत्रमन्नं पाचयति । सुरेशः रमेशेन ग्रामं गमयति । स मया वेदंश्रावयिष्यति । श्रेष्ठिनः ब्राह्मणान् मिष्टान्नं भक्षयाञ्चक्रुः । विदूषकः सर्वैः हासयति । सारथिः अश्वैः रथं वाहयिष्यति । अश्वपतयः घोटकैः जलं पाययन्ति । नृपः चाण्डालं विद्रोहिणः घातयामास ।

उपसर्गयोग से अर्थपरिवर्त्तन

धातु और उपसर्ग का सम्बन्ध व्याकरण में एक महत्त्व का स्थान रखता है । उपसर्गों के योग का प्रभाव धातुओं के अर्थ पर कई प्रकार से पड़ता है । वैदिक भाषा में धातु और उपसर्ग अलग-अलग भी प्रयुक्त होते थे किन्तु संस्कृत साहित्य में दोनों अलग नहीं किये जा सकते हैं । उपसर्गों का प्रयोग धातु के साथ ही होता है, अलग नहीं । उपसर्ग धातुओं के पूर्व में ही जोड़े जाते हैं । धातुओं पर उपसर्गों का प्रभाव तीन प्रकार का होता है । कोई उपसर्ग धातु के मुख्य अर्थ को बाधकर नवीन अर्थ का बोध कराता है, कोई धातु के अर्थ का ही अनुवर्त्तन करता है और कोई विशेषण होकर उसी धात्वर्थ को और भी विशिष्ट बना देता है ।

धात्वर्थं बाधते कश्चित् कश्चित् तमनुवर्त्तते ।
विशिनष्टि तमेवार्थमुपसर्गगतिस्त्रिधा ॥ १ ॥
उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते ।
प्रहाराहार-संहार-विहार-परिहारवत् ॥ २ ॥

मुख्य तथा प्रचलित व्यवहारोपयोगी उपसर्ग

(१) भू (होना)

१. भवति—होता है। २. अनुभवति—अनुभव करता है। ३. अभिभवति—दबाता है। ४. पराभवति—पराभव करता है। ५. परिभवति—तिरस्कार करता है। ६. उद्भवति—उत्पन्न होता है। ७. आविर्भवति—प्रकट होता है। ८. प्रादुर्भवति—उत्पन्न होता है। ९. सम्भवति–हो सकता है। १०. तिरोभवति—छिपता है। ११. अन्तर्भवति—छिपता है। १२. प्रभवति—समर्थ या पैदा होता है।

(२) वद (बोलना)

१. वदति—बोलता है। २. अपवदति—छोड़ता है। ३. अपवदति—दूषित करता है। ४. अनुवदति—अनुवाद करता है। ५. उपवदति—प्रार्थना करता है। ६. विवदते—झगड़ा करता है। ७. संप्रवदन्ते—मिलकर बोलते हैं। ८. विप्रवदन्ते—विरुद्ध बोलते हैं। ९-प्रतिवदति—जवाब देता है। १०. संवदति—बात करता है।

(३) स्था (ठहरना)

१. तिष्ठति—ठहरता है। २. प्रतिष्ठते—प्रस्थान करता है। ३. उपतिष्ठते—उपस्थान करता है। ४. उत्तिष्ठति—उठता है। ५. अनुतिष्ठति—करता है। ६. संतिष्ठते—मरता है। ७. अवतिष्ठते—स्थिर होता है।

(४) हृ (ले जाना, चुराना)

१. हरति—ले जाता है। २. अपहरति—चुराता है। ३. अनु-

हरति—नकल करता है। ४. परिहरति—छोड़ता है। ५. अवह-रति—लाता है ६. व्याहरति—बोलता है। ७. व्यवहरति—व्यव-हार करता है। ८. अभ्यवहरति—खाता है। ९. प्रहरति—मारता है। १०. उपसंहरति—उपसंहार करता है। ११. विहरति—विहार करता है। १२. समाहरति—इकट्ठा करता है। १३. उद्धरति—निकालता है। १४. उपहरति—उपहार देता है। १५. उपाहरति—लाता है। १६. उदाहरति—उदाहरण देता है। १७. प्रत्युदाहरति—दूसरा उदाहरण देता है। १८. संहरति—संहार करता है।

(५) नी (ले जाना)

१. नयति—ले जाता है। २. विनयति—विनय करता है। ३. विनयते—गिनता या खर्च करता है। ४. अनुनयति—मनाता है। ५. परिणयति—विवाह करता है। ६. निर्णयति—निर्णय करता है। ७. अभिनयति—अभिनय करता है। ८. उपनयति—पास में लाता है। ९. अपनयति—हटाता है। १०, आनयति—लाता है। ११. प्रणयति—प्रेम करता है। १२. उन्नयते—ऊपर ले जाता है।

(६) गम् (जाना)

१. गच्छति—जाता है। २. आगच्छति—आता है। ३. संगच्छते—संगत होता है। ४. निर्गच्छति—निकलता है। ५. अनुगच्छति—पीछे जाता है। ६. अवगच्छति—जानता है। ७. अधिगच्छति—प्राप्त करता है। ८ अभ्यागच्छति—सामने आता है। ९. प्रतिगच्छति—लौटता है। १०. अभ्युपगच्छति—स्वीकार करता है। ११. उद्गच्छति—ऊपर जाता है। १२. अप-गच्छति—दूर हटता है।

(७) कृ (करना)

१. करोति—करता है। २. अनुकरोति—नकल करता है। ३. अपकरोति—हानि करता है। ४. विकुरुते—उच्चारण करता है।

५. विकुर्वते—विकार प्राप्त करते हैं। ६. उपकुरुते—सेवन करता है। ७. अधिकुरुते—क्षमा या पराभव करता है। ८. तिरस्करोति-तिरस्कार करता है। ९. निराकरोति—हटाता है। १०. परिष्करोति—परिष्कृत करता है। ११. आविष्करोति—प्रकट करता है। १२. संस्करोति—संस्कार करता है। १३. उत्कुरुते—चुगली करता है। १४. उदाकुरुते—झपटता है। १५. प्रकुरुते—जबर्दस्ती करता है। १६. उपस्कुरुते—दूसरे का गुण ग्रहण करता है। १७. अलंकरोति—सजाता है। १८. उपकरोति—भलाई करता है। १९. अपकरोति—बुराई करता है। २०. अपाकरोति—खण्डन करता है २१. प्रत्युपकरोति—प्रत्युपकार करता है।

(८) चर (घूमना या खाना)

१. चरति—घूमता है या खाता है। २. उच्चरते—उल्लंघन करता है। ३. उच्चरति—ऊपर जाता है। ४. विचरति—विचरण करता है। ५. आचरति—आचरण करता है। ६. परिचरति-सेवा करता है। ७. उपचरति—उपचार करता है। ८. अनुचरति—अनुसरण करता है। ९. संचरते—भ्रमण करता है। १०. दुराचरति—बुरा आचरण करता है। ११. अतिचरति—ज्यादा गमन करता है। १२. व्यभिचरति—व्यभिचार करता है। १३. अपचरति—विपरीत करता है।

(९) लप् (बोलना)

१. लपति—बोलता है। २. विलपति—विलाप करता है। ३. प्रलपति—बकवाद करता है। ४. आलपति—बोलता है। ५. संलपति—वार्त्तालाप करता है। ६. अपलपति—छिपाता है।

(१०) पत् (गिरना)

१. पतति—गिरता है। २. प्रणिपतति—प्रणाम करता है। ३. निपतति—गिरता है। ४. उत्पतति—उड़ता है। ५. प्रपतति—गिरता है।

(११) रुह् (जमना)

१. रोहति—जमता है। २. प्ररोहति—उत्पन्न होता है। ३. अधिरोहति—चढ़ता है। ४. अवरोहति—उतरता है। ५. आरोहति—चढ़ता है। ६. संरोहति—मिलता है।

(१२) दिश (देना)

१. दिशति—देता है। २. आदिशति—आज्ञा देता है। ३. निर्दिशति—बतलाता है। ४. उद्दिशति—उद्देश्य कहता है। ५. उपदिशति—उपदेश करता है। ६. निर्दिशति—अनुमति देता है। ७. संदिशति—संदेश कहता है। ८. व्यपदिशति—मुख्य व्यवहार करता है। ९. अतिदिशति—काल्पनिक व्यवहार करता है। १०. अपदिशति—बहाना करता है। ११. प्रतिनिर्दिशति—विधेय को बतलाता है।

(१३) तृ (तैरना)

१. तरति—तैरता है। २. अवतरति—उतरता है। ३. वितरति—देता है। ४. उत्तरति—जवाब देता है। ५. संतरति—तैरता है।

(१४) सृ (खसकना)

१. सरति—जाता है। २. अनुसरति—अनुसरण करता है। ३. प्रसरति—फैलता है। ४. अवसरति—निकलता है। ५. निःसरति—निकलता है। ६. अपसरति—हटता है।

(१५) क्षिप (फेंकना)

१. क्षिपति—फेंकता है। २. निक्षिपति—नीचे फेंकता है। ३. प्रक्षिपति—प्रक्षेप करता है। ४. आक्षिपति—दोष लगाता है। ५. अधिक्षिपति—दोष लगाता है। ६. संक्षिपति—संक्षेप करता है। ७. उत्क्षिपति—ऊपर फेंकता है। ८. अधःक्षिपति—नीचे फेंकता है। ९. विक्षिपति—विक्षिप्त होता है।

(१६) क्रमु (पैर चलाना)

१. क्रामति—चलता है। २. क्रमते—उत्साह करता है। ३. उपक्रमते—आरम्भ करता है। ४. प्रक्रमते—आरम्भ करता है। ५. विक्रमते—आगे बढ़ता है। ६. पराक्रमते—अप्रतिहत होता है। ७. आक्रमते—उदय लेता है। ८. अतिक्रामति—उल्लंघन करता है। ९. परिक्रामति—प्रदक्षिणा करता है। १०. निष्क्रामति—निकलता है। ११. अपक्रामति—हटता है। १२. संक्रामति—संक्रान्त होता है। १३. अनुक्रामति—अनुक्रम करता है। १४. आक्रामति—ऊपर जाता है।

(१७) ईक्ष (देखना)

१. ईक्षते—देखता है। २. अपेक्षते—इच्छा करता है। ३. उपेक्षते—लापरवाही करता है। ४. वीक्षते—देखता है। ५. प्रतीक्षते—प्रतीक्षा करता है। ६. परीक्षते—परीक्षा करता है। ७. निरीक्षते—निगरानी करता है। ८. समीक्षते—विमर्श करता है। ९. उत्प्रेक्षते—संभावना करता है। १०. अन्वीक्षते—चिन्ता या मनन करता है।

(१८) ईह (चेष्टा करना)

१. ईहते—चेष्टा करता है। २. समीहते—चाहता है। ३. निरीहते—निःस्पृह होता है।

(१९) ऊह (विचार करना)

१. ऊहते—विचार करता है। २. अपोहते—छोड़ता है। ३. ऊपोहते—सूक्ष्म विचार करता है। ४. समूहते—शोधित करता है। ५. प्रत्यूहते—विघ्न डालता है। ६. व्यूहते—संगठित करता है। ७. दुरूहते—कठिनाई से जानता है।

(२०) अञ्च (जाना, पूजा करना)

१. अञ्चति—जाता है या पूजा करता है। २. प्राञ्चति—उन्नत होता है। ३. पराञ्चति—लौटता है। ४. न्यञ्चति—नीचे जाता है।

५. प्रत्यञ्चति—अवनति प्राप्त करता है। ६. उदञ्चति—ऊपर जाता है। ७. सहाञ्चति—साथ जाता है। ८. अवाञ्चति—अधोमुख होता है। ९. पर्युदञ्चति—पैंचा (उधार) लेता है। १०. समञ्चति—अच्छी तरह जाता या पूजा करता है।

(२१) अय (जाना)

१. अयते—जाता है। २. प्लायते—भागता है। ३. पलायते—भागता है। ४. उदयते—उदय लेता है। ५. व्ययते—खर्च करता है। ६. निरयते—निकलता है। ७. दुरयते—दुःखी होता है। ८. निलयते—विलीन होता है। ९. दुलयते—काँपता है।

(२२) अर्थ (मांगना)

१. अर्थयते—मांगता है। २. समर्थयते—अनुमोदन करता है। ३. अभ्यर्थयते-निवेदन करता है। ४. प्रार्थयते-प्रार्थना करता है। ५. व्यर्थयते—विफल करता है। ६. अन्वर्थयते—अर्थानुकूल करता है।

(२३) असु (फेंकना)

१. अस्यति—फेंकता है। २. अपास्यति—दूर करता है। ३. अध्यस्यति—आरोप करता है। ४. विन्यस्यति—स्थापित करता है। ५. अभ्यस्यति—कण्ठस्थ करता है। ६. निरस्यति—हटाता है। ७. व्युदस्यति—निकालता है। ८. परास्यति—परास्त करता है। ९. व्यत्यस्यति—उलट-पलट करता है। १०. विपर्यस्यति—विपर्यास करता है। ११. समस्यति—संक्षिप्त करता है।

(२४) पद (चलना, जाना)

१. पद्यते—जाता है। २. उत्पद्यते—पैदा होता है। ३. विपद्यते—मरता है। ४. संपद्यते—सुखी होता है। ५. उपपद्यते—युक्त होता है। ६. आपद्यते—आपद् में पड़ता है। ७. प्रपद्यते—शरण में जाता है। ८. निष्पद्यते—निष्पन्न होता है। ९. प्रतिपद्यते—आज्ञा मांगता है। १०. व्युत्पद्यते—व्युत्पन्न होता है।

(२५) मन् (मानना, समझना)

१. मन्यते—मानता है। २. अवमन्यते—तिरस्कार करता है। ३. अनुमन्यते—सलाह देता है। ४. संमन्यते—सम्मान करता है। ५. विमन्यते—उपेक्षा करता है। ६. अभिमन्यते—घमंड करता है।

(२६) आप् (पाना)

१. आप्नोति—प्राप्त करता है। २. व्याप्नोति—व्याप्त करता है। ३. समाप्नोति—समाप्त करता है या होता है। ४. अवाप्नोति—प्राप्त करता है। ५. पर्याप्नोति—पर्याप्त करता या होता है। ६. प्राप्नोति—पाता है।

(२७) आस् (बैठना)

१. आस्ते—बैठता है। २. उदास्ते—उदासीन होता है। ३. उपास्ते—उपासना करता है। ४. अध्यास्ते—रहता है। ४. अन्वास्ते—पीछे बैठता है।

(२८) इण् (जाना)

१. एति—जाता है। २. प्रत्येति—विश्वास करता है। ३. अत्येति—नष्ट होता है। ४. अन्वेति—पीछे मिलता है। ५. विपर्येति—उलटा होता है। ६. उपैति—पास जाता है। ७. अभ्येति—सामने जाता है। ८. व्यत्येति—उलट पलट करता है या बिताता है। ९. व्येति—खर्च करता है। १०. अवैति—जानता है। ११. अपैति—दूर होता है। १२. समवैति—सम्बद्ध होता है। १३. समन्वेति—समन्वय करता है। १४. अभिप्रैति—इष्ट करता है। १५. उदेति—उदय होता है।

(२९) ग्रह् (लेना)

१. गृह्णाति—लेता है। २. आगृह्णाति—छिपता है। ३. अनुगृह्णाति—कृपा करता है। ४. दुरागृह्णाति—हठ करता है। ५. प्रति-

गृह्णाति—दान लेता है। ६. विगृह्णाति—लड़ाई करता है। ७. निगृह्णाति—कैद करता है। ८. संगृह्णाति—इकट्ठा करता है। ९. परिगृह्णाति—आसक्ति करता है।

(३०) चि (चुनना)

१. चिनोति—चुनता है। २. परिचिनोति—पहचानता है। ३. निचिनोति—इकट्ठा करता है। ४. उपचिनोति—बढ़ाता है। ५. अपचिनोति—घटाता है। ६. संचिनोति—जमा करता है। ७. निश्चिनोति—निश्चय करता है। ८. समुच्चिनोति—अधिक करता है। ९. अन्वाचिनोति—आनुषङ्गिक (गौण) करता है। १०. अव-चिनोति—इकट्ठा करता है।

(३१) ज्ञा (जानना)

१. जानाति—जानता है। २. जानीते—प्रवृत्त होता है। ३. अपजानीते—छिपाता है। ४. प्रतिजानीते—प्रतिज्ञा करता है। ५. अनुजानाति—अनुमति देता है। ६. अभ्यनुजानाति—स्वीकार करता है। ७. प्रत्यभिजानाति—प्रत्यक्ष का स्मरण करता है। ८. अभिजानाति—पहचानता है। ९. उपजानाति—आरम्भ करता है। १०. संजानीते—देखता है। ११. अवजानाति—अपमान करता है। १२. विजानाति—निन्दा करता है।

(३२) धा (धारण करना-पोषण करना)

१. दधाति—धारण करता है। २. विदधाति—विधान करता है। ३. अनुसंदधाति—अनुसंधान करता है। ४. अन्तर्धत्ते—छिपता है। ५. तिरोधत्ते—छिपता है। ६. अभिधत्ते—बोलता है। ७. अवधत्ते—ध्यान देता है। ८. पिधत्ते—ढाँकता है। ९. अपि-धत्ते—ढाँकता है। १०. संधत्ते—मेल करता है। ११. परिधत्ते—पहनता है। १२. आधत्ते—स्थापित करता है। १३. निधत्ते—रखता है। १४. प्रणिधत्ते—ध्यान करता है। १५. प्रतिनिधत्ते—प्रतिनिधित्व करता है।

(३३) बन्ध (बाँधना)

१. बध्नाति—बांधता है। २. प्रबध्नाति—प्रबन्ध करता है। ३. निबध्नाति—रचता है। ४. प्रतिबध्नाति—रोक लगाता है। ५. सम्बध्नाति—जोड़ता है। ६. उद्बध्नाति—फांसी लगाता है। ७. निर्बध्नाति—प्रेम करता है।

(३४) युज् (जोड़ना)

१. युनक्ति—जोड़ता है। २. अभियुनक्ति—अभियोग करता है। ३. उद्युनक्ति—उद्योग करता है। ४. संयुनक्ति—संयुक्त करता है। ५. प्रतियुनक्ति—स्पर्द्धा करता है। ६. अनुयुनक्ति—पूछता है। ७. पर्यनुयुनक्ति—प्रत्युत्तर देता है। ८. वियुनक्ति—वियुक्त करता है। ९. नियुनक्ति—नियुक्त करता है।

(३५) वृतु (रहना)

१. वर्त्तते—है। २. प्रवर्त्तते—प्रवृत्त होता है। ३. निवर्त्तते—लौटता है। ४. परिवर्त्तते—घूमता है। ५. अनुवर्त्तते—पीछे चलता है। ६. निर्वर्त्तते—शान्त होता है। ७. दुर्वर्त्तते–बुरा आचरण करता है। ८. विवर्त्तते—बदलता है। ९. आवर्त्तते–दुहराता है।

(३६) षद् (ठहरना, दुखी होना)

१. सीदति—ठहरता या दुःखी होता है। २. प्रसीदति-प्रसन्न होता है। ३. विषीदति—खिन्न होता है। ४. निषीदति—थकता है। ५. अवसीदति—थकता है। ६. पर्यवसीदति—समाप्त होता है। ७. उपसीदति—पास बैठता है।

पदविधान

परस्मैपद

पहले (पृ. १०८ में) बतलाया गया है कि धातुओं के आगे जो विभक्तियाँ लगती हैं, उनके दो भेद हैं। एक परस्मैपद और दूसरा आत्मनेपद। ति, तः, अन्ति आदि परस्मैपद हैं और ते, आते, अन्ते आदि आत्मनेपद हैं। इन विभक्तिओं के भेद के अनुकूल धातुओं के भी तीन भेद होते हैं:—परस्मैपदी, आत्मनेपदी और उभयपदी।

परस्मैपदी धातुओं के बाद परस्मैपद की, आत्मनेपदी धातुओं के बाद आत्मनेपद की तथा उभयपदी धातुओं के बाद दोनों प्रकार की विभक्तियाँ लगती हैं। जैसे, प० प० :—भू + अ + ति = भवति। आ० प०—एध् + अ + ते = एधते। उ० प०—पचति, पचते आदि।

विशेषः—क्रिया का फल दूसरे के लिये हो तो परस्मैपद का प्रयोग होना चाहिये, क्रिया का फल कर्तृगामी, (कर्त्ता के लिये) हो तो आत्मनेपद का प्रयोग होना चाहिये, ऐसा नियम होने पर भी व्यवहार में इसका पालन नहीं किया जाता। जो जिस पद का जहाँ चाहता है यथेष्ट व्यवहार करता है।

धातुओं के ऊपर बतलाये हुए ये पद अर्थात परस्मैपद, आत्मनेपद और उभयपद खास खास अर्थों तथा उपसर्गों के योग के कारण बदल जाते हैं। परस्मैपदी धातु आत्मनेपदी, आत्मनेपदी धातु परस्मैपदी तथा उभयपदी केवल आत्मनेपदी अथवा परस्मैपदी हो जाते हैं। कुछ विशेष विशेष धातुओं के ऐसे पद-विधान के नियम छात्रों की सुविधा के लिये नीचे दिये जाते हैं :—

परस्मैपद-विधान

(१) रम्—(क) यह धातु वि, आ, परि उपसर्ग के बाद रहने पर परस्मैपदी हो जाता है। जैसे :—विरमति = विरत होता है

आरमति = आराम करता है। परिरमति—प्रसन्न होता है आदि।

(ख) 'उप' उपसर्ग के बाद रहने से विकल्प से परस्मैपदी होता है। जैसे :—उपरमति उपरमते = शान्त होता है, हटता है।

(२) कृ (उभयपदी) :—यह धातु अनु, परा उपसर्ग से परे रहने पर परस्मैपदी हो जाता है। जैसे :—अनुकरोति = अनुकरण करता है। पराकरोति = अस्वीकार करता है।

(३) क्षिप् :—यह धातु अभि, प्रति, अति उपसर्ग पूर्वक रहने से परस्मैपदी हो जाता है। जैसे:—अभिक्षिपति, प्रतिक्षिपति, अतिक्षिपति = दबा देना है।

(४) वह (उभयपदी) :—'प्र' उपसर्ग पूर्वक रहने से परस्मैपदी हो जाता है। जैसे:—प्रवहति = बहता है।

(५) नीचे के धातु णिजन्त—णिच् प्रत्ययान्त-होने पर केवल परस्मैपदी हो जाते हैं जैसे, बुध् :—बोधयति, युध्:—योधयति, नश्—नाशयति, जन्—जनयति, इङ्—अध्यापयति, प्रु—प्रावयति, द्रु—द्रावयति, स्रु—स्रावयति।

(६) भोजन करना तथा चलना अर्थ वाले धातु णिजन्त-प्रेरणार्थकदशा—में परस्मैपदी हो जाते हैं। जैसे:—भोजनार्थक:-निगारयति, भोजयति, भक्षयति, चलनार्थक:—चालयति, वेपयति, कम्पयति इत्यादि। परन्तु भक्षणार्थक अद् धातु उभयपदी होता है। जैसे, आदयति, आदयते।

(७) अणिजन्त अवस्था :—सामान्य अवस्था-में प्राणधारी कर्त्ता वाले अकर्मक धातु णिजन्त (प्रेरणावस्था) में परस्मैपदी हो जाते हैं। जैसे:—कृष्णः शेते, माता कृष्णं शाययति = माता कृष्ण को सुलाती है। सामान्यावस्था में प्राणिवाचक कर्त्ता नहीं रहने पर दोनों पद के प्रत्यय होते हैं जैसे:—जलं शुष्यति, रविर्जलं शोषयति शोषयते वा = सूर्य जल सुखाते हैं।

अभ्यास

(१) 'रम्' धातु का परस्मैपद में प्रयोग किन किन उपसर्गों के योग में होता है ?

(२) अनु तथा परा के पूर्व रहने पर 'कृ' धातु में कौन पद होता है ?

(३) क्षिप् तथा वह् का प्रयोग परस्मैपद में कब होता है ?

(४) किन णिजन्त धातुओं में केवल परस्मैपद का प्रयोग होता है ?

आत्मनेपद

(१) भाववाच्य और कर्मवाच्य में सब धातु आत्मनेपदी हो जाते हैं। जैसे :—भू (परस्मैपदी) भूयते, सेव् (आत्मनेपदी) सेव्यते, पच् (उभयपदी)—पच्यते।

(२) जि:—यह धातु वि और परापूर्वक रहने से आत्मनेपदी हो जाता है। जैसे, विजयते = विजयी होता है। पराजयते=पराजित होता है, हार मानता है। क्री (उ० प०) :—परि, वि, अवपूर्वक रहने से केवल आत्मनेपदी होता है। जैसे, विक्रीणीते= बेचता है। परिक्रीणीते, अवक्रीणीते = खरीदता है।

(३) विश्:—निपूर्वक रहने से आत्मनेपदी होता है। जैसे, निविशते = प्रवेश करता है।

(४) दा (उभयपदी) :—आ पूर्वक लेना अर्थ में आत्मनेपदी होता है। जैसे, आदत्ते = लेता है। परन्तु मुख फैलाने अर्थ में आपूर्वक दा परस्मैपदी होता है। जैसे, व्याघ्रो मुखं व्याददाति= बाघ मुंह बाता है।

(५) प्रच्छ :—आ पूर्वक होने से आत्मनेपदी होता है। जैसे, गुरून् आपृच्छते = बड़ों से आज्ञा लेता है।

(६) क्रीड :—सम्, आ, अव, अनु और परि पूर्वक होने से

आत्मनेपदी हो जाता है। जैसे, संक्रीडते, अवक्रीडते अनुक्रीडते, परिक्रीडते शिशुः = बच्चा खेलता है।

विशेषः—सम् पूर्वक क्रीड् का अर्थ यदि बोलना या बजना हो तो आत्मनेपद नहीं होता। जैसे, खगाः संक्रीडन्ति = चिड़ियाँ चहचहाती हैं। संक्रीडति चक्रम् = चक्का घरघराता है।

(७) भुज :—रक्षा से भिन्न अर्थ (खाना, भोग करना आदि) में आत्मनेपदी होता है (जैसे, फलं भुङ्क्ते = फल खाता है। दुःखम् भुङ्क्ते = दुःख भोगता है।

(८) स्था :—(क) सम्, अव्, प्र, वि पूर्वक होने से आत्मनेपदी होता है। जैसे :—मिथ्याभाषिणः वाक्ये कोऽपि न संतिष्ठते= मिथ्याभाषी के कहने में कोई नहीं रहता। क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुः ननु लाभवानसौ = यदि प्राणी क्षण भर भी जीवित रह जाय तो यह लाभप्रद है। स वनं प्रतिष्ठते = वह वन को प्रस्थान करता है।

(ख) उठना अर्थ से भिन्न अर्थों में 'स्था' धातु आत्मनेपदी होता है। जैसे, मुक्तावुत्तिष्ठते = मुक्ति के लिये लालसा करता है। स देशोद्धारे उत्तिष्ठते = वह देशोद्धार के लिये उद्योग करता है। परन्तु उठने के अर्थ में = पीठादुत्तिष्ठति, ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठति आदि।

(ग) आ पूर्वक स्था धातु प्रतिज्ञा के अर्थ में आत्मनेपदी होता है। जैसे, तव कारणात् मृत्युमातिष्ठे = तेरी वजह से मृत्यु का आश्रय लेता हूँ।

(घ) उप पूर्वक स्था धातु धार्मिक विधि से सेवा करने या मन्त्रोच्चारण पूर्वक देवपूजा करने के अर्थ में आत्मनेपदी हो जाता है। जैसे, विप्राः आदित्यं मन्त्रैरुपतिष्ठन्ते = ब्राह्मण मन्त्रों को पढ़ कर सूर्य की उपासना करते हैं।

(ङ) देवपूजा, मिलन, मित्रता करना अर्थ में तथा मार्गवाची शब्द कर्त्ता होने से उपपूर्वक स्था-धातु आत्मनेपदी होता है। जैसे—स गणेशमुपतिष्ठते = वह गणेश की पूजा करता है। गङ्गा

यमुनामुपतिष्ठते—गंगा यमुना से मिलती है। चौराः चौरमुपतिष्ठते—चोर चोर से मिला करते हैं। अयं पन्थाः मद्ग्राममुपतिष्ठते = यह राह मेरे गांव को जाती है।

विशेष :—अकर्मक उप-पूर्वक स्था-धातु आत्मनेपदी होता है। जैसे—भोजनकाले उपतिष्ठते = भोजन के समय पहुँच जाता है। लाभ की इच्छा रहने पर उप-पूर्वक स्था-धातु उभयपदी होता है। जैसे—दरिद्रः राजानमुपतिष्ठते उपतिष्ठति वा = दरिद्र कुछ पाने की इच्छा से राजा के पास जाता है।

(च) अपना मनोभाव प्रकट करने के अर्थ में अथवा किसी को पंच के ऐसा मान लेने के अर्थ में स्था-धातु आत्मनेपदी होता है। जैसे, गोपी कृष्णाय तिष्ठते = गोपी कृष्ण से अपना सारा मनोभाव प्रकट कर देती है। संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः = कोई संशय का अवसर आ जाने पर कर्ण आदि को अपना पंच स्वीकार कर लेता है।

(६) ज्ञाः-(क) अपलाप करना अर्थात् झुठला देना अर्थ का बोध हो तो अप-पूर्वक ज्ञा-धातु आत्मनेपदी होता है। जैसे, अधुना त्वं शतमपजानीषे—इस समय तू सौ रुपया झुठला रहा है।

(ख) स्मरण से भिन्न अर्थ में 'सम्' और 'प्रति' पूर्वक ज्ञा-धातु आत्मनेपदी होता है। जैसे, सः शतं संजानीते = वह सौ रुपया चाहता है। कृष्णः शतं प्रतिजानीते = कृष्ण सौ की प्रतिज्ञा करता है।

(१०) तप् :—उत् तथा विपूर्वक तप् धातु अकर्मक होने पर अथवा स्वांगकर्मक अर्थात् कर्त्ता का कोई अपना ही अंग कर्म हो, तो आत्मनेपदी होता है। जैसे, अकर्मक—सूर्यः उत्तपते वितपते वा = सूर्य तपते हैं। स्वाङ्गकर्मक—स्वहस्तौ उत्तपते वितपते वा = अपना हाथ गर्म करता है। कर्त्ता के अंग से भिन्न कर्म होने पर नहीं होता; जैसे, सुवर्णकारः सुवर्णमुत्तपति = सोनार सोना तपाता है।

(११) चर्—(क) उत् पूर्वक तथा सकर्मक होने से आत्मने-

पदी होता है। जैसे, लोकः धर्ममुच्चरते = लोक धर्म का उल्लङ्घन करता है। अकर्मक होने से नहीं होता; जैसे, उच्चरति धूमः=धुआँ उठता है। (ख) तृतीयान्त पद के योग में सम् पूर्वक चर्-धातु आत्मनेपदी होता है। जैसे—रथेन सञ्चरते = रथ से चलता है।

(१२) क्रम्—(क) यह धातु उभयपदी है। आत्मनेपद में प्रयुक्त होने से यह अप्रतिबन्ध (बेरोक), उत्साह तथा विकास या उन्नति अर्थ का बोध कराता है। जैसे, अप्रतिबन्ध—शास्त्रेषु क्रमते बुद्धिः = शास्त्र में इसकी बुद्धि बेरोक चलती है। उत्साह-रणाय क्रमते शूरः = शूर युद्ध के लिये उत्साह दिखाता है। विकास—क्रमन्ते अस्मिन् शास्त्राणि = इसमें शास्त्रों का विकास होता है।

(ख) ज्योतिष्मान् पदार्थ-सूर्य, चन्द्र, तारा आदि के उदय का बोध होने में आ-पूर्वक क्रम्-धातु आत्मनेपदी होता है। जैसे, आक्रमते धूमकेतुः = धूमकेतु उगता है। ज्योतिष्मान् पदार्थ से भिन्न पदार्थ के ऊपर उठने में नहीं होता। जैसे, आक्रामति रजः भूतलात् = पृथ्वी से धूल उठती है।

(ग) वि-पूर्वक क्रम-धातु 'चलना तथा कदम रखना' अर्थ में आत्मनेपदी होता है। जैसे, साधु विक्रमते वाजी = घोड़ा अच्छा कदम बढ़ाता है। अन्य अर्थ में नहीं होता। जैसेः—विक्रामति सन्धिः = जोड़ टूट रहा है।

(घ) प्र और उप-पूर्वक क्रम् धातु आरम्भ अर्थ में आत्मनेपदी होता है। जैसे-गन्तुं प्रक्रमते उपक्रमते वा पथिकः = पथिक जाने का उपक्रम (प्रारम्भ) करता है। दूसरा अर्थ होने पर नहीं होता। जैसेः—प्रक्रामति = जाता है, उपक्रामति = आता है।

(१३) अकर्मक होने से सम-पूर्वक निम्नलिखित धातु आत्मनेपदी होता है। जैसेः—

(क) सम् + गम् धातु—नैतत् संगच्छते = यह संगत नहीं होता।

(ख) सम + ऋच्छ धातु—मित्रम् समाच्छंत=मित्र की ओर गया।

(ग) सम् + श्रु धातु—हितान्न यः संश्रृणुते स किं प्रभुः = वह मालिक बुरा है जो हित समझ कर बात नहीं सुनता।

(१४) युज्:—जिन उपसर्गों के आदि में स्वर वर्ण हो तथा जिन उपसर्गों के अन्त में स्वरवर्ण हो ऐसे उपसर्गों के परे रहने से आत्मनेपदी होता है। जैसे, स्वरादिः—अनुयुङ्क्ते = प्रश्न करता है अथवा किसी के विरुद्ध कुछ करता है। उद्युङ्क्ते = उद्योग करता है। स्वरान्तः—नियुङ्क्ते = काम में लगाता है। यज्ञपात्र का प्रयोग होने से परस्मैपदी होता है, जैसे, विप्रः यज्ञपात्रम् प्रयुनक्ति = ब्राह्मण यज्ञपात्र का उपयोग करता है।

(१५) ह्वेञ्—आ-पूर्वक रहने पर युद्ध के लिये ललकारने के अर्थ में आत्मनेपदी होता है। जैसे—कृष्णश्चाणूरमाह्वयते = कृष्ण चाणूर को युद्ध के लिये ललकारते हैं।

(१६) यम्:—(क) उप-पूर्वक रहने पर 'विवाह' अर्थ में आत्मनेपदी होता है। जैसेः—रामः सीतामुपयच्छते = राम सीता से ब्याह करते हैं।

(ख) सम् और उत्-पूर्वक होने से 'यम्' आत्मनेपदी होता है। जैसे, रजकः वस्त्राणि संयच्छते = धोबी कपड़ा बटोरता है। स भारमुद्यच्छते = वह बोझा उठाता है। परन्तु ग्रन्थ कर्म होने से नहीं होता। जैसे—छात्रः विज्ञानमुद्यच्छति = विद्यार्थी विज्ञान पढ़ने की बड़ी चेष्टा करता है।

(ग) अकर्मक अथवा स्वाङ्गकर्मक अर्थात् कर्त्ता का अपना अंग कर्म रहे तो आ-पूर्वक 'यम्' आत्मनेपदी होता है। जैसे, अकर्मक-लता आयच्छते = लता पसरती है। स्वांगकर्मक-भिक्षुकः स्वहस्तमायच्छते = भिक्षुक अपना हाथ पसारता है।

(१७) हन्:—अकर्मक या स्वांगकर्मक रहने से आ-पूर्वक 'हन्' आत्मनेपदी होता है। जैसे, स आहते = वह पीड़ित होता है। विधवा स्वमस्तकमाहते = विधवा अपना कपार पीटती है।

(१८) वद्ः—नीचे के अर्थों में आत्मनेपदी होता है जैसेः-

(क) भासन (किसी विषय में पारदर्शिता दिखाना)—स शास्त्रे वदते = वह शास्त्र में योग्यता दिखलाता है।

(ख) उपसम्भाषा (सान्त्वना)-शिक्षकः छात्रान् उपवदते= शिक्षक छात्रों को सन्तुष्ट करता है।

(ग) ज्ञानः—शास्त्रे वदते = शास्त्र जानता है।

(घ) यत्नः—छात्रः अध्ययने वदते = विद्यार्थी पढ़ने में यत्न करता है।

(ङ) विमति (भिन्न भिन्न सम्मति)—शास्त्राणि परस्परं विप्रवदन्ते = शास्त्र परस्पर भिन्न भिन्न सम्मति रखते हैं।

(च) उपमन्त्रण (प्रार्थना करना) दरिद्रः राजानमुपवदते= दरिद्र राजा से प्रार्थना करता है।

(१९) (क) अधिक लोगों की स्पष्ट उक्ति का बोध होने से सम् और प्रपूर्वक वद् धातु आत्मनेपदी होता है। जैसे—विप्राः सम्प्रवदन्ते = ब्राह्मण एक साथ बोल रहे हैं। अन्यत्र नहीं होता। जैसे—खगाः सम्प्रवदन्ति = चिड़ियाँ चहचहाती हैं।

(ख) अनु पूर्वक वद् अकर्मक होने से आत्मनेपदी होता है। जैसे—सुशीलः सुरेशस्यानुवदते = सुरेश जैसा कहता है सुशील वैसा ही कहता है। सकर्मक होने से परस्मैपद होता है। जैसे—उक्तमनुवदति = कही हुई बात को कहता है।

(ग) विप्रलाप अर्थात् किसी विषय को लेकर तर्क करने के अर्थ में वि और प्र पूर्वक वद् धातु आत्मनेपदी होता है। जैसे—विप्रवदन्ते, विप्रवदन्ति वा तार्किकाः = नैयायिक तर्क कर रहे हैं।

(२०) नी :—नीचे के अर्थों में क्रमशः उन्, उप, वि उपसर्ग के बाद 'नी' आत्मनेपदी होता है। जैसे—

(क) उन्नयन (ऊपर उठाना) :—सः दण्डमुन्नयते = वह लाठी उठाता है।

(ख) उपनयन (यज्ञोपवीत देना) :—आचार्यः माणवकमुपनयते = आचार्य बालक को यज्ञोपवीत देते हैं।

(ग) विगणन (ऋण, कर आदि चुकाना) :—स करं विनयते = वह अपना कर चुकाता है।

(घ) यदि अशरीरी कर्म हो और वह कर्त्ता ही में रहे तो वि-पूर्वक नी धातु आत्मनेपदी होता है। जैसे—साधुः क्रोधं विनयते= साधु क्रोध को दबाता है। यहाँ क्रोध रूप कर्म शरीरधारी नहीं है तथा वह कर्त्ता ही में रहता है। यदि कर्म कर्त्ता से अतिरिक्त में रहता है तो नहीं होता, जैसे, शिष्यः गुरोः क्रोधं विनयति = चेला गुरु के क्रोध को ठंडा करता है।

(२१) गॄ :—(क) अव् पूर्वक रहने से आत्मनेपदी होता है। जैसे—शिशुः मोदकमवगिरते = बच्चा लड्डू खाता है।

(ख) सम् पूर्वक गॄधातु प्रतिज्ञा अर्थ में आत्मनेपदी होता है। जैसे:—ईश्वरं नित्यं संगिरन्ते = ईश्वर नित्य है ऐसा कहते हैं।

(२२) कृ :—(क) विपूर्वक रहने पर शब्दकर्मक अथवा अकर्मक होने से आत्मनेपदी होता है। जैसे, शब्दकर्मक—स स्वरान् विकुरुते = वह कई प्रकार की बोली बोलता है। अकर्मक—छात्राः विकुर्वते = विद्यार्थी अपने मन का काम करते हैं। अन्यत्र आत्मनेपदी नहीं होता; जैसे—चित्तं विकरोति क्रोधः = क्रोध चित्त को विकृत कर देता है।

(ख) क्षमा तथा अनादर अर्थ में अधि पूर्वक कृ धातु आत्मनेपदी हो जाता है। जैसे—सज्जनः दुर्जनमधिकुरुते = सज्जन दुर्जन को दबाता या क्षमा करता है।

(२३) शंस् :—आशा बोध होने से आपूर्वक शंस् आत्मनेपदी होता है। जैसे—तदा नाशंसे विजयाय सञ्जय ! = हे सञ्जय ! तब मैंने विजय की आशा नहीं की।

अभ्यास

(१) निम्नलिखित क्रियाओं में भेद बताओ :—
आदत्ते और व्याददाति। पृच्छति और आपृच्छते। संक्रीडति और संक्रीडते। भुङ्क्ते और भुनक्ति। उत्तिष्ठते और उत्तिष्ठति। उपतिष्ठते और उपतिष्ठति। उत्तपते और उत्तपति। आक्रमते और आक्रामति। विक्रमते और विक्रामति। सङ्गच्छते और सङ्गच्छति। उद्यच्छते और उद्यच्छति। आहते और आहन्ति। वदति और वदते। सम्प्रवदन्ते और सम्प्रवदन्ति। विनयते और विनयति। विकुरुते और विकरोति। यजति और यजते। उच्चरते और उच्चरति।

(२) जि, क्री, विश्, प्रच्छ्, दा, क्रीड्, भुज्, स्था, ज्ञा, तप्, चर्, क्रम् युज्, यम्, हन्, वद्, नी, गम्, कृ तथा शंस् इन धातुओं में किन किन अर्थों में आत्मनेपद का प्रयोग होता है?

(३) कारण का उल्लेख कर शुद्ध करो :—
पुरोहितः यजते। दुष्कर्मणः विरमस्व। बालकः कृष्णम् अनुकुरुते। वर्षासु नद्यः प्रवहन्ते। गुरुः छात्रं शास्त्रं बोधयते। वसन्ते पक्षिणः संक्रीडन्ते। लक्ष्मणः वने प्रातिष्ठत्। शिवः आसनात् उत्तिष्ठते। विप्राः सूर्यम् उपतिष्ठन्ति? कृष्णः शतं प्रतिजानाति। मध्याह्ने रविः उत्तपति। अश्वः साधु विक्रामति। रामः सीताम् उपयच्छति। विधवा स्वमस्तकम् आहन्ति। साधुः क्रोधं विनयति। मूर्खः स्वरान् विकरोति।

लिङ्गानुशासन

पुंल्लिङ्ग

(१) घञ्, घ, अच् और अप् प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। जैसे :—पाकः, करः, विस्तरः, चयः, इत्यादि। भय, लिंग, भग और पद शब्द नपुंसक लिंग होते हैं।

(२) नङ् प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। जैसे, यज्ञः, यत्नः, 'याच्ञा' स्त्रीलिङ्ग है।

(३) कि प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। जैसे, जलधिः, विधिः, निधिः। पर इषुधिः पुँल्लिङ्ग स्त्रीलिङ्ग है।

(४) 'रु' और 'तु' प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। जैसे, मेरुः, सेतुः, आदि। परन्तु 'दारु' 'कसेरु' (एक प्रकार का पौधा) जत्रु (कण्ठ की दोनों ओर की हड्डियाँ) 'वस्तु' मस्तु (कढ़ी का जलीय अंश) ये क्लीबलिङ्ग हैं।

(५) इमन् प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। जैसे लघिमन्, महिमन्, गरिमन्, नीलिमन्, आदि।

(६) राजन्, आत्मन्, युवन्, श्वन्, मघवन् आदि सभी नकारान्त शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। परन्तु चर्मन् (चमड़ा) वर्म्मन् (कवच) शर्मन् (कल्याण) जन्मन् (जन्म) नामन् (नाम) ब्रह्मन् (ब्रह्म) धामन् (घर) आदि कई शब्द क्लीब होते हैं।

(७) नीचे लिखे शब्दों के पर्याय पुंल्लिङ्ग होते हैं—

देवः (देवता), सुरः, अमरः, निर्जरः, बिबुधः, त्रिदशः आदि। परन्तु 'देवता' स्त्रीलिङ्ग है। मनुष्यः (आदमी), नरः, मनुष्यः, पुरुषः, पुमान्, ना आदि। असुरः (असुर), दनुजः, दानवः, दितिजः आदि। समुद्रः (समुद्र), सिन्धुः, अब्धिः, पयोधिः, रत्नाकरः, पारावारः, सागरः आदि। गिरिः (पहाड़), पर्वतः, अचलः, अद्रिः, सानुमान्, भूधरः आदि। नखः (नह), करजः आदि। केशः

(केश), कचः, बालः, शिरोरुहः आदि। दन्त (दाँत), द्विजः, दशनः, रदः, रदनः आदि। मेघः (मेघ), पयोधरः, वारिधरः, वारिदः, अम्बुदः, अम्बुधरः, जलधरः, वारिवाहः, पयोदः आदि। परन्तु 'अभ्र' यह क्लीबलिङ्ग है। अग्निः (आग), वह्निः, पावकः, दहनः, अनलः आदि। वायुः (हवा), पवनः, मरुत्, मारुतः, अनिलः, श्वसनः आदि। किरणः (किरण), मयूखः, रश्मिः, करः, अंशुः आदि पुंल्लिङ्ग हैं। परन्तु 'दीधिति' स्त्रीलिङ्ग है। तथा दिन, अहन् (दिन) शब्द क्लीब है। शरः, सायकः आदि पुंल्लिङ्ग हैं। परन्तु 'इषुः' पुंल्लिङ्ग स्त्रीलिङ्ग है तथा बाण और काण्ड उभयलिङ्ग हैं। खड्गः (तलवार), असिः, करवालः, चन्द्रहासः आदि। वृक्षः (पेड़), तरुः, महीरुहः, शाखी, विटपी, द्रुमः, भूरुहः आदि। स्वर्गः (स्वर्ग), सुरालयः, देवलोकः, नाकः आदि। परन्तु 'दिव्' शब्द स्त्री० तथा 'त्रिविष्टप' क्लो० है। खगः (पक्षी), पक्षी, विः, गगनचरः आदि। पङ्कः (पाँक), कर्दमः आदि। कण्ठः (कंठ), गलः, शिरोधरः आदि। भुजः (बाँह) आदि पुंल्लिङ्ग हैं परन्तु 'बाहुः' पुंल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग भी है।

(८) ऋतु (यज्ञ), पुरुष, कपोल (गाल), गुल्फ (गट्टा) और मेघ-पर्यायवाची शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं।

(९) उकारान्त शब्द पुँल्लिङ्ग होते हैं। जैसे-प्रभुः (स्वामी), विभुः (व्यापक), साधुः (सज्जन), वायुः, विधुः (चन्द्रमा) आदि। परन्तु धेनुः (धेनु, गाय), रज्जुः (रस्सी), कुहूः (कोयल की बोली, अमावास्या), सरयुः (एक नदी), तनुः (शरीर), रेणुः (धूल), प्रियङ्गुः (एक पौधा) ये सब शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं तथा श्मश्रु (दाढ़ी-मूंछ), जानु (घुटना, जंघा), स्वादु, अश्रु, जतु (लाह), त्रपु (टीन), तालु तथा वसु (धन) क्लोबलिङ्ग हैं। मद्गु (एक प्रकार का पक्षी), मधु (मदिरा, शहद), शीधु (मद्य), सानु (पहाड़ की समतल भूमि), कमण्डलु (कमण्डल) ये उभयलिङ्ग (पुंल्लिङ्ग और क्लीबलिङ्ग) हैं।

(१०) अकारान्त ककारोपध (जिनके अन्तमें अकार हो और उसके पहले ककार हो) ऐसे शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। जैसे, स्तबकः (गुच्छ), नाकः (स्वर्ग) नरकः, तर्कः आदि। परन्तु चिबुक (ठुड्डी), शालुक (जायफल), प्रातिपदिक (शब्द), अंशुक (महीन कपड़ा), उल्मुक (अंगार, लुआठी) ये शब्द क्लीबलिङ्ग हैं। कण्टक (काँटा), अनीक (सेना), मोदक (लड्डू), चषक (शराब का प्याला), मस्तक, पुस्तक, तडाग (तालाब), निष्क, शुष्क, वर्चस्क (चमकीला), पिनाक (धनुष), भाण्डक (बर्तन), कटक (शिबिर, एक प्रकार का आभूषण), दण्डक, पिटक (फोड़ा), तालक, फलक (चौकी), पुलक (रोमाञ्च) ये शब्द उभयलिङ्ग (पुं० क्ली०) हैं।

(११) अकारान्त टकारोपध (जिनके अन्त में अकार और उसके पहले टकार हो) शब्द पुँल्लिङ्ग होते हैं। जैसे, घटः (घड़ा), पटः (वस्त्र) नट आदि। परन्तु किरीट, मुकुट, ललाट, लोष्ट, ये शब्द क्लीब हैं और कपट, निकट आदि उभयलिङ्ग (पुं० क्ली०) हैं।

(१२) अकारान्त शब्द जिनके अन्त्य अकार के पूर्व ण हो, पुंल्लिङ्ग होते हैं। जैसे, गुणः, गणः (समूह), कणः, शोणः (एक नदी), द्रोणः (काक) आदि। परन्तु ऋण (कर्ज), लवण (नमक), तोरण (मेहराव), पर्ण (पत्ता), सुवर्ण, चरण, चूर्ण तृण (घास) शब्द उभयलिङ्ग (पुं० क्ली०) हैं।

(१३) अकारान्त थकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। जैसे, रथः। परन्तु तीर्थ, यूथ (दल) क्ली० हैं।

(१४) अकारान्त नकारोपध (जिनके अन्त में अकार तथा उसके पूर्व नकार हो) शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। जैसे, फेनः। परन्तु तुहिन (पाला, बर्फ), कानन (वन), वन, विपिन (जंगल), वेतन (तनखाह), शासन, श्मशान, मिथुन, रत्न, निम्न, चिह्न शब्द उभयलिङ्ग (पुं० क्ली०) हैं।

(१५) अकारान्त पकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। यथा, दीप, दर्प (अहङ्कार) आदि। परन्तु पाप, रूप, शिल्प, पुष्प, शष्प (घास), समीप, अन्तरीप शब्द क्लीबलिङ्ग हैं।

(१६) अकारान्त भकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते है। जैसे, स्तम्भः (खंभा), कुम्भः (घड़ा), दम्भः (ढोंग) आदि।

(१७) अकारान्त मकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। जैसे सोमः (चन्द्रमा), भीमः (भयावना), कामः, घर्मः (घाम, पसीना) आदि। किन्तु अध्यात्म, कुसुम शब्द क्लीबलिङ्ग हैं।

(१८) अकारान्त यकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। जैसे, हयः (घोड़ा), समयः (काल), जयः (जीत), रयः (वेग), नयः (नीति), लयः (नाश) आदि। किन्तु मय, किसलय (पल्लव), हृदय, इन्द्रिय, उत्तरीय (चादर) क्लीबलिङ्ग हैं।

(१६) अकारान्त रकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। जैसे, वरः (दुलहा), अङ्कुरः, नरः, करः, (हाथ, किरण), चरः (गुप्तचर), ज्वरः, भारः (बोझा), मारः (कामदेव) आदि। परन्तु द्वार, अग्र, चक्र, क्षिप्र (शीघ्र), छिद्र, तीर, नीर, दूर, कृच्छ्र (कठ०), रन्ध्र (छेद), उदर, अजस्र (निरन्तर), शरीर, कन्दर (कन्दरा), पञ्जर (पिंजड़ा), जठर (उदर) इत्यादि कई शब्द क्ली० हैं।

(२०) अकारान्त षकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। जैसे वृक्षः, यक्षः, वृषः (बैल) आदि। परन्तु पीयूष (अमृत), पुरीष (विष्ठा) शब्द क्लीब हैं।

(२१) अकारान्त सकारोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। जैसे, राक्षसः, वत्सः (बछड़ा), वायसः (कौआ) आदि। किन्तु पनस (कटहल) और साहस शब्द क्लीब हैं।

(२२) दार (स्त्री), अक्षत, असु (प्राण), लाज (लावा) शब्द पुंल्लिङ्ग और बहुवचनान्त हैं।

(२३) नाडी, अप, जन शब्द के परे क्रम से व्रण, अंग, पद

शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। जैसे, नाडीव्रणः (शैनघाव), अपाङ्गः (कटाक्ष), जनपदः (राष्ट्र)।

(२४) मरुत (हवा), गरुत् (पंख) ऋत्विज् (यज्ञ करनेवाला), ऋषि, राशि (ढेर), ग्रन्थि (गाँठ), कृमि (कीडा), ध्वनि, बलि, मौलि (मस्तक, ललाट), कपि, मुनि, ध्वज (पताका), गज (हाथी), हस्त, दूत, धूर्त, सूत (सारथी) इत्यादि पुंल्लिङ्ग हैं।

(२५) ऐसे समासान्त-पद जिसके अन्त में अह्न, 'अह' 'रात्र' शब्द हों वे पुंल्लिङ्ग हैं पूर्वाह्णः (दो पहर के पहले वाला समय) मध्याह्नः, अर्द्धरात्रः। परन्तु संख्यावाची शब्द के अन्त में आए हुआ 'रात्र' शब्द क्लीबलिङ्ग होता है। जैसे, द्विरात्रम् (दो रात), त्रिरात्रम् (तीन रात), पञ्चरात्रम् (पांच रात) आदि।

स्त्रीलिङ्ग

(१) क्तिन् प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। जैसे गतिः, मतिः, वृद्धिः, सिद्धिः, शुद्धिः, दृष्टिः, वृष्टिः, सृष्टिः, बुद्धिः, स्तुतिः, नुतिः (प्रणाम), सृतिः (मार्ग), श्रुतिः आदि।

(२) आकारान्त शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग होते हैं। जैसे माया, दया, लज्जा, श्रद्धा, लता, कृपा, करुणा, शय्या, क्रिया, विद्या, चर्य्या (सेवा), मृगया (शिकार), सेवा, प्रजा, वाटिका, पुस्तिका, बाला, बालिका, माला, मालिका, गङ्गा, भार्या, चपला (बिजली), शोभा, चिन्ता आदि। पर विश्वपा (भगवान्), हाहा (गन्धर्व का नाम) शब्द पुंल्लिङ्ग हैं।

(३) सन्नन्त से बनी संज्ञायें स्त्रीलिङ्ग होती हैं। जैसे, पिपासा (प्यास), जिज्ञासा (ज्ञान की इच्छा), बुभुक्षा (भोजन की इच्छा), लिप्सा (लेने की इच्छा), चिकित्सा, मीमांसा, जिहीर्षा (हरने की इच्छा), मुमूर्षा (मरने की इच्छा), दिदृक्षा (देखने की इच्छा) आदि।

(४) ईकारान्त शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग होते हैं। जैसे, श्रीः (लक्ष्मी), धीः (बुद्धि), ह्रीः (लज्जा), सरस्वती, नदी, आदि। परन्तु सुधीः, प्रधीः (पण्डित), सेनानीः (सेनापति), अग्रणीः (मुखिया) पुंल्लिङ्ग हैं।

(५) ऊकारान्त शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग होते हैं। जैसे, भ्रूः (भौं), भूः (पृथ्वी), वधूः (बहू), प्रसूः (माता), चमूः (सेना) आदि। परन्तु खलपूः (खलिहान साफ करनेवाला), सुलूः (अच्छी तरह काटनेवाला), प्रतिभूः, वर्षाभूः (मेढक), स्वयम्भूः (ब्रह्मा), हूहूः (गन्धर्व) आदि कुछ पुंल्लिङ्ग हैं।

(६) ऋकारान्त में केवल मातृ (माता); दुहितृ (बेटी), स्वसृ (बहन), यातृ (जेठानी), ननान्दृ (ननद) ये ही पांच शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं।

(७) तल् (ता) प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। जैसे, पटुता (चतुराई), मृदुता (कोमलता), लघुता (छोटाई), महत्ता (बड़ाई सुन्दरता, चतुरता, सभ्यता, गुरुता, मूर्खता विद्वत्ता आदि।

(८) संख्यावाची शब्दों में ऊनविंशतिः (१९) से नवनवतिः (९९) पर्यन्त सब शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं। विंशति, (२०) त्रिंशत् (३०), चत्वारिंशत् (४०) पञ्चाशत् (५०) षष्टिः (६०) आदि।

(९) निम्नलिखित शब्दों के पर्याय प्रायः स्त्रीलिङ्ग होते हैं:—

(क) स्त्रीः—वामा, ललना, वनिता, महिला, योषित्, योषा आदि।

(ख) पृथ्वीः—धरा, धरित्री, धरणी, विश्वम्भरा, स्थिरा, अनन्ता, अचला, मेदिनी, भूः आदि।

(ग) नदीः—सरित्, निम्नगा, स्रोतस्विनी, तटिनी, स्रोत- ... आदि।

(घ) विद्युत्—चञ्चला, चपला, विद्युत, सौदामिनी आदि।

(ङ) लता—वल्ली, लतिका, व्रततिः आदि।

(च) रात्रिः—निशा, दोषा, क्षपा, त्रियामा, तमिस्रा, रजनी।
(छ) बुद्धिः—धीः, धिषणा, मतिः, प्रज्ञा, संवित् आदि।
(ज) वाणी—गीः, वाक्, वाणी, सरस्वती, भारती आदि।

क्लीबलिङ्ग

(१) भावार्थक ल्युट् (अन), क्त (त), तद्धितीय 'त्व' और 'ष्यण्' प्रत्ययों से बने शब्द नपुंसकलिङ्ग होते हैं। जैसे, ल्युट्-(अन) पठनम्, गमनम्, दर्शनम्, शयनम् आदि। 'क्त'—श्रुतम्, पठितम्, चलितम् आदि। 'त्व'—प्रभुत्वम्, महत्त्वम्, मूर्खत्वम्, पटुत्वम् आदि। 'ष्यण्'—सौख्यम्, मान्द्यम्, जाड्यम्, दार्ढ्यम् आदि।

(२) भावार्थक ण्यत् (कृत् प्रत्यय), तव्य, अनीय, यत्, क्यप् प्रत्ययान्त शब्द क्लीबलिङ्ग होते हैं। जैसे ण्यत्–कार्यम्, हार्यम्, धार्यम्, भोज्यम् आदि। तव्य–कर्तव्यम्, द्रष्टव्यम्, गन्तव्यम्, दातव्यम् आदि। अनीय–पठनीयम्, स्मरणीयम्, दर्शनीयम्, रमणीयम्, गमनीयम् आदि। यत्–देयम्, गेयम् आदि। क्यप्—कृत्यम्, सस्यम् (अन्न)।

(३) जिनके अन्त में अकारान्त 'ल' हो वे क्लीबलिङ्ग होते हैं। जैसे, कूलम्–(तट), कुलम् (वंश), जलम्, मलम्, बलम्, हलम्, स्थलम् आदि। पर तूल (रूई), उपल (पत्थर), गाल, कम्बल इत्यादि पुंल्लिङ्ग हैं तथा शील, मूल (जड़), मङ्गल, कमल, तल, मुसल, कुण्डल, मृणाल, वाल, अखिल शब्द उभयलिङ्ग (पुंल्लिङ्ग और क्लीबलिङ्ग) हैं।

(४) मांस, युद्ध, मुख, नयन, वन, जल, धन, स्वर्ण और रुधिर के पर्याय शब्द प्रायः क्लीबलिङ्ग होते हैं परन्तु अप् (पानी) शब्द स्त्रीलिङ्ग बहुवचन होता है। अर्थः (धन), विभवः (धन) ये पुंल्लिङ्ग हैं।

(५) जिन शब्दों के अन्त में 'त्र' हो वे क्लीबलिङ्ग होते हैं। जैसे, पात्रम्, पत्रम्, गात्रम् (अङ्ग), नेत्रम्, क्षेत्रम्, (खेत के मैदान), स्तोत्रम्, मित्रम्, छत्रम् आदि। परन्तु यात्रा, मात्रा (अंश), भस्त्रा (भाँथी) आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं।

(६) जिनके अन्त में 'अस्' 'इस्' वा 'उस्' हो ऐसे शब्द प्रायः क्लीबलिङ्ग होते हैं। जैसे, तपस् (तप), यशस्, मनस्, पयस् (दूध, पानी) सरस् (तालाब) अम्भस् (पानी), हविष्, धनुष् आदि।

(७) मन् प्रत्ययान्त शब्द, जिनमें दो स्वर हों क्लीबलिङ्ग होते हैं। जैसेः—चर्मन् (चमड़ा), कर्मन् (कर्म), नामन् (नाम) आदि। परन्तु ब्रह्मन् शब्द पुंल्लिङ्ग भी है यथा–ब्रह्मा, ब्रह्म।

(८) एक (१) से नवनवतिः (९९) पर्यन्त तथा 'कोटि' को छोड़कर शत (सौ) आदि संख्यावाचक शब्द क्लीबलिङ्ग होते हैं। जैसे, शतम्, सहस्रम्, अयुतम् (दश हजार), लक्षम् (लाख) आदि।

(९) फलजातिवाचक शब्द प्रायः क्लीब होते हैं। जैसेः— आम्रम्, आमलकम् (आंवला), पनसम् (कटहल), बदरम् (बेर) आदि।

(१०) छाया शब्द के साथ षष्ठी बहुवचन पद का समास हो तो उसका समस्त पद क्लीबलिङ्ग होता है। जैसे, वृक्षाणां छाया=वृक्षच्छायम् (पेड़ों की छाया), वटानां छाया=वटच्छायम्, छत्राणां छाया=छत्रच्छायम् (छत्रों की छाया) आदि।

(११) समाहार द्वन्द्व समास जैसे, पाणिपादम् (हाथ-पांव), अहिनकुलम् (सांप-नेवला), पणवमृदङ्गम्, समाहार द्विगुसमास जैसे, पञ्चपात्रम्, त्रिभुवनम्, चतुर्युगम्, तथा अव्ययीभाव समास—उपरामम् (राम के पास) यथाशक्ति इत्यादि क्लीब लिङ्ग होते हैं।

अभ्यास

(१) संस्कृत-भाषा में लिङ्ग-निर्णय का क्या नियम है? ऐसे कुछ शब्दों के उदाहरण दो, जिनके पर्याय तीनों लिंगों में व्यवहृत होते हों।

(२) संस्कृत में पुल्लिङ्ग बनाने के कौन-कौन प्रत्यय हैं? उदाहरण दे-देकर बतलाओ।

(३) किन २ शब्दों के पर्याय पुल्लिङ्ग होते हैं? सोदाहरण समझाओ।

(४) कारण-प्रदर्शन-पूर्वक निम्नलिखित शब्दों के लिङ्ग बताओः—पर्वत, पुष्प, स्वर्ग, मित्र, सरित्, सेनानी।

(५) वाक्य-प्रयोग द्वारा निम्नलिखित शब्दों के लिङ्ग-निर्णय करोः—पुस्तक, लता, किरण और दधि।

(६) संस्कृत में अनुवाद करोः—सुर और असुर आपस में लड़ते हैं। सूर्य उगता है। मन्दिर में महादेव हैं। यह कम्बल सुन्दर है। तुम्हारा क्या काम है? बड़ की छाया में बैठता हूँ। उसका जन्म कब हुआ? ये आम के फल हैं। धैर्य बड़ा भारी गुण है। यह तुम्हारी मूर्खता है। यह खून गिरता है।

(७) शुद्ध करोः-मम शरीरः व्यथते। इदं तव भागम्। नृपस्य जयं भवति। भयः न करणीयः। अत्र यज्ञं भवति। मम भुजं स्फुरति। शतः बालकाः गच्छन्ति। तव गमनः कदा भविष्यति? पत्रः पतति।

णत्व-विधान

ऋ, ॠ, र् और मूर्द्धन्य ष् इन चार वर्णों के परे दन्त्य न का ण होता है। जैसे, नृणाम्, चतसृणाम्, भ्रातॄणाम्, चतुर्णाम्, विस्तीर्णम्, दोष्णाम्, पुष्णाति आदि।

यदि स्वरवर्ण, कवर्ग, पवर्ग, य, व, ह और अनुस्वार से व्यवधान हो अर्थात् ये सब बीच में भी पड़ जायँ तो भी न का ण होता है। जैसे, कराणाम्, करिणा, गुरुणा, मृगेण, मूर्खेण, दर्पेण, रवेण, गर्वेण, ग्रहाणाम् इत्यादि।

टिप्पणी—इन के अतिरिक्त अक्षरों के व्यवधान रहने पर ण नहीं होता। जैसे, अर्चना, किरीटेन, अर्थेन, स्पर्शेन, रसेन, दृढानाम्, अर्जनम् इत्यादि।

पद के अन्तस्थित दन्त्य न् का मूर्द्धन्य ण् नहीं होता। जैसे:- रामान्, हरीन्, गुरून्, वृक्षान्, भ्रातॄन् इत्यादि।

टिप्पणी:—न भिन्न तवर्ग, प और भ संयुक्त न का ण नहीं होता। जैसे, कृन्तति, ग्रन्थनम्, वृन्दः, रन्धनम्, तृप्नोति, क्षुभ्नाति इत्यादि।

यदि एक पद में ऋ, ॠ, र् और ष् हो और दूसरे पद में न् हो तो ण् नहीं होता। जैसे, नृयानम्, अन्तर्नगरम्, रघुनन्दनः, त्रिनेत्रः, वृषवाहनः, वारिनिधिः आदि।

यदि अन्य पदस्थित न विभक्ति के स्थान में हो वा विभक्ति सहित हो वा स्त्रीलिंग के ई प्रत्ययान्त में हो तो विकल्प से ण होता है। जैसे:—विभक्तिस्थान में-प्रभावेण, प्रभावेन, अन्तर्भावेण, अन्तर्भावेन आदि। विभक्तियुक्त में—पुरयायिणाम्, पुरयायिनाम्, विषपायिणा, विषपायिना आदि। ई प्रत्ययान्त में—विषपायिणी, विषपायिनी आदि।

टिप्पणी:—पक्क, युवन् तथा अहन् और भगिनी, कामिनी, भामिनी, यूना आदि शब्दों के न का ण नहीं होता। जैसे:—गुरुपक्वेन, चारुयूना, दीर्घाह्नो, पितृभगिनी, परकामिनी, गुरुभामिनी, घोरयामिनी, चारुयूना आदि।

यदि पर पद एक स्वरविशिष्ट अथवा कवर्गयुक्त हो तो न का नित्य ण होता है। हरिमाणी, वृत्रहणः, कवर्ग—श्रीकामेण, दुर्गमेण, परिपाकेण आदि।

ओषधि (पका हुआ सस्य) वाचक और वृक्षवाचक शब्दों के परे वन शब्द के न का विकल्प से ण होता है। जैसे माषवनं, माषवणम्। वृक्षवाचक—बदरीवनं, बदरीवणं, जम्बीरवनं, जम्बीरवणमित्यादि।

टिप्पणी:— दो या तीन स्वरवाले शब्द के परे होने से ण नहीं होता। जैसे:—सहकारवनम्, कुरबकवनम् इत्यादि।

प्र, पूर्व, पर, अपर आदि शब्दों के परे अह्न के न का ण होता है। जैसे:— प्राह्णः, पूर्वाह्णः, अपराह्णः।

पर, पार, उत्तर, चान्द्र और नारा शब्द के परे अयन के न का ण होता है। जैसे, परायणं, पारायणम्, उत्तरायणं, चान्द्रायणं, नारायणः।

अग्र और ग्राम शब्द के परे नी के न का ण होता है। जैसे:—अग्रणीः, ग्रामणीः।

दूसरे पद में रहनेवाले 'र, ष्' के परे पान शब्द के न का विकल्प से ण होता है जैसे:—क्षीरपाणम्; क्षीरपानम्, विषपाणम्; विषपानम् इत्यादि।

टिप्पणी:—पूर्व पद के अन्त में मूर्द्धन्य ष होने से उत्तर पद के न का ण नहीं होता। जैसे:—निष्पानम्, दुष्पानम्, हविष्पानम्, आयुष्कामेन, सर्पिष्पायिना आदि।

प्र, परा, परि, निर् और अन्तर् शब्द के परे नम्, नद्, नश्,
नह्, नी, नु, नुद्, अन् और हन् धातु में न् का ण हो जाता है।
जैसे प्रणमति, परिणमति, पराहणनम्, प्राणिति, निर्णीयते, अन्तर्ह-
णनम्, परिणौति, प्रणुदति इत्यादि।

टिप्पणी:—नश् धातु के श् का मूर्द्धन्य होने से और हन् धातु
के ह् के स्थान में घ होने से न का ण नहीं होता। जैसे-प्रनष्टः,
अन्तर्नष्टः, प्रघ्नन्ति। हन् का न म् अथवा व् से संयुक्त हो तो विकल्प
से होता है। जैसेः—प्रहण्मि, प्रहन्मि, प्रहण्वः, प्रहन्वः, प्रहण्मः,
प्रहन्मः, इत्यादि।

लोट् की आनि विभक्ति के न का ण होता है। जैसेः—प्रभ-
वाणि, परिभवाणि इत्यादि।

गद्, नद्, पत्, पद्, दा, धा, हन्, दाण, दो, सो, दे, धे, मा,
या, द्रा, सा, वप्, शम्, चि, दिह् धातु के पूर्व नि उपसर्ग के न
का ण होता है। जैसे-प्रणिगदति, प्रणिपतति, प्रणिधानम्, प्रयाणं,
प्रणिहन्ति आदि।

अणुकणगणगुणगणिकाः, किणघुणवणिजोऽथ कङ्कणं वाणी।
फणिमणिलवणं कोणो, घोणा गोणी च तूणीरः ॥१॥
वेणी बाणः, शोणः, शाणो वेणुश्च निक्वणः, पाणिः।
कल्याणं कणतूणौ, विपणिः, स्थाणुः, पणः, पुण्यम् ॥२॥
माणिक्यैणविपण्णं, वीणानिर्वाणसिङ्घाणाः।
चाणक्यः, पिण्याकं, ख्याता एते सदैव णोपेताः ॥३॥

षत्वविधान

अ, आ भिन्न स्वर, क् या र् के परे आदेश और प्रत्यय के स्
का ष् होता है। जैसे, मुनिषु, वधूषु, भ्रातृषु, देवेषु, अनैषीन्,
दिक्षु, चतुर्षु इत्यादि।

टिप्पणी—सात् प्रत्यय के स का ष नहीं होता। जैसेः—अग्नि-सात्, वायुसात्, भ्रातृसात् इत्यादि।

अनुस्वार, विसर्ग, श, ष्, स् का व्यवधान होने अर्थात् इनके बीच में रहने पर भी स् का ष् होता है। जैसे—हवींषि, धनूंषि, आशीःषु, आयुःषु, चक्षुःषु आदि। पुंसु में नहीं होता।

इकारान्त और उकारान्त उपसर्ग के परे सिध् स्तु, स्था, सिच्, सद्, स्वञ्ज आदि धातुओं के स् का ष् होता है। जैसे, प्रतिषेधति, अभिष्टौति, प्रतिष्ठितः, निषिञ्चति, विषीदति, परिष्वजते आदि। अ के व्यवधान में भी होता है। जैसेः—न्यषिञ्चत्, अन्वषजत, व्यषीदत् आदि।

सिध्, सू, स्तु, स्निह्, स्वप्, सिच्, सेव, सो, स्था आदि षोपदेश धातु के द्वित्व करने पर धातु के द्वितीय भाग का स् इ, उ, ए, और ओ के परे हो तो ष् हो जाता है। जैसेः—सिषेध, सुषुवे, तुष्टाव, सिष्णेह, सुष्वाप, सिषेच, सिषेवे, सोषूयते। यङ् प्रत्यय करने पर सिच् धातु का स् मूर्द्धन्य नहीं होता। जैसेः—सेसिच्यते।

धातु के परे सन् प्रत्यय का ष् हो तो उस धातु का स् मूर्द्धन्य नहीं होता। जैसे, सिसिक्षति, सिसेविषते इत्यादि। यदि सन् का स् दन्त्य ही रहे तो सु धातु को छोड़ शेष धातु के स् का ष् होता है। जैसेः—तिष्ठासति, सुषुप्सति, स्तु—तुष्टूषति आदि।

टिप्पणीः— ण्यन्त धातुओं में केवल स्विद् स्वद् और सह् धातुओं को छोड़ अन्य धातुओं में स् का ष् होता है। जैसेः—सिषेचयिषति, सिषेधयिषति, स्विद्—सिस्वेदयिषति, स्वद्—सिस्वादयिषति, सह्—सिसाहयिषति आदि।

परि, नि, वि पूर्वक सेव्, सिव् और सह धातु के स् का ष् होता है। जैसे, परिषेवते, परिषीव्यति, परिषहते। सह का सोढ होने से ष् नहीं होता। जैसे, परिसोढा।

टिप्पणी:—ण्यन्त करने पर सिव् और सह् के स् का ष् नहीं होता। जैसे:—पर्य्यसीषिवत्, पर्य्यसीषहत।

समास होने पर मातृ और पितृ शब्दों के परे स्वसृ के प्रथम स् का ष् हो जाता है। जैसे:—मातृष्वसा, पितृष्वसा। विभक्ति रहने से विकल्प से होता है। जैसे:—मातुः ष्वसा, मातुः स्वसा।

इकारान्त, उकारान्त उपसर्गों के परे स्था और स्तम्भ धातुओं का त के व्यवधान होने पर भी ष् होता है। जैसे:—अनुतष्ठौ, अधितष्ठौ, अनुतष्टम्भ। किन्तु प्रतिस्तब्धः, निस्तब्धः तथा लुङ् (ण्यन्त) में भी नहीं होता। जैसे:—पर्य्यतस्तम्भत्।

इन शब्दों के स् मूर्द्धन्य होते हैं। जैसे:—युधिष्ठिरः, भूमिष्ठः, दिविष्ठः, सुषेणः, हरिषेणः, मधुषेणः (नाम होने से), सुषमा, दुःषमः, अङ्गुलिषङ्गः, तुराषाट्, तुराषाड् (साट् साड् होने से), परिष्करोति (परि + स्कृ होने से), विष्कम्भकः (वि + स्कम्भ होने से), सुषुप्तः, निषुप्तः, विषुप्तः (स्वप् का सुप् होने से), अङ्गुष्ठः, गोष्ठः, अम्बष्ठः इत्यादि।

ये स्वाभाविक मूर्द्धन्य हैं:—

ईर्ष्या प्रदोषो वृषभोष्ट्रकष्टं-मृषावृषाषाढविषोष्मभीष्माः।
उन्मेषमाषोषरमेषयोषिद्-ग्रीष्मामिषश्लेष्मभिषाम्बरीषाः॥ १॥
कुल्माषपाषाणतुषारमञ्जू-षामर्षपीयूषहृषीकयूषाः।
प्रत्यूषशीर्षत्रपुषं च पुष्पं-भिषक्तुरुष्कौषधशुष्कमुष्कम्॥ २॥
शष्पं करीषं महिषः पुरीषं-चषो विषाणो विषयः पृषच्च।
ईषत्कषायः कलुषं च बाष्पः कूष्माण्डषण्ढौ परुषं कषश्च॥ ३॥
हर्षद्विषत्सर्षपकिल्बिषेषु-द्वेषोऽथ कोषः सुषिरं च वर्षाः।
षट् पुष्करं पौरुषरोषयोषा-इत्यादयो नित्यषकारयुक्ताः॥ ४॥

लोकोक्ति

अजातशत्रुः—जिसका कोई शत्रु न हो।

अतः परं पुनः कथयिष्यामि—यहाँ से मैं पुनः अपनी कहानी आरम्भ करूँगा।

अतिथिसत्कारः—अतिथि की आवभगत।

अर्थलोलुपः—धन का लोभी।

अत्र भवानेव प्रमाणम्—इसमें केवल आप ही समर्थ हैं।

अर्थपिशाचः—धन के लिये मरने वाला।

अनागतविधाता—जो भविष्य के लिये सोचता है।

अन्या गतिर्नास्ति—दूसरा कोई उपाय नहीं है।

अपि कुशलो भवान्—क्या आप एकदम ठीक हैं ?

अर्थनाशः—रुपये की हानि।

अर्थलालसा—धन की आकांक्षा।

अलमतिविस्तरेण—बस, रहने दो।

अलं परिहासेन—मजाक नहीं।

अश्रुतपूर्वः—जो पहले नहीं सुना गया हो।

अष्टवर्षदेशीयः—आठ वर्ष का।

अस्ति मे विशेषोऽद्य—आज पहले से अच्छा हूँ।

अस्ति कश्चिद्विशेषः—इसमें कुछ विशेषता है।

अहं त्वां तृणाय मन्ये—मैं तुम्हारी कोई परवाह नहीं करता।

आगामिनि मासे—अगले महीने में।

आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया—बड़ों की आज्ञा मान्य होनी चाहिये।

आनन्दपरवशः—आनन्दमग्न।

आपदर्थे धनं रक्षेत्—आपत्तियों के लिये धन बचाकर रखना चाहिये।

आलस्यं सर्वेषां दोषाणामाकरः—आलस्य सभी बुराइयों का भंडार है।
आसन्नप्रसवा—प्रसव के समय पर है।
आसन्नमृत्युः—जिसकी मृत्यु निकट हो।
इति किंवदन्ती श्रूयते = इति जनश्रुतिः—ऐसी अफवाह है।
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किन्न पीयते—यह चिन्ता क्यों ?
इति मे संकल्पः—ऐसा मेरा निश्चय है।
इति मे वितर्कः—ऐसा मेरा अन्दाज है।
इन्द्रियपरतन्त्रः—इन्द्रियों का गुलाम।
इन्द्रियपरायणः—इन्द्रियों का गुलाम।
इन्द्रियपरवशः—इन्द्रियों का गुलाम।
ईश्वरेच्छा बलीयसी—ईश्वर की इच्छा प्रबल है।
उत्साहभङ्गं मा कुरु—उत्साह-भंग मत करो।
उद्योगमूलं हि सौभाग्यम्—उद्योग ही सौभाग्य की जननी है।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जति—बहुत से गुणों के बीच में एक दोष छिप जाता है।
एतद्वचनं मामेव लक्षीकरोति—यह शब्द मुझपर ही लक्ष्य करता है।
कथाप्रसङ्गेन—वार्त्तालाप के प्रसंग में।
कथं जीवितं धारयिष्यामि—मैं कैसे जीऊँगा ?
कालक्रमेण, दिनेषु गच्छत्सु, गच्छता कालेन—कुछ समय बीतने पर।
कालोचितं, प्राप्तकालं, समयानुरूपम्—समयानुकूल।
कालः कश्चित् प्रतीक्ष्यताम—कुछ देर तक प्रतीक्षा करें।
किं कर्त्तव्यविमूढः—यह नहीं जानता कि क्या करें ?
किं तव वृत्तम्—तुम्हारा क्या हुआ ?
किं बहुना—अधिक कहाँ तक ?